ISSN 2277-5587
Indexed in ULRICH & IIJIF
Impact Factor 3.193
Registered & Listed by UGC 43289

Shodh Shree

(International Referred Journal of Multidisciplinary Research)

शोध श्री

Volume-24 Issue-3 July-September 2017 RNI No. RAJHIN/2011/40531

CHIEF EDITOR
Virendra Sharma

EDITOR
Dr. Ravindra Tailor

shodhshree@gmail.com
www.shodhshree.com

Shodh Shree Volume-24 Issue-3 July-September 2017

Shodh Shree

(International Referred Journal of Multidisciplinary Research)

Virendra Sharma
Chief Editor
Government Girls P.G. College,
Ajmer

Dr. Ravindra Tailor
Editor
Shodh Shree,
Jaipur

Editorial Board

Prof. H.S. Sharma (Retd.)
University Of Rajasthan, **Jaipur**

Prof. T.K. Mathur (Retd.)
M.D.S. University, **Ajmer**

Prof. Ravindra Kumar Sharma
Kurukshetra University, Kurukshetra **(Haryana)**

Sarah Eloy
Museum The House of Alijn, **Belgium**

Prof. B.P. Saraswat
Dean of Commerce
M.D.S. University, **Ajmer**

Prof. Pushpa Sharma
Kurukshetra University, Kurukshetra **(Haryana)**

Dr. Rajesh Choudhary
Deputy Director (Research)
Indian Council of Historical Research, **NewDelhi**

Dr. Avdhesh Kumar Sharma
BBD Govt. PG College, Chimanpura

Advisory Board

Prof. S.N. Tailor (Retd.)
S.D. Government P.G. College, **Beawar**

Prof. S.P. Vyas
Jainarain Vyas University, **Jodhpur**

Dr. Mahesh Narayan
Archivist (Retd.)
National Archives of India, **NewDelhi**

Shodh Shree

(International Referred Journal of Multidisciplinary Research)

Contents

Volume-24 **Issue-3** **July - September 2017**

1. **दलित महिलाओं की शासकीय योजनाओं के प्रति जागरूकता का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन** **1-5**
   डॉ. अनीता सिंह, हल्द्वानी (उत्तराखण्ड)
2. **भारत में रियासतों का एकीकरण और सरदार पटेल** **6-12**
   डॉ. जनक सिंह मीना,जोधपुर
3. **अम्बेडकर का राष्ट्रवादी दृष्टिकोण : एक विश्लेषण** **13-17**
   देवेन्द्र प्रताप तिवारी, वाराणसी (उत्तरप्रदेश)
4. **श्री अरविन्द का संस्कृति विषयक चिन्तन** **18-26**
   कमलनयन, जयपुर एवं आरती सोनी, आगरा (उत्तरप्रदेश)
5. **मारवाड़ के पंच पीर** **27-30**
   डॉ. सन्दीप प्रजापत, जोधपुर
6. **औरंगजेब कालीन फ्रांसीसी यात्री–एक यात्रा वृतान्त** **31-33**
   शीतल देवी, रोहतक (हरियाणा)
7. **राजस्थान में पर्यटन के विकास की उपलब्धियाँ एवं सम्भावनायें** **34-37**
   डॉ. शालिनी चतुर्वेदी, जयपुर
8. **'स्वतंत्रता' की अवधारणात्मक समझ : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य** **38-41**
   चन्दन श्रीवास्तव, दिल्ली
9. **बदलते नगरीय भूमि उपयोग का पर्यावरण पर** **42-47**
   करतार सिंह, जयपुर
10. **राजस्थान राज्य अभिलेखागार में संग्रहित बहुमूल्य अभिलेख सम्पदा : 'कागद बहियाँ'–एक अवलोकन** **48-51**
    हरिमोहन मीना, बीकानेर
11. **राजस्थान में तेरहवीं विधानसभा चुनाव में महिलाओं की भूमिका** **52-59**
    राणसिंह, जयपुर
12. **गांधी का स्वराज एवं सुशासन की अवधारणा** **60-63**
    विमलेश टेलर, जोधपुर
13. **राजस्थान राज्य में स्वास्थ्य योजनाएंः महिला स्वास्थ्य योजनाओं की विवेचना** **64-72**
    मोनिका यादव, जयपुर
14. **राजस्थान की लोकदेवी श्री आवड़माता** **73-78**
    डॉ. भंवर सिंह, बाड़मेर
15. **भारत में श्रम परिदृश्य एवं महिलाएंः एक विश्लेषण** **79-82**
    डॉ. अमित गुप्ता, जयपुर
16. **न्यायिक सक्रियता** **83-85**
    कंचन चारण,जोधपुर
17. **पाटन दुर्ग : शेखावाटी में तंवरवंश** **86-88**
    पूनम लूनीवाल,टोंक
18. **महिला सशक्तीकरण : सरकारी योजनाओं के विशेष संदर्भ में** **89-94**
    डॉ. यशमाया राजोरा, दौसा

19. **भारत में महिला मानवाधिकार : वैद्यानिक परिपेक्ष्य** **95-98**
भवशेखर, उदयपुर

20. **आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण : एक अध्ययन** **99-103**
सोनिया राठी, बैंगलोर (कर्नाटक)

21. **भारत–नेपाल संबंध : नए क्षितिज की ओर** **104-110**
डॉ. भूपेन्द्र सिंह, जयपुर

22. **बहुराष्ट्रीय निगम : चुनौतियाँ एवं समाधान** **111-114**
रामेश्वर लाल, जोधपुर

23. **पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं के समक्ष समस्याऐं एवं प्रभाव** **115-117**
दीपिका कुमारी, जयपुर

24. **गुरूपरम्परा और भक्ति का व्यावहारिक रूप** **118-120**
वीणा जाजड़ा, जोधपुर

25. **मनुष्य जीवन में योग एवं आयुर्वेद की महत्ता** **121-124**
डॉ. सुमन यादव, जयपुर

26. **भारत में महिलाओं के अधिकार : संवैधानिक एवं वैद्यानिक कानूनों के परिप्रेक्ष्य में** **125-129**
शारदा चौधरी, जोधपुर

27. **भारत में साम्प्रदायिकता : एक ऐतिहासिक विवेचन** **130-135**
प्रवीण कुमार, जयपुर

28. **Judicial Activism in Scenario of Good Governance Structure** **136-142**
Dr. Ram Chandra, Jodhpur

29. **Positive Correlation Between the Amount of Phenolic Content and Degree of Resistance to Plant Disease** **143-146**
Rohini Maheshwari, Bundi

30. **Effect of Environment on Stress and its Management : With Special Reference to The Participants of Special** **147-152**
Dr. Shubra K. Kandpal, Haldwani (Uttrakhand)

31. **A Study on Issues Related to Agricultural In Madhya Pradesh** **153-157**
Karulal Sharma, Udaipur

32. **Seals and Sealings As a Source of History (with special reference to Haryana)** **158-160**
Dr. Yashvir Singh, Charkhi Dadri (Haryana)

33. **Where We are in The Era of Modernization, An Analysis of Gadiya- Lohar Nomadic Tribes in Rajasthan** **161-164**
Geeta Shahu, Ajmer

34. **The Attitude of Students Towards Activities Conducted Under Continuous and Comprehensive Evaluation in the Context of Different Schools** **165-169**
Ashok Kumar Bairwa, Jaipur

35. **Comparative Study of Educational Problems Between Government and Private Higher Secondary School Students** **170-174**
Dr. Uma Shankar, Mudki (Punjab)

36. **India - Sri Lanka Relation With Special Reference to Tamil Rehabilitation and Peace - Building Process** **175-178**
Dr. Mehara Ram, Jaipur

दलित महिलाओं की शासकीय योजनाओं के प्रति जागरूकता का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ. अनीता सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर, एम.बी.रा. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हल्द्वानी (उत्तराखण्ड)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

"दलित व कमजोर वर्ग की महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं शैक्षिक स्तर को ऊँचा उठाने हेतु अनेकों शासकीय योजनाएँ चलायी जा रही है जो कमजोर वर्ग की महिलाओं के उत्थान के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेगीं । दलित महिलाऐं अशिक्षित कुपोषित व अपने समुदाय और परिवार में भी सबसे निचले स्तर पर होती है। उनका श्रम और आर्थिक संसाधनों पर भी कोई हक नही होता। हालांकि वे भारत की कृषि अर्थव्यवस्था की रीढ़ है, फिर भी उनकी गिनती किसानों में नही की जाती। आज दलित समाज प्रत्येक क्षेत्र में पिछड़ रहा है परन्तु दलित समाज की महिलाऐं उससे भी अधिक पिछड़ी हुई है। इस कटु सत्य को झुटलाया नहीं जा सकता। अपने समाज और परिवार कें उत्पीड़न का भी शिकार होना पड़ता है। इस अर्थ में दलित महिलाऐं दोहरे रूप से दलित है। दलित महिलाओं के प्रति विशेष रूप से ध्यान देने की जरूरत है। दलितों के विकास एवं कल्याण के लिए अनेक सराहनीय कार्य किये जा रहे है जिसका लाभ कुछ हद तक इनकों मिला भी है। लेकिन सुधार की जितनी अपेक्षाऐं थी अभी नहीं हुआ है। दलित महिलाओं की समस्याओं को सुलझाने व निराकरण हेतु प्रयासरत् होने की जरूरत है।"

संकेताक्षरः *दलित, महिला, योजना, जागरूकता, शोषण।*

प्रस्तावना वास्तविकता है कि दलित महिलाऐं आज भी सामाजिक–आर्थिक एवं शैक्षिक रूप से अति पिछड़ी है। दलित महिलाऐं विभिन्न मोर्चो पर संत्रास, शोषण, उत्पीड़न अनाचार औंर अत्याचार का शिकार हो रही है, और आज भी प्रतिपल उन्हीं समस्याओं से दो–चार हो रही है। अधिकारों की बात तो बहुत दूर की बात हैं, लेकिन वास्तविकता में अधिकारों के नाम पर उसे छला ही गया है। दलित समाज की महिलाओं की स्थिति उच्च वर्ग की महिलाओं की अपेक्षा अधिक दयनीय, सोचनीय, एवं नरकीय है। आज उनकी यह स्थिति समाजशास्त्रियों, स्वयंसेवी संस्थाओं, समाजसेवी, बुद्धिजीवियों एवं सरकार के लिये चुनौतीपूर्ण समस्या है। आज दलित समाज प्रत्येक क्षेत्र में पिछड़ रहा है परन्तु दलित समाज की महिलाएं उससे भी अधिक पिछड़ी हुई है। इस कटु सत्य को झुटलाया नही जा सकता। अपने समाज और परिवार कें उत्पीड़न का भी शिकार होना पड़ता है। इस अर्थ में दलित महिलाऐं दोहरे रूप से दलित है।[1]

दलित महिलाऐं अशिक्षित कुपोषित व अपने समुदाय और परिवार में भी सबसे निचले स्तर पर होती है। उनका श्रम और आर्थिक संसाधनों पर भी कोई हक नही होता। हालांकि वे भारत की कृषि अर्थव्यवस्था की रीढ़ है, फिर भी उनकी गिनती किसानों में नही की जाती। वे निर्यात के लिए अनाज तो उगाती है पर अपने लिए दो वक्त की रोटी जुटाने के लिए भी उन्हे कड़ी मेहनत करनी पड़ती है। इसके अलावा दलित महिलाओं को अपने फैसले लेने का भी अधिकार नही मिलता।[2] सारस्वत एवं सिंह 2007 ने अध्ययन में पाया कि दलित परिवारों की कुल आय में, महिलाओं का योगदान मुख्य रहता है और कभी–कभी तों वे पुरूषों की अपेक्षा अधिक योगदान करती है।[3] कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि वे हमारे समाज परिवार व समुदाय की हाशियेदार किनारी पर हैं वे न सिर्फ जाति के स्त्री–पुरूष बल्कि दूसरी दलित जातियों व अपनी जाति के पुरूषों के शोषण, अपमान और उत्पीड़न को निरन्तर सहती है।[4] एक दलित महिला और सामान्य महिला की दशा पर हम विचार करें, तो हम देखते है कि सामान्य रूप से दोनों महिलाऐं ही है और दोनो का उत्पीड़न होता है और सामाजिक उत्पीड़न

भी होता है। सामान्य महिला का उत्पीड़न वर्गगत सन्दर्भ में भी होता है और लिंग के आधार पर भी। दलितों का उत्पीड़न वर्गगत स्तर पर भी और जाति के आधार पर भी। दलित महिला का उत्पीड़न वर्ग, जाति व लिंग तीनों स्तरों पर होता है। दलित महिला समूहों में अपनी अस्मिता की चेतना बढ़ रही है और यह चेतना दलित महिलाओं की प्रगति के रूप में प्रतिबिम्बित हो रही है। दलित महिलाऐं जब तक शिक्षित होकर अपने अधिकार और कर्तव्य को नहीं समझेगी तब तक दलित परिवार एवं समाज नही समझेगा। 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति संसद द्वारा पारित की गयी इसी के अन्तर्गत इन्दिरा गांधी खुला विश्वविद्यालय स्थापित किया गया। कुछ राज्यों द्वारा भी खुला विश्वविद्यालय स्थापित किया गया। सरकार की इस नीति का उद्देश्य था ऐसे लोगों को उच्च शिक्षा के लिये अवसर देना जो साधनविहीन है, विशेष कर महिलाओं के लिये, पिछड़े क्षेत्र के लोगों के लियें, दूर दराज के क्षेत्रों के लोगों के लियें। इस योजना को दलित जाति की लड़कियों के लियें विशेष कर बनाया गया था क्योंकि आम लड़कियों की अपेक्षा दलित समाज की लड़कियों को शिक्षा से अधिक वंचित रखा गया था। यह बात पूर्णतः स्पष्ट है कि अच्छी स्थितियां सिर्फ कानून के माध्यम से नहीं पैदा की जा सकती। उसके लियें जागरूक सामाजिक शक्तियों का सतत् प्रयास आवश्यक है।[5] सपना शर्मा सास्वत (2015) ने अपने शोध पत्र के माध्यम से कहा है कि दलित महिलाओं के प्रति विशेष रूप से ध्यान देने की जरूरत है। दलितों के विकास एवं कल्याण के लिए अनेक सराहनीय कार्य किये जा रहे है जिसका लाभ कुछ हद तक इनकों मिला भी है। लेकिन सुधार की जितनी अपेक्षाएँ थी अभी नही हुआ है। दलित महिलाओं की समस्याओं को सुलझाने व निराकरण हेतु प्रयासरत् होने की जरूरत है।[6]

दलित व कमजोर वर्ग की महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं शैक्षिक स्तर को उँचा उठाने हेतु अनेकों शासकीय योजनाएँ चलायी जा रही है जो कमजोर वर्ग की महिलाओं के उत्थान के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेगीं। कमजोर वर्ग एक ऐसा वर्ग है जो सदियों से सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टि से शोषित एवं उपेक्षित रहा है और इनके विकास आर्थिक एवं सामाजिक सशक्तिकरण के लिए सामाजिक दृष्टि से अल्पसुविधा प्राप्त समूहों और समाज के उत्पीड़ित वर्गों के उत्थान संबंधी कार्यक्रमों को राज्य सरकारों, संघ राज्य क्षेत्रों की प्रशासनिक प्रक्रिया और गैर सरकारी संगठनों का घनिष्ठ सहयोग एवं परस्पर समन्वय से लागू किया जा रहा है।

अध्ययन के उद्देश्य

1 दलित महिलाओं में जागरूकता का पता लगाना।

2 कल्याणकारी एवं विकास योजनाओं के प्रति जागरूकता के स्तर का पता लगाना।

शोध अभिकल्प अध्ययन में वर्णनात्मक एवं अन्वेषणात्मक शोध अभिकल्प का प्रयोग किया गया है। अध्ययन में ग्रामों के चयन के लिए लॉटरी पद्धति का प्रयोग किया गया है। प्रत्येक गॉव से समानुपातिक दैव निदर्शन पद्धति के आधार पर 50 प्रतिशत उत्तरदाताओं का चुनाव किया गया। इन चयनित ग्रामों के परिवारों की संख्या 500 है। जिनमें से समानुपातिक दैव निदर्शन पद्धति की सहायता से 251 दलित परिवारों का चुनाव किया गया। प्रस्तुत अध्ययन में प्राथमिक आकड़ो के संग्रह के लिए उत्तरदाताओं से सूचनाएँ साक्षात्कार अनुसूची और असहभागी अवलोकन विधि के द्वारा संकलित किया गया।

सारणी संख्या – 1
क्या आपकों अत्याचार में आर्थिक सहायता योजना की जानकारी है।

क्रम संख्या	विवरण	आवृति	प्रतिशत
1	हॉ	89	35.45
2	नही	162	64.55
	कुल योग	251	100.00

उपरोक्त सारणी से स्पश्ट होता है कि 35.45 प्रतिशत महिला उत्तरदाताओं को अत्याचार उत्पीड़न में आर्थिक सहायता योजना की जानकारी है, जबकि 64.55 प्रतिशत महिला उत्तरदाताओं को अत्याचार उत्पीड़न में आर्थिक सहायता योजना की जानकारी नहीं है। अतः निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि बहुत कम उत्तरदाता हैं जिन्हे अत्याचार उत्पीड़न में आर्थिक सहायता योजना की जानकारी है।

सारणी संख्या – 2
क्या वर्तमान छात्रवृत्ति अध्ययन कार्य के लिए प्रर्याप्त है

क्रम संख्या	विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हाँ	98	39.04
2	नहीं	153	60.96
	योग	251	100.00

आंकड़ों से प्रदर्शित होता है कि 39.04 प्रतिशत अल्पसंख्यक उत्तरदाताओं का मानना है कि वर्तमान छात्रवृत्ति अध्ययन कार्य के लिए प्रर्याप्त है, जबकि 60.96 प्रतिशत बहुसंख्यक उत्तरदाताओं ने इसके प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति प्रकट की है। अतः निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि बहुसंख्यक उत्तरदाता वर्तमान छात्रवृत्ति को अध्ययन कार्य के लिए प्रर्याप्त नहीं मनती हैं।

सारणी संख्या – 3
दलित जाति कल्याण कार्यक्रमों की उपयोगिता एवं व्यावहारिकता के बारे में विचार

क्रम संख्या	विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
1	कम प्रभावी एवं असंतोषजनक	48	19.12
2	आवश्यकताओं को पूरा करने में पर्याप्त	112	44.62
3	प्रशंसनीय एवं मूल्यावान	91	36.25
	योग	251	100.00

आंकड़ों से प्रदर्शित होता है कि 19.12 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि दलित जाति कल्याण कार्यक्रमों की उपयोगिता एवं व्यावहारिकता कम प्रभावी एवं असंतोषजनक है, एव 44.62 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि दलित जाति कल्याण कार्यक्रमों की उपयोगिता एवं व्यावहारिकता आवश्यकताओं को पूरा करने में पर्याप्त है। दलित जाति कल्याण कार्यक्रमों की उपयोगिता एवं व्यावहारिकता के बारे में 36.25 प्रतिशत

उत्तरदाताओं का कहना हे कि यह प्रशंसनीय एवं मूल्यावान है। निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि अधिकांश उत्तरदाता यह मानते हैं कि दलित जाति कल्याण कार्यक्रमों की उपयोगिता एवं व्यावहारिकता आवश्यकताओं को पूरा करने में पर्याप्त है।

सारणी संख्या – 4

दलित जाति कल्याण विभाग कार्यक्रमों एवं उनके द्वारा उपलब्ध कराई गई सुविधाओं से संतुष्टि

क्रम संख्या	विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हाँ	189	75.30
2	नहीं	62	24.70
	योग	251	100.00

उपरोक्त सारणी से प्रदर्शित होता है कि सभी उत्तरदाताओं में से 75.30 प्रतिशत उत्तरदाता दलित जाति कल्याण विभाग कार्यक्रमों एवं उनके द्वारा उपलब्ध कराई गई सुविधाओं से संतुष्ट हैं, जबकि 24.70 प्रतिशत उत्तरदाता दलित जाति कल्याण विभाग कार्यक्रमों एवं उनके द्वारा उपलब्ध कराई गई सुविधाओं से संतुष्ट नही हैं। निष्कर्षतः यह इंगित होता है कि अधिकांश उत्तरदाता दलित जाति कल्याण विभाग कार्यकमों एवं उनके द्वारा उपलब्ध कराई गई सुविधाओं से संतुष्ट हैं।

सारणी संख्या – 5

दलित जाति के लोगों के परिवार कल्याण कार्यक्रम के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण

क्रम संख्या	विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हाँ	185	73.71
2	नहीं	66	26.29
	योग	251	100.00

सारणी के आंकड़े यह प्रदर्शित करते हैं कि दलित जातियों में परिवार कल्याण कार्यक्रम के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखने वाले लोगों की संख्या 73.71 प्रतिशत है। ऐसे उत्तरदाता यह मानते हैं कि दलित जाति के परिवारों में परिवार कल्याण कार्यक्रम के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण हैं,26.29 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने उक्त कथन से असहमति व्यक्त करते हुए स्पष्ट रूप से यह बताया कि दलित जातियों में परिवार नियोजन कार्यक्रम के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण नहीं है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि आधे से अधिक उत्तरदाता यह मानते हैं कि दलित जातियों के परिवारों में परिवार कल्याण कार्यक्रम के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण है।

निष्कर्ष :– प्रस्तुत अध्याय में महिलाओं के लिए चलायी जा रही कल्याणकारी एवं विकास योजनाओं के प्रति जागरूकता का पता लगाने का प्रयास किया गया है। बहुत कम उत्तरदाता हैं जिन्हे अत्याचार उत्पीड़न में आर्थिक सहायता योजना की जानकारी है। बहुसंख्यक उत्तरदाता वर्तमान छात्रवृत्ति को अध्ययन कार्य के लिए प्रर्याप्त नहीं मानती हैं। अधिकांश उत्तरदाता यह मानते हैं कि दलित जाति कल्याण कार्यक्रमों की उपयोगिता एवं व्यावहारिकता आवश्यकताओं को पूरा करने में पर्याप्त है। अधिकांश उत्तरदाता दलित जाति कल्याण विभाग कार्यक्रमों एवं उनके द्वारा उपलब्ध कराई गई सुविधाओं से संतुष्ट हैं। आधे से अधिक उत्तरदाता यह मानते हैं कि दलित जातियों के परिवारों में परिवार कल्याण कार्यक्रम के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण है। दलितों के विकास एवं कल्याण के लिए अनेक

सराहनीय कार्य किये जा रहे है जिसका लाभ कुछ हद तक इनकों मिला भी है। लेकिन सुधार की जितनी अपेक्षाऐं थी अभी नही हुआ है। दलित महिलाओं की समस्याओं को सुलझाने व निराकरण हेतु प्रयासरत् होने की जरूरत है।

सुझाव

- दलित जाति के लोगों को अच्छी तरह से सरकारी और गैर सरकारी योजनाओं के बारे में बताया जाये जिससे वे तथा उनका परिवार और समाज अधिक से अधिक लाभान्वित होंगे।
- दलित जाति के हितों की निगरानी करने के लिए राज्य, जिला एवं उपमंडल स्तरों पर सलाहकार समितियाँ गठित की जाए।
- सरकार द्वारा इन दलित समुदायों के लोगों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिए।

सदंर्भ ग्रन्थ सूची

1. *क्रोमेक माग्रेट, ''द हिन्दु वूमेन'' ब्यूरो ऑफ पब्लिकेशन टिचर्स कॉलेज, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी, 1953, पृ.–51*
2. *शर्मा ललिता, ''मुरादाबाद मण्डल में अनुसूचित जातियों के छात्र–छात्राओं के जीवन प्रतिमान में हो रहे परिवर्तन व गतिशीलता का एक सामाजशास्त्रीय अध्ययन अप्रकाशित शोध ग्रन्थ रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली 1990, पृ. –341*
3. *सारस्वत, स्वप्निल एवं निशांत सिंह, ''सामज राजनीति और महिलाऐं–दशा और दिशा (श्रमिक महिलाओं का संघर्ष), राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007, पृ.67*
4. *सिंह गजवीर, अनुसूचित जातीय छात्र–छात्राओं के उच्च शिक्षा के क्षेत्र में उभरते शैक्षिक प्रतिमानः एक समाज शास्त्रीय अध्ययन, जुलाई–दिसम्बर 2016, वर्ष 18, अंक 2, पृ. 62।*
5. *अहमद शकील, अनुसूचित जातीय महिला नेतृत्व की राजनीतिक अभिरूचि एवं सजगता, राधा कमल मुखर्जीः चिन्तन परम्परा, जुलाई–दिसम्बर, 2014, वर्श 16, अंक 2 पृ. 67।*
6. *शर्मा सास्वत, डॉ. सपना, ''शासन की योजनाएँ और दलित महिला'', ग्लोबल जरनल ऑफ मल्टीडिसीप्लेनरी स्टडीस वोल्यूम 4, इशू 02, जनवरी 2015, पृ. 175*

भारत में रियासतों का एकीकरण और सरदार पटेल

डॉ. जनक सिंह मीना
सहायक प्रोफेसर, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय देशी रियासतों की समस्या का स्थायी हल एक महत्वपूर्ण एवं गम्भीर चुनौती थी। ब्रिटिश भारत में न केवल गर्वनरों के अधीन प्रान्त थे, वरन् छोटी–बड़ी अनेक रियासतें थी। अंग्रेजों के राज में भारत दो भोगों में विभाजित था – ब्रिटिश भारत और देशी रियासतें। इन देशी रियासतों की संख्या बटलर कमेटी 1929 के अनुसार 562 थी। भारत में देशी रियासतों के एकीकरण में सरदार वल्लभभाई पटेल की महत्ती भूमिका रही है। साथ ही यह भी स्पष्ट होता है कि भारत में रजवाड़ों, ठिकानों एवं रियासतों की संख्या में भिन्नता देखने को मिलती है परन्तु प्राथमिक एवं द्वितीयक स्त्रोतों से प्राप्त तथ्यों एवं सूचनाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि भारत में सरदार पटेल ने 562 रियासतों का एकीकरण कर राष्ट्र का निर्माण किया था जो एक अद्वितीय कार्य था।

संकेताक्षरः *रियासत, रजवाड़े, कूटनीतिक, विलीनीकरण, अखंण्ड़ता, औपनिवेशिक, राष्ट्रीयता।*

ब्रिटिश सरकार में भारत में रियासतें (प्रिंस्ली स्टेट्स) नाममात्र के स्वायत्त राज्य थे। इन्हें भारत में कई नामों से जाना जाता था, जिनमें हैं – रियासत, रजवाड़े, देशी रियासत इत्यादि। ये रियासतें भारतीय शासकों द्वारा अवश्य शासित थे, परन्तु उससे ज्यादा ब्रिटिश शासकों का नियंत्रण था। ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत में व्यापार के उद्देश्य से आयी और यहाँ की राज्य व्यवस्था को देखकर अपनी कूटनीतिक सैनिक शक्ति के सहारे देश में शासन सत्ता स्थापित कर ली। 1857 की क्रान्ति के पश्चात् भारत में 562 रियासतें थी जिनके अन्तर्गत 46 प्रतिशत भूमि थी।[1] भारत में रियासतों की संख्या में अभी तक कोई एक राय नहीं बन पायी है और इनकी संख्या 548, 549, 550, 551, 552, 553, 554, 555, 556, 560, 561, 562, 563, 564, 565, 566, 568, 584 देखने को मिलती है। इस शोध पत्र में इस बात की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है और तथ्यों एवं साक्ष्यों के साथ तर्कपूर्णता के साथ इसके समाधान के प्रयास किए जा रहे हैं। इनकी संख्या निर्धारण के साथ इन रियासतों के एकीकरण में सरदार वल्लभभाई पटेल की भूमिका को दृष्टिपटल पर लाने का प्रयास किया जा रहा है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय देशी रियासतों की समस्या का स्थायी हल एक महत्वपूर्ण एवं गम्भीर चुनौती थी। ब्रिटिश भारत में न केवल गर्वनरों के अधीन प्रान्त थे, वरन् छोटी–बड़ी 565 रियासतें थी।[2] सम्पूर्ण राष्ट्र का अवैज्ञानिक आधार पर छोटे–बड़े खण्ड़ों में विभक्त रहना आर्थिक एवं सामाजिक प्रगति में बाधक था। राजनीतिक शक्ति के मामले में एक रियासत दूसरी रियासत से क्षेत्रफल, जनसंख्या आदि में भिन्न थी। स्वतंत्रता पश्चात् भारतीय एकता के प्रतीक प्रखर देशभक्त जो ब्रिटिश राज के अन्त के बाद 562 रियासतों को जोड़ने के लिए प्रतिबद्ध थे।[3] 'सरदार पटेल का नाम भारत की तत्कालीन 563 रियासतों के भारत में विलीनीकरण के कारण बहुत ही सम्मान से लिया जाता है।'[4] '1947 में जब हिन्दुस्तान आजाद हुआ तब यहाँ 565 रियासतें थी।'[5] 'जिस समय ब्रिटिश भारत छोड़ रहे थे, उस समय यहाँ के 562 रजवाड़ों में से सिर्फ तीन को छोड़कर सभी ने भारत में विलय का फैसला किया, ये तीन रजवाड़े थे – कश्मीर, जूनागढ़ और हैदराबाद।'[6] देश की 562 छोटी–बड़ी रियासतों को भारत में मिलाने का काम सरदार पटेल के ही प्रयासों से सम्भव हो पाया।[7] देश की आजादी के समय

भारत में 565 रियासतें थी। सरदार पटेल की अद्‌भुत क्षमता एवं दक्षता, कूटनीति और आत्मीय शैली ने छः सप्ताह के अन्दर 565 में से 561 रियासतों को विलय के लिए तैयार कर लिया।[8]

अंग्रेजी राज में भारत दो भोगों में विभाजित था – ब्रिटिश भारत और देशी रियासतें। इन देशी रियासतों की संख्या बटलर कमेटी 1929 के अनुसार 562 थी।[9] देशी राज्य संख्या में 500 से ऊपर थे। उनमें सबसे बड़ा राज्य हैदराबाद था, जिसका क्षेत्रफल 82,000 वर्गमील से अधिक था और छोटे से छोटा राज्य केवल कुछ एकड़ों का ही था।[10] स्वतंत्रता के समय 566 भारतीय रियासतों में से 12 रियासतें पाकिस्तानी क्षेत्रों से घिरी हुई थी इसलिए उन्हें पाकिस्तान में सम्मिलित किया गया। शेष 554 रियासतें भारत में रह गई। इनमें से जूनागढ़ (सौराष्ट्र), भोपाल, हैदराबाद और जम्मू कश्मीर को छोड़कर 550 रियासतों ने सरदार पटेल के प्रयत्नों से 15 अगस्त 1947 से पहले ही भारतीय संघ में मिलने की सहमति दे दी।[11] सरदार पटेल ने 550 से भी अधिक रियासतों एवं जागीरों का मसला इतने कुशल तरीके से सुलझाया कि उनके घोर आलोचक भी दंग रह गये।[12] भारत को स्वतंत्रता तो मिली, किन्तु क्षत–विक्षत रूप में देश का विभाजन 562 देशी रियासतों के साथ जिन्हें अंग्रेजों की कूटनीति के कारण भारतीय संघ में विलय होने न होने का अधिकार दे दिया गया था, ऐसी प्रतिकूल व अनिश्चित परिस्थिति को समाप्त कर राष्ट्र को अखंण्ड़ता और स्थायित्व देने का महत्त कार्य सरदार पटेल ने ही पूरा किया।[13] संघों में मिलाये जाने वाले राज्यों की संख्या 275, समीपवर्ती प्रान्तों में मिला दिये जाने वाले राज्यों की संख्या 216 रही तथा केन्द्र के अधिकार में रखे गये राज्यों की संख्या 61 रही। कुल राज्यों की संख्या 552 एवं क्षेत्रफल 3,87,893 वर्गमील था।[14]

उपायसायकांगस्पृक्‌संख्यानि किल भारते।
राज्यानि कोटिनवकप्रजान्यापुः स्वतन्त्रताम्।।

उस समय 554 रियासतें जिनकी जनसंख्या नौ करोड़ थी, केन्द्रीय शासन से मुक्त हो गई थीं।[15] जब अंग्रेजों ने हमारे देश को आजाद किया तो देश की रियासतों को भी स्वतंत्र कर दिया कि वे चाहें तो पाकिस्तान के साथ रहें या भारत के साथ। देश भर में उस समय कुल मिलाकर 584 रियासतें थी।[17]अंग्रेज भारत छोड़ते समय लगभग 600 रियासतों को स्वतंत्र छोड़ गये।[18] 15 अगस्त, 1947 को भारत की 42 करोड़ जनता में से 3/5 भाग की जनता को स्वतंत्रता प्राप्त हुई, परन्तु देश के 565 छोटे–बड़े देशी राज्यों में बसने वाली 2/5 भाग की जनता की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।[19] सरदार वल्लभ भाई पटेल जो इतिहास के सुनहरे पृष्ठों में लौह पुरूष के नाम से भी अंकित हैं, संगठित भारत के निर्माता और 'एक राष्ट्र एक राज्य' की आधुनिक परिभाषा के अनुकूल हिन्दुस्तान को लगभग 554 असमान तथा बिखरे हुए देशी राज्यों के इसके संघ में विलीनीकरण द्वारा, विशालतम पैमाने पर खड़ा करने वाले नायक के रूप में भी आम और खास द्वारा जाने जाते हैं।[20] सरदार पटेल ने लौह पुरूष के रूप में कार्य देशी राज्यों के विलीनीकरण के संबंध में सम्पन्न किया। उनकी तुलना जर्मनी के बिस्मार्क से की जाती है बल्कि उनका यह कार्य बिस्मार्क से भी बड़ा था क्योंकि बिस्मार्क ने जर्मनी में 20–25 राज्यों का ही एकीकरण किया था जबकि सरदार पटेल ने भारत में 554 देशी राज्यों का विलीनीकरण करके 'अखण्ड़ भारत का निर्माण' करके पूरे विश्व में एक मिसाल कायम कर दी जिसका उदाहरण दुनिया में अन्य कहीं नहीं है।[21]

सरदार पटेल ने भारत की 552 छोटी–बड़ी रियासतों को स्वतंत्र भारत में शामिल होने के लिए राजी किया था।[22] सरदार पटेल ने आजादी के बाद करीब 500 रजवाड़ों की समस्या को बड़ी योग्यता से सुलझाया और भारत की एकता को भंग न होने दिया।[23] सर्वाधिक कठिन समस्या 565 रियासतों की थी।[24] जिस समय देश आजाद हुआ भारत में 565 रियासतें थी।[25] इसी समय (सरदार पटेल) 500 से ऊपर छुटपुट रियासतों को एक संविधान के अन्तर्गत लाने में सफल हुए। इतिहास में शायद ही कोई ऐसी मिसाल मिले, जब किसी राजनीतिज्ञ या राष्ट्र–निर्माता को सत्तर वर्ष का होने पर अपने जीवन के आखिरी तीन–चार वर्षों में इतनी बड़ी सफलताऐं मिली हो।[26] स्वतंत्रता के बाद देश की 600 से अधिक छोटी–बड़ी रियासतों को मिलाकर भारत को एकता के सूत्र में बांधने का महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक कार्य किया।[27] सन् 1947 में जब भारत स्वाधीन हुआ तब भारत में लगभग 565 रियासतें थी।[28] रियासतों की कुल संख्या 552 थी। सरदार पटेल ने दूरदर्शिता से पहले तो इनमें से कुछ रियासतों का संघ बनाया, कुछ को प्रान्तों से जोड़ा और शेष को भारत सरकार के प्रभुत्व में ले लिया।[29] सरदार ने जूनागढ़ सहित 552 देशी राज्यों के राजाओं के मनों को जीतकर एकीकरण कर दिया। इन राज्यों का क्षेत्रफल 3,87,793 वर्ग किलोमीटर तथा जनसंख्या 60782 हजार थी।[30] उन्होंने (सरदार पटेल) 554 देशी रियासतों का एकीकरण किया।[31]इस सूचना का अमल होने पर हिन्दी अखंडमें 565 जितने सैद्धान्तिक रीति से सम्पूर्ण स्वतंत्र ऐसी सार्वभौम रियासतों का निर्माण होता .... इन सभी बातचीतों ने वल्लभभाई में जिस तरह से औदार्यपूर्ण राजकीय दृष्टि बताई थी, उसके फलस्वरूप इस समस्या का हल बन पाया।[32] *पण सरदारजी 563 तुकडयांत खंडित होऊ*

पाहाणान्या भारताना एक संघ बनविले (अर्थात् सरदार पटेल ने टुकड़ों में खंडित 563 भागों को मिलाकर भारत संघ बनाया)।[33] इससे पहले कि हम भारत के गृहमंत्री के रूप में उनकी भूमिका और राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में उनके योगदान का विश्लेषण करें, विशेष रूप से 568 बड़ी और छोटी रियासतों को समेकित किया जिसमें 86 मिलियन लोग सम्मिलित थे जो गरीबी और दासता में रहते थे।[34] जब ब्रिटिश भारत छोड़कर गये तो विभाजित भारत की अखण्ड़ता को भी खतरा था। लगभग 560 राजसी राज्यों को हवा में लटकता छोड़ दिया गया था।[35]सन् 1947 में जब हिन्दुस्तान आजाद हुआ तब यहाँ 565 रियासतें थी। इनमें से अधिकांश रियासतों ने ब्रिटिश सरकार से लोकसेवा प्रदान करने एवं कर (टैक्स) वसूलने का ठेका ले लिया था। कुल 565 में से केवल 21 रियासतों में ही सरकार थी और मैसूर, हैदराबाद तथा कश्मीर नाम की सिर्फ 3 रियासतें ही क्षेत्रफल में बड़ी थी।[36]

सरदार पटेल ने चार वर्ष तक गृहमंत्री के रूप में कार्य किया। यह चार वर्ष उनके जीवन के ऐतिहासिक क्षण कहे जाते हैं। मंत्री के रूप में भी वे हर व्यक्ति ये मिलते थे और उनकी समस्या का समाधान खोजते थे। उन्होंने 542 रियासतों का विलय करवाया जिसमें सबसे कठिन विलय जूनागढ़ व हैदराबाद का रहा।[37]अंग्रेज सरकार ने बंटवारे से पहले रियासतों को भारत और पाकिस्तान में से किसी एक में मिलने के लिए चालीस दिन का समय दिया था। इतने कम समय में 562 देशी रजवाड़ों को स्वतंत्र भारत की तरफ करने की चुनौती थी सरदार पटेल के पास। दरअसल 15 अगस्त, 1947 से पहले अगर ये रजवाड़े भारत या पाकिस्तान किसी के साथ नहीं जुड़ते तो अगले दिन से अपने को स्वतंत्र मान सकते थे। ऐसे में इतने कम समय में पटेल ने इन सभी रजवाड़ों को भारत में शामिल करवाकर भारत देश को एक नया रूप दिया। सरदार पटेल ने रियासतों को भारत में शामिल होने के लिए मूल मंत्र यह बनाया था कि सभी रजवाड़ों और रियासतों के मालिकों में देशभक्ति की भावना जगाना। इसी मूल मंत्र को लेकर सरदार पटेल ने हर रियासत को भारत में मिलाने का संकल्प लिया। कई रियासतों ने महज सरदार पटेल की मुलाकात के बाद खुद को भारत के साथ आने का एलान कर दिया था। सरदार पटेल ने सभी रियासतों के राजाओं को एक भारत के लिए आगे आने के लिए समझाया जिसके परिणामस्वरूप कुछ को छोड़कर शेष सभी रजवाड़ों ने भारत में विलय का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।[38] वर्ष 1947 में स्वतंत्र होने के बाद भारत 565 स्वतंत्र रियासतों में बंटा हुआ था। माउन्टबेटन ने जो प्रस्ताव भारत की आजादी को लेकर जवाहर लाल नेहरू के सामने रखा था, उसमें यह प्रावधान था कि भारत के 565 रजवाड़े भारत या पाकिस्तान में से किसी एक में अपनी रियासत के विलय को चुनेंगे। इसमें एक प्रावधान यह भी था कि दोनों के साथ न जाकर ये रियासतें अपने को स्वतंत्र रख सकेंगे। सरदार वल्लभ भाई पटेल ने चतुराई से भारत के हिस्से में आए रजवाड़ों को एक–एक करके विलय पत्र पर हस्ताक्षर करवा लिये।[39] आजादी प्राप्ति के दौरान भारत में करीब 562 देशी रियासतें थी। सरदार पटेल तब अंतरिम सरकार में उपप्रधानमंत्री के साथ देश के गृहमंत्री थे। जूनागढ़, हैदराबाद, कश्मीर को छोड़कर 552 रियासतों ने स्वेच्छा से भारतीय परिसंघ में शामिल होने की स्वीकृति दी थी।[40]

स्वतंत्रता के समय 'भारत' के अन्तर्गत तीन तरह के क्षेत्र थे 1 ब्रिटिश भारत के क्षेत्र में लंदन के इंण्डिया आफिस तथा भारत के गर्वनर जनरल के सीधे नियंत्रण में थे 2 देशी राज्य 3 फ्रांस और पुर्तगाल के औपनिवेशिक क्षेत्र (चंदननगर, पाण्डिचेरी, गोवा आदि)। इस तरह कुल मिलाकर भारतवर्ष में 562 रियासतें थीं, जिनमें से 565 रजवाड़ें ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत थे। 565 रजवाड़ों में से 552 रियासतों ने स्वेच्छा से भारतीय परिसंघ में शामिल होने की स्वीकृति दी थी। जूनागढ़, हैदराबाद, त्रावणकोर और कश्मीर को छोड़कर बाकी रियासतों ने पाकिस्तान के साथ जाने की स्वीकृति दी थी।[41] भारत सरकार के एक सर्वे के अनुसार 1947 में 562 देशी रियासतें थी, हालांकि एक अन्य सर्वे में 600 से अधिक की पहचान की गई। इसमें 327 ईस्टेट्स (Estate), 127 राज्य और 108 राज्य (State) जो एक राजाओं के समूह के निर्वाचित प्रतिनिधि थे।[42] राज्य की सूची जो डॉमिनियन ऑफ इण्डिया में उपलब्ध है :– 1. अगर 2. आगरा बारखेरा 3. अहमदनगर 4. अजयगढ़ 5. अजरौड़ा 6. अकालकोट 7. अकडिया 8. अली राजपुर 9. अलवर 10. अरकोट 11. आलमपुर 12. अलीपुरा 13. अल्वा 14. आमला 15. अम्बलियारा 16. आमोड़ 17. अमरापुर (कैधवार) 18. अमरापुर (रेवा कंधा) 19. आनंदपुर 20. आंधड 21. अंकेवालिया 22. अरनिया 23. अधगढ़ 24. अधमलिक 25. औंढ़ 26. बालसीनोर 27. बांगनपल्ले 28. बांसडा 29. बांसवारा 30. बौनी 31. बरूंधा 32. बरिया 33. बडौदा 34. बरवानी 35. बशहर 36. बेनारेस 37. भरतपुर 38. भावनगर 39. भोपाल 40. भोर 41. बीजावर 42. बीकानेर 43. बिलासपुर 44. बूंदी 45. बावरा 46. बगासरा 47. बगासरा हडला 48. बगासरा खारी 49. बगासरा नटवर 50. बगासरा राम 51. बाद्यल 52. बाघट 53. बागली 54. बाई 55. बाजना 56. बख्तगढ़ 57. बलसान 58. बामनबोर 59. बामरा 60. बनेरा 61. बंका पहाड़ी 62. बंतवा मनावदार 63. बंतना

सरदारगढ़ 64. बारम्बा 65. बारड़िया 66. बरखेडा देव डूंगरी 67. बरखेड़ा पंध 68. बारवाला 69. बासोड़ा 70, बस्तर 71. बौध 72. बेरी 73. भाभर 74. भादौरा 75. भादली 76. भदवाना 77. भादवा 78. भौसोला 79. भज्जी 80. भलाला 81. भलगाम 82. भलदोई 83. भलगामदा 84. भालूसना 85. भंडारिया 86. भरेजडा 87. भरूदपुरा 88. भाथन 89. भदखेड़ी 90. भावल 91. भीऑल्डिया 92. भीमोरिया 93. भौइका 94. भोजखेड़ी 95. भोजावदार 96. भोरोले 97. बिछारांद वरिष्ठ 98. बिछारांद कनिष्ठ 99. बिहत 100. बिहोरा 101. बीजा 102. बिजना 103. बिलौद 104 बिलौदा 105. बिलबाड़ी 106. बिलड़ी 107. बौद 108. बोदानोनेस 109. बोलूंद्रा 110 बोनई 111. बोरखेड़ा (इन्दौर) 112. बोरखेड़ा (मालवा) 113 कैम्बे 114. चम्बा 115. चरखारी 116. छतरपुर 117. छोटा उदयपुर 118. कोचिन 119. कूच बेहार 120. कच्छ 121. चाचना 122. चमाद्री 123. चंगभाकर 124. चरखा 125. चेररा 126. छलाला 127. छलियार 128. छोटा बरखेड़ा 129. छुइकाडन 130. चिक्तीयाबर 131. चिंची गडाद 132. चिरोदा 133. चित्रावास 134. चोबारी 135. चोक 136. चोरांगला 137. चोटिला 138. चूड़ा 139. चूडेसर 140. दन्ता 141. दतिया 142. देवास (सीनियर) 143. देवास (जूनियर) 144. धार 145. धरमपुर 146. धौलपुर 147. ध्रागंध्रा 148. ढ़ोल 149. डूंगरपुर 150. दाभा 151. दब्र 152. दधालिया 153. दाहिदा 154. दप्पलपुर 155. दरिया खेड़ी 156. दरकोटी 157. दारोड़ 158. दसाड़ा 159. दसपल्ला 160. दताना 161. दधा 162. देभावटी 163. देदान 164. देदरड़ा 165. देध्रोटा 166. देलॉली 167. देवदार 168. देरडी जांबाई 169. देरोल 170. देवालिया 171. देवलिया 172. धबला 173. धीर 174. धबला धोसी 175. धमासिया 176. धामी 177. धौरा गंजारा 178. धारी 179. धरनौड़ा 180. धेंकानाल 181. ढ़ोला 182. धोलाखा 183. धुलाटिया 184. धुरवाई 185. डोडका 186. ध्राफा 187. दूधपुर 188. दूधरेज 189. दूगरी 190. दूजना 191. फरीदकोट 192. गोंडल 193. ग्वालियर 194. गबत 195. गढ़ बोरियाड 196. गाधली 197. गाढिया 198. गढका 199. गाढूला 200. गडवी 201. गंधोल 202. गंगपुर 203. गरामली मोती 204. गरामली नहानी 205. गरहा 206. गररोली 207. गारही 208. गौरीहार 209. गवरीदाड़ 210. गेडी 211. घोडासर 212. गिगासारण 213. गोतारडी 214. गोढड़ा 215. गुण्डियाली 216. हैदराबाद 217. हलारिया 218. हापा 219. हारोल 220. हिण्डोल 221. हिन्दूर 222. हीरापुर 223. आइदर 224. इन्दौर 225. इलपुरा 226. इलोल 227. इत्रिया 228. इटवाड़ 229. जयपुर 230. जैसलमेर 231. जम्मू एवं कश्मीर 232. जनजीरा 233. जौरा 234. जवहार 235. झाबुआ 236. झालावाड़ 237. जिंद 238. जोधपुर 239. जूनागढ़ 240. जबरिया भील 241. जाफराबाद 242. जाखन 243. जलिया मानजी 244. जलिया देवानी 245. जलिया कपाणी 246. जम्मूघोड़ा 247. जमखण्डी 248. जमानिया 249. जसदान 250. जशपुर 251. जासी 252. जठ 253. जवासिया 254. जेसर 255. जेतपुर 256. झालेरा 257. झमर 258. झमका 259. झम्पोदर 260. झरी बरखडी 261. झिंझूवाडा 262. जिगनी 263. जिराल कमसोली 264. जोबत 265. जुब्बल 266. जुम्खा 267. जूनापादर 268. कालाहांडी 269. कपूरथला 270. करौली 271. खिलचीपुर 272. किशनगढ़ 273. कोल्हापुर 274. कोटाह 275. कच्ची बडोदा 276. कडाना 277. कादोली 278. काली बावरी 279. कलसिया 280. कालू 281. खेड़ा 282. कमधिया 283. कमलापुर (बोम्बे) 284. कमलापुर (सीआई) 285. कम्भला 286. कमटा राजौला 287. कानडा 288. कनेर 289. कनजरड़ा 290. कांकेर 291. कांकरेज 292. कांकसियाली 293. कानपुर ईश्वरिया 294. कंधारिया 295. करौडिया 296. करियाना 297. करमाड़ 298. करोल 299. कासला पगिना मुवाड 300. कस्सलपुरा 301. काथून 302. कथियावारा 303. कथरोटा 304. कटोदिया 305. कटोसन 306 कावरधा 307. कयाथ 308. केऑनझर 309. केंथल 310. केरवाड़ा 311. केसरिया 312. खाडल 313. खैरागढ़ 314. खजूरी 315. खाम्बलाव 316. खांडिया 317. खण्ड़पाड़ा 318. खानियाछाना 319. खरसावन 320. खरसी 321. खेडावाडा 322. खेरली 323. खेरवाडा 324. खेडी राजपुर 325. खेरवासा 326. खिओडा 327. खिजाडिया (गोहिलवार) 328. खिजाडिया (सूरध) 329. खिरासरा 330. खोजनखेडा 331. क्यरिम 332. किरली 333. कोरेया 334. कोटडा नयानी 335. कोटडा पीठा 336. कोटडा सांगनी 337. कोठारिया 338. कूबा 339. कुम्हासेन 340. कुनिहार 341. कुरूंदवाड (सीनियर) 342. कुरूंदवाड (जूनियर) 343. कुरवाली 344. कुशलगढ़ 345. कुठार 346. लिम्बडी 347. लोहारू 348. लूनावाडा 349. लखपादर 350. लखतर 351. लालगढ़ 352. लालियाड़ 353. लांगरिन 354. लाठी 355. लावेज 356. लावा 357. लिखी 358. लिम्बदा 359. लोधिका 360. लुगासी 361. मैहार 362. मालेरकोटला 363. मण्डी 364. मणिपुर 365. मयूरभंज 366. मोरवी 367. मुधोल 368. मैसूर 369. मगोडी 370. मगुना 371. महराम 372. माहलोग 373. महमूदपुरा 374. मकराय 375. मकसुदानगढ़ 376.

मलाई सोहमत 377. मालिया 378. मालपुर 379. मनावदार 380. मण्डवा 381.मनाल 382. मंगाम 383. मांगरोल 384. मंसा 385. माऔंग 386. मौसंग्राम 387. मरियाव 388. मथराव 389. मातरा टिम्बा 390. मेन 391. मंगानी 392. मेवासा 393. मेवली 394. मिराज (सीनियर) 395. मिराज (जूनियर) 396. मोहनपुर 397. मोका पगिना 398. मुवाडा 399. मोनवेल 400. मोरचोपना 401. मुलिया डेरी 402. मोटा कोथरना 403. मोवा 404. मुहम्मदगढ़ 405. मुली 406. मुलिया डेरी 407. मुल्थान 408. मुंजपार 409. मामलियम 410. नाभा 411. नागोद 412. नरसिंगढ़ 413. नावानगर (जामनगर) 414. नहारा 415. नाइगावान राइबल 416. नालिया 417. नंदगांव 418. नरसिंगपुर 419. नारूकोट 420. नारवाड 421. नसवाडी 422. नौगांव 423. नौलाना 424. नयागढ़ 425. नीलगिरी 426. निलवाला 427. नीमखेड़ा 428. नोवो सोहोह 429. नोधांवादर 430. नोंगकलां 431. नोंगसपुंग 432. नोंगसटोइन 433. ओरछा 434. पालनपुर 435. पलिटाना 436. पन्ना 437. परताबगढ़ 438. पटियाला 439. पटना 440. पोरबन्दर 441. पुटुक्कोट्टाई 442. पाचेगाम 443. पाह 444. पहरा 445. पाल 446. पाल लाहेरा 447. पलाज 448. पाललली 449. पलासनी 450. पलासविहार 451. पालदेव 452. पालिमाड 453. पलासनी 454. पंचवाडा 455. पाण्डू 456. पांतलवाडा 457. पंथ पीपलोदा 458. पारोन 459. पटौदी 460. पातडी 461. पाथडी 462. पथारिया 463. पठापुर 464. फलटन 465. फुलेरा 466. पिमलादेवी 467. पिम्परी 468. पीपलिया 469. पीपलियानगर 470. पीपलोदा 471. पोइचा 472. पोल 473. प्रेमपुर 474. पुनाद्रा 475. राधनपुर 476. राजगढ़ 477. राजकोट 478. राजपीपला 479. रामपुर 480. रतलाम 481. रेवा (रेवाह) 482. रघुगढ़ 483. राहरखोल 484. राय सांकली 485. रायगढ़ 486. राईखा 487. राजगढ़ (सीआई) 488. राजपारा (गोहिलवार) 489. राजपारा (हलार) 490. राजपुर (काठियावार) 491. राजपुर (रेवा कंधा) 492. रमणका 493. रामस 494. रामब्राई 495. रामदुर्ग 496. रागढ़ 497. रामपरडा 498. रामपुर (उ.प्र.) 499. रामपुरा 500. राणासन 501. रंधिया 502. रानीगाम 503. रानीपुरा 504. रणपुरा 505. रतनमाल 506. रतनपुर धमानका 507. रातेश 508. रेगन 509. रोहिसाला 510. रूपाल 511. साचिन 512. सैलाना 513. समधार 514. सांगली 515. सांत 516. सावंतवाडी 517. शाहपुरा 518. सिक्किम 519. सिरमूर 520. सिरोही 521. सीतामाउ 522. सोनेपुर 523. सुकेत 524. साडा खेरी 525. साहुका 526. साकठी 527. समधियाला 528. समधियाला चारन 529. समधियाला छभाडिया 530. समला 531. सनाला 532. सनौधा 533. सन्दूर 534. सांगरी 535. संजेली 536. सनोर 537. सनोसरा 538. संतालपुर 539. सारनगढ़ 540. सरीला 541. सतानोनेस 542. सथम्बा 543. सतलासना 544. सटोंदाड बावडी 545. सवानूर 546. सायला 547. सेजाकपुर 548. सेराइकेला 549. शाहपुर 550. शाजोता 551. शानोर 552. शेओगढ़ 553. श्योपुर–बरोडा 554. शेवदीवादर 555. शिवबारा 556. सिडरी 557. सिहोरा 558. सिलाना 559. सिंधियापुरा 560. सिंघाना 561. सिरगुजा 562. सिरसी (ग्वालियर) 563. सिरसी (मालवा) 564. सिसांग चांदली 565. सोहावाल 566. सोनगढ़ 567. सोनखेड़ा एवं सारवाण 568. सुदाम्रा 569. सुदासना 570. सुईगाम 571. सुंध 572. सुरगना 573. सरगूजा 574. टेहरी गढ़वाल 575. टोंक 576. त्रावणकोर 577. त्रिपुरा 578. ताजपुरी ताल 579. तलसाना 580. टप्पा 581. टारोंण 582. तावी 583. तेजपुरा 584. टेरवाडा 585. सुतालिया 586. थाना देवली 587. धराड व मोरवाडा 588. थरोच 589. टिगिरिया 590. टिम्बा 591. टोडा 592. टोडी 593. टोंक (सीआई) 594. टोरी फतेहपुर 595. उदयपुर (मेवाड़) 596. उचाना 597. उदयपुर (छत्तीसगढ) 598. उमरी (बोम्बे) 599. उमरी (सीआई) 600. ऊनी 601. उमेठा 602. ऊंटडी 603. उपवाडा 604. वादल 605. वडली 606. वाडिया 607. वडोद (गोहीलवार) 608. वडोद (झालावाड) 609. वद्यवाडी 610. वजीरिया 611. वख्तापुर 612. वाला 613. वलसाना 614. वाना 615. वनाला 616. वंगाधरा 617. वनोड 618. वारागाम 619. वरनोल माल 620. वरनोली मोती 621. वरनोली नानी 622. वरसोडा 623. वासन सेवडा 624. वासन वीरपुर 625. वसावड 626. वसुरना 627. वावडी धरवाला 628. वावडी वचानी 629. वेकारिया 630. विछावड 631. विजानोनेस 632. विजयनगर 633. विरमपुरा 634. विरपुर 635. विरसोडा 636. विरवाओ 637. विठ्ठलगढ़ 638. वोरा 639. वधवान 640. वांकानेर 641. वडागाम 642. वाडी 643. वाई 644. वांकानेर 645. वाओ 646. वधवान 647. वारही 648. वासना 649. जैनबाद।

उपरोक्तानुसार हम विभिन्न स्त्रोतों से प्राप्त तथ्यों एवं सूचनाओं के संग्रहण से किसी एक निष्कर्ष पर पहुँचना अत्यन्त दुष्कर कार्य है, परन्तु तार्किकता,उपलब्ध साक्ष्यों एवं सरकारी स्त्रोतों से प्राप्त तथ्यों एवं सूचनाओं के आधार पर भारत में देशी रियासतों के एकीकरण में सरदार वल्लभभाई पटेल की भूमिका पर संदेह नहीं कर सकते।

साथ ही यह भी स्पष्ट होता है कि भारत में रजवाड़ों, ठिकानों एवं रियासतों की संख्या में भिन्नता देखने को मिलती है परन्तु प्राथमिक एवं द्वितीयक स्त्रोतों से प्राप्त तथ्यों एवं सूचनाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि भारत में सरदार पटेल ने 562 रियासतों का एकीकरण कर राष्ट्र का निर्माण किया था जो एक अद्वितीय कार्य था। उन्होंने देश को एकता की डोर में पिरोने एवं राष्ट्रीयता एवं अखण्डता की दिशा में अमिट छाप छोड़ी जो वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रेरणा एवं प्रोत्साहन देकर निस्वार्थ कर्त्तव्यबोध कराने की ऊर्जा प्रदान करता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *मुक्त ज्ञानकोश विकिपीडिया, ब्रिटिश भारत में रियासतें, 2017*
2. *वी.पी. मेनन, दि स्टोरी ऑफ दि इंटीग्रेशन ऑु दि इंडियन स्टेट्स, ओरियन्ट लांगमैन, कलकत्ता, 1956, पृष्ठ संख्या 177*
3. *मृत्युजंय दीक्षित, आधुनिक भारत के निर्माता, लौहपुरूष सरदार पटेल, 31 अक्टूबर, 2015*
4. *राकेश कुमार आर्य, भारतीय रियासतों का एकीकरण और पटेल, 25 अगस्त, 2012*
5. *डॉ. राधे याम द्विवेदी, भारत में देशी रियासतें और उनका इतिहास, 18 अगस्त, 2016*
6. *रेहान फजल, कैसे बना हैदराबाद भारत का हिस्सा, 31 जुलाई, 2013*
7. *ऐसा क्या किया पटेल ने, सरदार पटेल, दैनिक भास्कर, 28 अक्टूबर, 2015*
8. *डॉ. जनक सिंह मीणा, सरदार वल्लभभाई पटेल का प्रशासनिक योगदान, लोक प्रशासन अर्धवार्शिक शोध पत्रिका, वर्ष 4, अंक 1, जनवरी–जून 2012, पृष्ठ संख्या 06*
9. *डॉ. जी.पी. नेमा, डॉ. राकेश जैन एवं डॉ. हरिशचन्द्र शर्मा, भारत में राज्यों की राजनीति, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, पृष्ठ संख्या 38*
10. *वी. शंकर, सरदार पटेल चुना हुआ पत्र व्यवहार 1945–1950, खण्ड–1, 1976, पृष्ठ संख्या 546*
11. *डॉ. मोहनलाल गुप्ता, सरदार वल्लभ भाई पटेल, अरिहन्त प्रकाशन, जोधपुर 2015, पृष्ठ संख्या 144*
12. *आई.जे. पटेल, आधुनिक भारत के निर्माता सरदार वल्लभ भाई पटेल, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार दिल्ली, 2005 पृष्ठ संख्या (1)*
13. *गिरिराज शरण, मैं पटेल बोल रहा हूँ, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ संख्या 08*
14. *मीना अग्रवाल, सरदार पटेल, डायमण्ड बुक्स, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ संख्या 155–158*
15. *शिवप्रसाद भारद्वाज, लौहपुरूशावदानम्, शिवप्रसाद भारद्वाज, देहरादून, 1990, पृष्ठ संख्या 410*
16. *प्रो. एस.एम. चाँद, डॉ. इकबाल फातिमा, सरदार वल्लभ भाई पटेल जीवन और विचार, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2010, पृष्ठ संख्या 155*
17. *कमल शुक्ल, लौह पुरूष सरदार पटेल, अनिल प्रकाशन दिल्ली, 2009, पृष्ठ संख्या 11*
18. *मोहम्मद फरीश मंसूरी, लौह पुरूष सरदार वल्लभ भाई पटेल, ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2013, पृष्ठ संख्या 132*
19. *रावजी भाई मणिभाई पटेल, हिन्द के सरदार, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, 2013, पृष्ठ संख्या 211*
20. *रविन्द्र कुमार, सरदार पटेल के प्रमुख निर्णय, कल्पाज पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2014, पृष्ठ संख्या 11*
21. *प्रेमलाल सिंह, डॉ. सुधा सिंह, अखण्ड भारत के निर्माता सरदार पटेल, आकाशदीप पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ संख्या 111*
22. *मनीष कुमार, लौह पुरूष सरदार वल्लभ भाई पटेल, प्रीति प्रकाशन, दिल्ली, 2011, पृष्ठ संख्या 07*
23. *पी.डी. टण्डन, भारत के कर्णधार, साहित्य भवन प्रा.लि. इलाहबाद, 1992, पृष्ठ संख्या 28*
24. *गुणवन्त शाह, द पीयरलेस सरदार, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 2013, पृष्ठ संख्या 16*
25. *एम.पी. कमल, सरदार वल्लभ भाई पटेल, राजा पाकेट बुक्स, दिल्ली, 2008, पृष्ठ 80*
26. *विष्णु प्रभाकर, सरदार वल्लभ भाई पटेल, नेशनल बुक ट्रस्ट, इण्डिया, दिल्ली, 2012, पृष्ठ संख्या 55*
27. *डॉ. प्रभा चौपड़ा, सरदार पटेल भारत का विभाजन, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2010 (सरदार पटेल के परिचय मेकवर पृष्ठ पर)*
28. *हिम्मतभाई मेहता, चक्रवर्ती सन्यासी सरदार पटेल, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, 2014, पृष्ठ संख्या 329*
29. *भगवती प्रसाद निदारिया, लौहपुरूष सरदार वल्लभ भाई पटेल, कीन बुक्स, दिल्ली, 2014, पृष्ठ संख्या 67*
30. *बाबू भाई जशभाई पटेल, संगठित भारत के निर्माता – सरदार वल्लभ भाई पटेल*
31. *रविन्द्र कुमार, सरदार वल्लभ भाई पटेल के सामाजिक व राजनीतिक विचार, मित्तल पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1991, पृष्ठ संख्या 128*

32. सरदार वल्लभ भाई पटेल पर माहिती विभाग, गुजरात राज्य द्वारा प्रकाशित, 1994, पृष्ठ संख्या 18

33. नीरुभाई देसाई, वल्लभभईच्याजीवनाचे पैलू, साधना सरदार पटेल विशेषांक, 1992, पृष्ठ संख्या 33

34. पी.एल. संजीव रेड्डी एवं एस.एन. मिश्र, सरदार वल्लभ भाई पटेल द नेशन बिल्डर, (के.एल.कमल – सरदार पटेल– द अरचीटेक्चर ऑफ मॉर्डन इण्डिया) आईआईपीए, नई दिल्ली, 2004, पृष्ठ संख्या 128

35. बी.कृष्ण, सरदार वल्लभ भाई पटेल, इण्डस सोर्स बुक्स, मुम्बई, 2014, पृष्ठ संख्या 79

36. मुक्त ज्ञानकोश विकिपीडिया, ब्रिटिश भारत में रियासतें, 2017

37. पूवोक्त मृत्युंजय दीक्षित

38. चालीस दिन में किया विलय, रियासतों का विलय, सरदार पटेल, दैनिक भास्कर, 28 अक्टूबर, 2015

39. शिरिष त्रिपाठी, ये है स्वतंत्रता के बाद भारतीय राज्यों के विलय की कहानी, 9 फरवरी, 2016 (TOPYAPS.com)

40. 'khttps//hi.wikipedia.org/wiki/भारत का राजनीतिक एकीकरण, 17 अप्रैल, 2017

41. अनिरुद्ध जोशी, 'शतायु' भारत विभाजन से जुड़ी दस बातें, Web Dunia 17 अप्रैल, 2017

42. डॉमिनियन ऑफ इण्डिया (ब्रिटिश एम्पायर), 2017

अम्बेडकर का राष्ट्रवादी दृष्टिकोण : एक विश्लेषण

देवेन्द्र प्रताप तिवारी
पूर्व शोध छात्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उत्तरप्रदेश)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

राष्ट्र, राष्ट्रीयता और राष्ट्रवाद के संबंध में डॉ. भीमराव अम्बेडकर के विचारों की चर्चा अकादमिक गोष्ठियों एवं अधिवेशनों में बहुत ही कम देखने व सुनने को मिलती हैं। भारत के वामपंथी एवं दक्षिणपंथी यहां तक की दलित चिंतकों एवं अम्बेडकरवादी विचारकों में भी डॉ. अम्बेडकर के इन विचारों के प्रति उदासीनता देखने को मिलती हैं। वर्तमान समय में इन बिन्दुओं पर अध्ययन और भी महत्वपूर्ण हो जाता है जब बदलते राजनीतिक परिदृश्य में विभिन्न राजनीतिक धाराओं द्वारा उन्हें अपनाने की प्रतियोगिता चल रही है। इस शोध पत्र में अम्बेडकर के राष्ट्रवादी चिंतन का ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। यह सत्य है कि उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन की मुख्य धारा में सहभागिता नहीं की और न ही उसका कभी भी समर्थन ही किया, परंतु उनके द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से जो सामाजिक आधारशिला रखी गयी वह आज भी भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में महत्वपूर्ण हैं।

संकेताक्षर : *राष्ट्रवाद, दलित चिंतक, अखण्ड भारत, संस्कृति, राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन।*

डॉ. भीम राव रामजी अम्बेडकर (1891–1956) की पहचान भारतीय संविधान के निर्माता और दलितों के मसीहा के रूप में होती है। भारतीय समाज में व्याप्त विसंगतियों से दुःखी होकर उन्होंने ब्रिटिश शासन के खिलाफ होने वाले राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन से न केवल दूरी बना ली बल्कि कई अवसरों पर उसका विरोध और ब्रिटिश नीतियों का समर्थन भी किया। ऐसे समय में जबकि संम्पूर्ण राष्ट्र मातृभूमि की स्वतंत्रता हेतु तत्पर था, उस समय अम्बेडकर का यह दृष्टिकोण उन्हें और उनकी राष्ट्र–भक्ति दोनों को सवालों के घेरे में ला खड़ा करता है।

सामान्य अर्थों में राष्ट्रवाद, राष्ट्र को आधार मानकर चिन्तन और क्रिया करना है। जब किसी देश के निवासी अपने देश की भूमि और उससे जुड़े सांस्कृतिक तथ्यों को सर्वश्रेष्ठ मानकर अथवा उनके प्रति अगाध श्रद्धा रखते हुए अपने विचारों, भावनाओं और क्रियाओं का समन्वय करते हैं तो वे राष्ट्रवादी कहे जाते हैं। इस प्रकार के राष्ट्रवादी व्यवहार को प्रेरित करने वाली भावनात्मक शक्ति को राष्ट्रवाद कहा जाता है। सरल शब्दों में अपने राष्ट्र के प्रति अटूट प्रेम ही राष्ट्रवाद है।

डॉ. भीम राव अम्बेडकर अपने सामाजिक अनुभवों के कारण भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था से बहुत खिन्न थे, जिसके कारण भारतीय सामाजिक एवं सांस्कृतिक तथ्यों के प्रति उनके मन में उतनी श्रद्धा विकसित नहीं हो पायी। परंतु भारत भूमि के प्रति उनका लगाव निष्कपट और अटूट था। आने वाली पीढ़ियों के लिए भारतीय समाज और राजनीति की पुनर्रचना का जो ढाँचा उन्होंने तैयार किया, उसने भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में महत्वपूर्ण योगदान ङ्कदान किया है।

1. अम्बेडकर के राष्ट्रवादी चिंतन का आधार

डॉ. अम्बेडकर के उपर भले ही यह आरोप लगाए जाय कि उन्होंने अंग्रेजी शासन के खिलाफ राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन में भाग नहीं लिया, परंतु केवल इसी आधार पर उनके राष्ट्रवादी भावनाओं को नकार देना उचित नहीं होगा। जातिवाद का अन्त,

समतापूर्ण समाज का निर्माण, महिला शिक्षा एवं सशक्तिकरण, लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना, परम्परागत धार्मिक मूल्यों की जगह आधुनिक विचारों को महत्व, सशक्त केन्द्रीय सरकार आदि विचार अम्बेडकर के राष्ट्रवादी चिंतन का आधार हैं। अम्बेडकर की राष्ट्रवादी अवधारणा उनकी अपनी परिस्थितियों एवं अनुभवों की उपज थी। तत्कालीन भारतीय समाज के सबसे अंतिम और अस्पृश्य एवं गरीब परिवार में जन्म लेने के कारण उन्होंने जिन सामाजिक और आर्थिक कठिनाईयों का सामना किया उससे उनकी प्राथमिकताएं बहुत हद तक प्रभावित हुई। शायद यहीं कारण था कि उन्होंने राजनीतिक लोकतंत्र की जगह सामाजिक लोकतंत्र को प्राथमिकता देते थे। उनका स्पष्ट मानना था कि सामाजिक एवं आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना के बिना सच्चे लोकतंत्र की कामना करना बेमानी होगी। यहां हमे यह ध्यान रखना होगा कि अम्बेडकर की प्राथमिकताएं भले ही भिन्न हों परंतु उनका अंतिम ध्येय एक सच्चे, सशक्त एवं आधुनिक राष्ट्र का निर्माण ही था।

2. राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के प्रति दृष्टिकोण –

डॉ. अम्बेडकर का कांग्रेस के नेतृत्व में चलने वाले राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के प्रति अविश्वास का भाव था। इसी कारण उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन के समय कई बार महात्मा गांधी और कांग्रेस की खुलकर आलोचना की। परंतु इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि वे भारतीय स्वतंत्रता के पक्षधर नहीं थे। उनका मानना था, कि भारत की स्वतंत्रता के साथ–साथ अछूतों की समस्या का भी समाधान होना चाहिये।

1928 में ब्रिटिश सरकार ने कानूनों और राजनीतिक सुधारों के निरीक्षण के लिए सर जान सायमन के नेतृत्व में एक छः सदस्यीय आयोग भारत भेजा। इस आयोग में एक भी भारतीय सदस्य न होने के कारण कांग्रेस सहित अन्य बहुतेरे राजनीतिक दलों ने इस कमीशन का विरोध किया। परंतु अम्बेडकर इससे विरत रहे। उनका मानना था, कि केवल इस प्रकार के बहिष्कार मात्र से समस्या हल नहीं होने वाली। डॉ. अम्बेडकर ने कमीशन को सहयोग देकर अपने सहकार्य द्वारा अन्य राजनैतिक नेताओं का रोष स्वीकार किया। जब सायमन रिपोर्ट तैयार हो गयी तो उन्होंने न केवल उस पर हस्ताक्षर किए बल्कि अलग से एक मतपत्रिका भी संलग्न की।

यद्यपि अम्बेडकर ने सायमन कमीशन का सहयोग किया, परंतु सायमन कमीशन के विरोध में पंजाब केशरी देश–भक्त लाला लाजपत राय पर हुए लाठी चार्ज के फलस्वरुप उनकी मृत्यु के पश्चात अम्बेडकर ने मुम्बई में शोक सभा का आयोजन कर उस महान आत्मा को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

3. सामाजिक विषमता बनाम राष्ट्रवाद –

अम्बेडकर की दृष्टि में राष्ट्रवाद सामाजिक आत्मसातीकरण की एक प्रक्रिया है, और यदि इस अर्थ में राष्ट्रवाद को लिया जाएगा तो सामाजिक भाईचारा को बल मिलेगा जिसके फलस्वरुप भारतीय राष्ट्रवाद के सच्चे स्वरुप को और विकसित किया जा सकेगा। उन्होंने आजीवन जातिवाद, भाषावाद, साम्प्रदायिकता और अलगाववाद के विरुद्ध लड़ाई पर बल दिया, क्योंकि उनका मानना था कि ये सामाजिक बुराईयां लोगों को छोटे–छोटे टुकड़ों में बाटतीं हैं जो राष्ट्रवाद के आदर्शों के विपरीत हैं। सामान्यतया राष्ट्रवाद का सम्बंध राष्ट्र और राष्ट्रीयता से और देश–भक्ति का संबंध मातृभूमि या जन्मभूमि से है, जबकि अम्बेडकर के लिए देश–भक्ति और राष्ट्रवाद, लोकतंत्र तथा समानता की उत्कट आकांक्षा है। उनका मानना था कि सच्ची देश–भक्ति सही दिशा में क्रिया और सभी गलत चीजों के प्रति प्रतिक्रिया है और राष्ट्रवादी नेताओं को भारतीय समाज से जातिवाद, सांम्प्रदायिकता, बलात् श्रम आदि को उखाड़ फेकना चाहिए।

अपनी व्यक्तिगत भूमिका को समझाते हुए उन्होंने कहा, जब जब मेरे व्यक्तिगत हित और देशहित आपस में टकराये हैं तब तब मैने देशहित को ही प्रधानता दी है। लेकिन मै अपने समाज के प्रति निष्ठा से भी जुड़ा हूँ। उनका स्पष्ट मत था कि ''उनका आंदोलन किसी विशेष जाति के लिए नहीं है।'' उन्होंने कहा कि – जब तक राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक विषमता का अंत नहीं कर लूंगा, चैन से नही बैठूंगा लोकतंत्र के स्थायित्व के लिए आवश्यक है कि जाति विहीन व वर्ग विहीन समाज की स्थापना हो। यह यथार्थ है कि विषमता विद्वेष की जननी है, और विद्वेष, विध्वंश को जन्म देता है। ऐसे हालात में जहां विषमता पनपती हो वहां राष्ट्र और राष्ट्रीयता के भाव का उदय सम्भव नहीं है। इस प्रकार डॉ. अम्बेडकर ने भारतीय राष्ट्रवाद के उन्नयन के उद्देश्य से इस विषमता पर व्यापक प्रहार किया।

वे केवल भारत में ही नहीं बल्कि विदेशों में बसे भारतीयों के साथ होने वाले भेदभावों के प्रति भी चिंतित रहते थे। दक्षिण अफ्रीका में रहने वाले भारतीयों को रंगभेद की नीति के कारण के कारण बहुत परेशानी होती है, इसलिए उस सरकार की आर्थिक नाकेबंदी की जानी चाहिए, एक भारतीय सदस्य ने ऐसा प्रस्ताव पेश किया। सभी यूरोपियन सदस्यों ने विरोध किया, लेकिन अम्बेडकर ने कड़े रूख के साथ कहा कि– यह भारतीयों के स्वाभिमान का प्रश्न है। अम्बेडकर की मध्यस्थता के कारण ही काउंसिल ने यह बिल मंजूर किया था।

4. भाषा का प्रश्न

राष्ट्रवाद के आदर्श स्वरुप में केवल एक भाषा के प्रचलन को उपयुक्त माना जाता है। 19वी सदी में जर्मनी और इटली जैसे यूरोपीय देशों के अंदर एकता स्थापित करने वाले राष्ट्रीय आंदोलनों में समूह की एक भाषा होना का एक प्रमुख कारक था। परंतु स्विटजरलैण्ड का उदाहरण जहां कई भाषा– भाषी समूह रहते हैं, राष्ट्रवाद और भाषा के प्रश्न पर एक अलग प्रतिमान स्थापित करता है। जिससे स्पष्ट होता है कि एक भाषा का होना राष्ट्रवाद की अनिवार्य शर्त नहीं है। वस्तुस्थिति यह है कि एक भाषा–भाषी समुदाय कहीं पर राष्ट्र निर्माण का आधार रहा है, तो कही राष्ट्रीयता का परिणाम। लैटिन अमेरिका का उदाहरण ले तो वहां कई विरोधी राष्ट्रों की एक ही भाषा है।

राष्ट्रवाद और भाषा के प्रश्न पर अम्बेडकर का एक अलग दृष्टिकोण था। एक देश में कई भाषाओं के प्रचलन के अवगुणों को देखते हुए, अम्बेडकर ने कनाडा, स्विटजरलैण्ड और दक्षिण अफ्रीका का उदाहरण देते हुए विचार दिया कि विभिन्न भाषाएं राष्ट्रवादी चेतना एवं विकास में बाधक नहीं बननी चाहिए। इसके साथ ही वे भारतीय राष्ट्रवाद तथा एकता और राष्ट्रीय चेतना में वृद्धि एवं सांस्कृतिक व जातीय संघर्ष निवारण हेतु एक सामान्य भाषा की बात करते थे। उनका मत था कि एक सामान्य भाषा न होने से लोग अपनी भावनाओं और विचारों को आपस में साझा नही कर पाते हैं, जिससे मतभेद और बढ़ते हैं जो कालान्तर में संघर्षों को जन्म देते हैं। एक भाषा होने से न केवल राष्ट्र के अन्दर मानवीय एकता को बल प्रदान होगा, बल्कि प्रजातीय एवं सांस्कृतिक तनाव भी दूर होंगे।

जब भारत सरकार ने भाषा पर आधारित प्रदेश निर्माण पर विचार करने के लिए एक मंडल (धर समिति) की स्थापना की स्थापना की। अम्बेडकर ने भी इस समिति के समक्ष महाराष्ट्र में एक निवेदन प्रस्तुत किया। इसमें उन्होंने कहा कि प्रजातंत्र के लिए भाषा पर आधारित प्रदेश रचना आवश्यक है, लेकिन प्रादेशिक भाषा को प्रदेश रचना का आधार नहीं बनने देना चाहिए। नहीं तो प्रादेशिक राष्ट्रवाद पैदा होने की संभावना है जो राष्ट्रीय एकता के लिए खतरा है।

5. भारत विभाजन का प्रश्न

जब पाकिस्तान की मांग सारे भारत में जड़ पकड़ रही थी। उस विषय पर 1940 में सर्वांगीण विचार रखने ग्रंथ वाला ग्रंथ 'थाट्स ऑन पाकिस्तान' सर्वप्रथम उन्होंने लिखा। इसमें उन्होंने सिद्धान्त प्रस्तुत किया कि भारत के हिन्दुओं को शांति से जीने के लिए भारत के हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दो भाग कर दिए जाने चाहिये। उनका मानना था कि हिंदुओं को मन में यह डर नहीं रखना चाहिए कि पड़ोस के मुस्लिम राष्ट्र हम पर धावा बोल देंगे, क्योकि वर्तमान युद्धतंत्र के कारण देश की भौगोलिक सीमा का आज की दुनियां में कोई महत्व नहीं है। सुरक्षित सीमा की अपेक्षा भारत के प्रति निष्ठा रखने वाली गैर मुसलमानों की फौज हिफाजत के लिहाज से ज्यादा अहम है। उन्होंने सुझाया कि पाकिस्तान बनाने से पहले पाकिस्तानी हिस्से के हिन्दू तथा हिन्दुस्तान के मुसलमानों की अदला बदली हो जानी चाहिए। अम्बेडकर का विश्वास था कि केन्द्रीय शासन सशक्त करने के लिए भारत का विभाजन आवश्यक है। अन्यथा भारत की स्वाधीनता सदा ही संकट में रहेगी।

6. राष्ट्र की एकता और अखण्डता का विचार

अप्रैल,1938 में विधानसभा में स्वतंत्र कर्नाटक प्रदेश का निर्माण करने वाले विधेयक पर चर्चा में भाग लेते हुए स्पष्ट शब्दों में कहा, – ''इस स्वतंत्र प्रदेश की मांग के कारण राज्य में लिंगायत तथा अन्य सब निवासियों के बीच द्वेष पैदा हो जाएगा। अंग्रेजी शासन की हमें महत्वपूर्ण भेंट यह है कि केंद्रीय शासन शक्तिशाली हो और सब लोगों के लिए एक ही कानून हो। हम सब भारतवासियों का यह ध्येय होना चाहिए कि इस भावना को हम हर व्यक्ति के मन में जागृत करें कि हम सब भारतीय हैं।'' राज्य संघ योजना का विरोध करते हुए उन्होंने चेताया कि इसमें रियासतों के प्रतिनिधि अंग्रेजों के एजेंट होंगे। वहां के निवासी केवल रियासतीर प्रजा रहेंगे। राज्यसंघ का उन पर कोई अधिकार नहीं होगा। यह एक खतरा है, इसलिए हमें केन्द्रीय शासन प्रणाली चाहिए।

13 दिसम्बर, 1946 को संविधान सभा के उद्देश्यों एवं ध्येय को स्पष्ट करने वाला प्रस्ताव रखा गया। संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के आग्रह पर बोलते हुए अम्बेडकर ने कहा कि – आज हम भले ही राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से टूट गये हों फिर भी परिस्थिति और समय अनुकूल होते ही हमारी एकता को कोई रोक नहीं सकेगा। भले ही आज मुस्लिम लीग हिन्दुस्तान के टुकड़े करने के लिए आंदोलन चला रही है, फिर भी एक ऐसा भी दिन उदित होगा जब वह भी महसूस करेंगे कि अखण्ड भारत ही हम सबके लिए हितकर है। अम्बेडकर के इस वक्तव्य के बाद कांग्रेस का उनकी ओर देखने का दृष्टिकोण पूरी तरह बदल गया।

25 नवंबर, 1949 को संविधान सभा में एक चर्चा का उत्तर देते हुए अम्बेडकर ने कहा– यह संविधान अच्छा हो या बुरा, उसकी अच्छाई या बुराई उसका व्यवहार करने वालों पर पर अवलंबित होगी। इसके पूर्व भारत ने अपनी स्वाधीनता अपने ही लोगों के देशद्रोह के कारण गंवाई थी।

भारत के इतिहास से देशद्रोह के उदाहरण देते हुए उन्होंने उद्विग्नता के साथ कहा, हमें अपनी आजादी कायम रखने के लिए अपने खून की आखिरी बूंद तक पूरी लगन के साथ जुट जाना होगा।

फरवरी, 1928 में एक सर्वदलीय बैठक में स्वयं और किसी अन्य दलित संगठन के आमंत्रित नहीं किए जाने पर अपने विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा कि इसमें दलित समाज के लिए किसी भी तरह की व्यवस्था नहीं की गयी है। इसके विपरीत मुसलमानों को जरूरत से ज्यादा सहूलियतें दी गयी हैं। नेहरू रिपोर्ट पर अपने प्रखर लेख में डॉ. अम्बेडकर ने स्पष्ट रूप से लिखा– हम जानते हैं कि हमारी स्पष्टवादिता से मुसलमान समाज का रोष हम पर अधिक बढ़ने वाला है, फिर भी देश का जहां अकल्याण होगा उसी में हमारे समाज का भी अकल्याण है, इस भावना से ही हम यह खतरा अपने सिर ले रहे हैं। उस समय किसी ने अम्बेडकर की दूरदर्शिता की इस आवाज पर ध्यान नहीं दिया, परन्तु आगे चलकर इसी वजह से मुस्लिम लीग को मुम्बई प्रदेश से सिंध प्रांत अलग करवाने में सफलता मिली।

7. राष्ट्रीय हित एवं विदेश नीति

विदेश नीति के संचालन के प्रति अम्बेडकर के विचार उन्हे यथार्थवादियों के निकट ला खड़ा करता है। 1954 में एक बार उन्होंने कहा था कि – ''दूसरे विश्वयुद्ध में जर्मनी को चारों ओर से घेर लिया गया था। जल्द ही सारे मुस्लिम देशों का संयुक्त इस्लामी राष्ट्र बनने वाला है। आज हमारा एक भी मित्र नहीं है। इसलिए हमारे देश के लिए शस्त्रीकरण के सिवा कोई और रास्ता नहीं है। हमें तुरंत तय कर लेना चाहिए कि हमारे लिए प्रजातंत्र हितकर है या कम्युनिज्म। फिर हमें उस गुट के राष्ट्रों के साथ मित्रता कर लेनी चाहिए।'' इस प्रकार हम देखते है कि अम्बेडकर राष्ट्रीय हित की सुरक्षा के लिए न सिर्फ शस्त्रीकरण का समर्थन करते हैं बल्कि नेहरुवादी गुटनिरपेक्षता की नीति का भी खण्डन किया।

डॉ. अम्बेडकर ने 26 अगस्त, 1954 को राज्य सभा में विदेश नीति पर बोलते हुए रुस की अधिकारवादी नीति की कड़ी आलोचना की। उनका कहना था कि साम्यवाद फैलने वाले दावानल की समान है जो अंततः सब कुछ भस्म कर देता है। माओत्से तुंग ने बौद्धों के साथ जो व्यवहार किया उस पर आक्षेप करते हुए उन्होंने कहा कि राजनीति में पंचशील का कोई उपयोग नहीं है, कम से कम कम्युनिस्ट देशों में तो है ही नहीं। उनका मानना था कि सारा एशिया आज युद्ध का मैदान बना हुआ है। इसलिए भारत को तुरंत लोकतांत्रिक देशों से हाथ मिला लेना चाहिए। चीन के बारे में अम्बेडकर की भविष्यवाणी 1962 में भारत पर चीनी आक्रमण के रुप में सत्य साबित हुई।

8. निष्कर्ष

उपर्युक्त विश्लेषणात्मक विवेचन के आधार पर हम कह सकते है कि डॉ. अम्बेडकर का संपूर्ण जीवन स्वरुप लोकतांत्रिक था। उन्होंने प्रजातंत्र को जीवन का मूल्य मानकर समाज को बदलने का प्रयास किया। भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप भारतीय राष्ट्रवाद की अवधारणा देने वाले अम्बेडकर इस तरह के एक मात्र विचारक है। उनके राष्ट्रवादी विचारों में सर्वप्रमुख उसके सामाजिक–सांस्कृतिक और राजनीतिक संकल्पना के बीच विभाजन रेखा खीचना था। उनकी दृष्टि में राष्ट्रवाद की संकल्पना राजनीतिक कम सामाजिक और सांस्कृतिक ज्यादा थी। जबकि महात्मा गांधी आदि विशेषकर हिन्दू राष्ट्रवादी नेताओं का ज्यादा बल उसके राजनीतिक स्वरुप पर था।

यह सत्य है कि अम्बेडकर ने कभी भी स्वतंत्रता आंदोलन में भाग नहीं लिया, बल्कि यदा–कदा उसका विरोध ही किया, परन्तु यह भी सत्य है कि उनका यह विरोध लाखों बहिर्वेशित भारतीयों की वास्तविक स्वतंत्रता का आधार बना। उनके विचारों में राष्ट्रवाद मातृभूमि की अंधभक्ति मात्र नहीं है। राष्ट्रीय स्वतंत्रता का उनका व्यापक दृष्टिकोण था। उनकी दृष्टि में केवल बाहरी शासन से आजादी एक अधूरी कल्पना है, सही मायने में हमें दासता, गरीबी, निरक्षरता से मुक्ति हेतु प्रयास करना चाहिए। उनका मानना था किसी राष्ट्र की स्वतंत्रता और वहां के नागरिकों की स्वतंत्रता के बीच अंतर नही किया जा सकता।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *Dr. Ambedkar,* ***Writing and speeches,*** *vol. 2ए 1982ए चच 504.505.*
2. *डी. आर. जाटव(1998), राष्ट्रीय आंदोलन में अम्बेडकर की भूमिका, समता साहित्य सदन, जयपुर पृ. 98।*
3. *Dr. Ambedkar, Writing and speeches, vol. 2, 1982, चच 313.416.*
4. *वही, पृ. 245।*
5. *डी. आर. जाटव (1998) राष्ट्रीय आंदोलन में अम्बेडकर की भूमिका, समता साहित्य सदन, जयपुर पृ. 98।*
6. *Durgadas (1969), India – From Curzon to Nehru and After, Collins, St. James Palace, London, p.236.*

7. वसंत मून (1991), डॉ. बाबासाहब अम्बेडकर, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली ,पृ0 135–136 द्वारा उद्धत डॉ. अम्बेडकर(1940), थॉट्स आन पाकिस्तान।

.8. वही, पृ. 136।

9. वसंत मून(1991), डा. बाबासाहब अम्बेडकर, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली ,पृ0 122।

10. वही, पृ. 175।

11. वही, पृ. 186।

12. वही, पृ. 51।

13. वही, पृ. 199।

14. वही, पृ. 200।

श्री अरविन्द का संस्कृति विषयक चिन्तन

कमलनयन
सेवानिवृत्त प्राचार्य, कालेज शिक्षा सेवा, जयपुर

आरती सोनी
आगरा (उत्तरप्रदेश)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

*संस्कृति मनोमय जीवन का स्वयं मनुष्य के अपने ही लिये अनुशीलन है। इसकी प्रक्रिया की अभिव्यक्ति इतिहास में होती है। अरविन्द संस्कृति को एक ऐसी समष्टि के रूप में देखते हैं जो मनो–दैहिक आविर्भाव है, और जिसका आध्यात्मिक लक्ष्य, जिसे वे परम् शिव कहते हैं, की सिद्धि है। अरविन्द समष्टि–रूप संस्कृति की गति चक्रात्मक मानते हैं तथा मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों के आधार पर सांस्कृतिक युगों का विभाजन करते हैं। उन्होंने मानव–चक्र के इस सिद्धान्त को न केवल वेदान्त से ग्रहण किया था उन पर जर्मन इतिहासज्ञ लैम्प्रेरख्ट का भी प्रभाव था। वे लेम्प्रेख्ट द्वारा निर्धारित सांस्कृतिक युगों, प्रतीकात्मक **(Symbolic)**, आदर्श प्रधान **(Typal)**, परम्परा प्रधान **(Conventional)**, व्यक्ति–प्रधान **(Individualistic)**, अनुभव–प्रधान **(Subjective)**, को सामाजिक मनोवैज्ञानिक प्रक्रियानह अपितु एक आध्यात्मिक–प्रक्रिया की अभिव्यक्तिमानते थे। वे संस्कृति की परम्गति मनुष्य द्वारा परम् सत्ता के साथ तादात्म्य में देखते हैं। हालाँकि अरविन्द सांस्कृतिक बहुलता को स्वीकार करते हैं, किन्तु वे मूलतः इन संस्कृतियों का स्रोत एक ही परम् सत्ता को मानते हैं।*

***संकेताक्षर** : मानव चक्र, आध्यात्मिकता, संस्कृति, सभ्यता, युगचक्र, प्रतीकात्मक युग, आदर्श प्रधान युग, परम्परा प्रधान युग, व्यक्तिप्रधान युग एवं अनुभव प्रधान युग, अतिबौद्धिक सुन्दरम्, अतिशिवम्।*

श्री अरविन्द के समान रहस्यवादी–दृष्टाओं के ऐसे उदाहरण दुर्लभ ही हैं जिन्होंने सामाजिक उद्विकास (Social-Evolution) के सिद्धान्त प्रतिपादन किया है।[1] साथ ही वे उन विरले भारतीय चिन्तकों – गोविन्दचन्द्र पाण्डे एवं यशदेव शल्य आदि – में पहले चिन्तक हैं जिन्होंने संस्कृति पर वेदान्त–दृष्टि पर आधारित संस्कृति–दर्शन का प्रतिपादन किया है। अन्यथा भारत में संस्कृति विषयक चिन्तन पाश्चात्य चिन्तन का अनुगामी ही रहता रहा है।

चेतना के अन्वेषक एवं खोजकर्त्ता[2], मानवीय क्रमिक विकास (Evolution) के दृष्टा[3] श्री अरविन्द अक्रयोद घोष (1872–1950) एक ऐसे ही विचारक हैं जिन्होंने अपने सामाजिक–दर्शन को अपनी प्रति मानव–चक्र में प्रस्तुत किया है।[4] इसके अतिरिक्त उनके भारतीय संस्कृति विषयक विचार उनकी कृति भारतीय संस्कृति के आधार में प्रस्तुत किये गये हैं। इस कृति में उन्होंने पाश्चात्य विचारकों द्वारा भारतीय संस्कृति की आलोचना का सशक्तप्रत्याख्यान किया है।[5]

मानव–चक्र को सर्वप्रथम 'आर्य' पत्रिका के अगस्त, 1916 से जुलाई 1918 के मध्य के मासिक लेखों के रूप में 'सामाजिक विकास का मनोविज्ञान' नामक शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित किया गया। इसे 1930 एवं 1949 में पुनः प्रकाशित किया गया एवं यह मानव–चक्र के नाम से प्रकाशित हुई।[6] मानव–चक्र श्री अरविन्द की विश्व–दृष्टि की अभिव्यक्ति है। इस ग्रन्थ में पश्चिमी एवं पूर्वी परम्पराओं के सर्वश्रेष्ठ का समन्वय कर एक नये क्रांन्तिकारी सिद्धान्त के प्रकाश में प्रस्तुत किया गया है : यह सिद्धान्त है आध्यात्मिकता के सृजनात्मक उद्विकास का सिद्धान्त।[7]

श्री अरविन्द के अनुसार, "आधुनिक विज्ञान ने इस विचार के वशीभूत होकर कि जड़तत्त्व ही एकमात्र सत्ता है, आत्मा और मन का तथा मनुष्य एवं पशु में प्रकृति की क्रियाओं का अध्ययन चिरकाल से भौतिक तथ्यों के आधार पर ही करने का यत्न किया है परन्तु पिछले कुछ समय से मन तथा आत्मा की व्याख्या करने के लिए जड़ प्रति की सर्वसमर्थता पर शंका की जाने लगी तब इस विचार का सूत्रपात हुआ कि सामाजिक तथा ऐतिहासिक विकास के आर्थिक उद्देश्यों एवं कारणों के पीछे गहरे मनोवैज्ञानिक तथा आभ्यांतरिक तथ्य भी विद्यमान है।"[8] श्री अरविन्द की संस्कृति की परिभाषा है : संस्कृति 'सामाजिक मानव' द्वारा स्वयं के स्वरूप को समझने एवं चरितार्थ करने का उद्यम है। उनके शब्दों, 'संस्कृति' मनोमय जीवन का स्वयं मनुष्य के अपने ही लिये अनुशीलन है।[9] इस प्रक्रिया की अभिव्यक्ति इतिहास में होती है।

संस्कृति तथा इतिहास की चक्रीय व्याख्या

श्री अरविन्द मानव तथा समस्त ब्रह्माण्ड के इतिहास में चक्रात्मक अग्रगति के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं। वे मानवीय प्रगति की रेखात्मक व्याख्या को पूर्णतः नकारते हैं। उनके अनुसार (विकास/प्रगति) का काल निश्चित होता है। जिस प्रकार पतन के पश्चात पुनर्निर्माण का काल होता है। श्री अरविन्द के अनुसार विकास व अवनति दोनों के युग आते जाते हैं। वे कहते हैं: किसी भी समष्टि के विकास का क्रम चक्रात्मक होता है ऋजुरेखीय नहीं।[10] उनकी मान्यता है कि न केवल सामाजिक और राजनीतिक विकास ही चक्रीय है बल्कि 'समस्त मानवीय विकास के चक्रीय सिद्धान्त' की एक ऐसी सर्वमान्य धारणा प्रस्तुत की जा सकती है जिसके संकेत पुराणों में, मनु एवं मन्वन्तरों की अवधारणा में मिलते हैं।[11] वे अपने दृष्टिकोण को 'वेदान्तिक सिद्धान्त' में निहित शाश्वत आविर्भाव व निवर्तन के चक्रीय क्रम के विचार के माध्यम से पुष्ट करते हैं।[12]

श्री अरविन्द ने मानव-चक्र के सिद्धान्त को न केवल वेदान्त से ग्रहण किया था बल्कि वे जर्मन इतिहासज्ञ कार्ल लैम्प्रेरख्त (1856-1915) से भी प्रभावित थे।[13] वे कहते हैं - ". . .युद्ध पूर्व के जर्मनी में . . .एक मौलिक प्रतिभाशाली व्यक्तिके द्वारा इतिहास के प्रथम मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त की कल्पना की गई। इस नवीन सिद्धान्त का अविष्कारक इस उद्दीप्त विचार पर पहुँच तो गया . . .फिर भी. . .उसके दिये सुझावों को विकसित करना लाभदायक होगा विशेषकार प्राच्य विचार एवं अनुभव के प्रकाश में।"[14]

लैम्प्रेरख्ट के अनुसार, विज्ञान के विचारों को इतिहास में समाहित होना चाहिये। इस प्रकार उसने उद्विकास (Evolution) के सामाजिक-भौतिक स्तरों के सिद्धान्त को विकसित किया जिसमें प्रत्येक स्तर एक निश्चित क्रम में एक के बाद एक आते हैं। उसने "यूरोपीय और विशेषकर जर्मनी के इतिहास को आधार बनाते हुए कल्पना की थी कि मानव समाज कुछ विशिष्ट मनोवैज्ञानिक अवस्थाओं में से होता हुआ प्रगति करता है जिन्हें उसने क्रमशः प्रतीकात्मक (Symbolic), आदर्श प्रधान (Typal), परम्परा प्रधान (Conventional), व्यक्ति-प्रधान (Individualistic), अनुभव-प्रधान (Subjective) नाम दिये हैं। यह प्रगति एक मनोवैज्ञानिक क्रम है जिसमें से प्रत्येकराष्ट्र और संस्कृति को गुजरना ही पड़ता है।"[15]

लैम्प्रेरव्ट के इतिहास-दर्शन को अरविन्द ज्यों का त्यों नहीं स्वीकारते। उनके अनुसार, "इस प्रकार के वर्गीकरण अनम्य होने के कारण भूल कर सकते हैं. . . मनुष्य तथा उसके सामाजिक संगठनों का मनोविज्ञान इतना जटिल है, बहुमुखी तथा परस्पर मिश्रित प्रवृत्तियों का इतना समन्वय है कि कोई भी ऐसा अनम्य तथा नियमबद्ध विश्लेषण उसे व्याख्यायित नहीं कर सकता। मनोवैज्ञानिक चक्र के इस सिद्धान्त से यह भी ज्ञात नहीं होता कि इसकी क्रमागत अवस्थाओं का गूढ़ तात्पर्य क्या है, उनकी उस क्रमागति की क्या आवश्यकता है अथवा वे किस अवस्था और लक्ष्य की ओर बढ़ रही है। फिर भी. . . उसने (लैम्प्रेरव्ट) जो अर्थसूचक संज्ञाएँ प्रस्तुत की हैं उनके आन्तरिक भाव तथा मूल्य की यदि हम परीक्षा करें तो वे घने परदे के पीछे छिपे हुए हमारे ऐतिहासिक विकास के रहस्य पर कुछ प्रकाश अवश्य डालें और इसी दशा में अनुसंधान करना अत्यन्त फलदायी होगा।"[16]

संस्कृति तथा युग-चक्रः श्री अरविन्द के अनुसार, इतिहास तथा समाजशास्त्र में बाह्य सामग्री, नियमों, संस्थाओं, रीतियों एवं प्रथाओं, आर्थिक तथ्यों तथा विकासों पर ही ध्यान केन्द्रित किया जाता है, जबकि मनुष्य जैसे मनोमय, भावनामय, विचारशील प्राणी की क्रियाओं में इतना अधिक महत्त्व रखने वाले गम्भीरतर मनोवैज्ञानिक तत्त्वों की अत्यधिक उपेक्षा कर दी गई। किन्तु अब भौतिक विज्ञान के इस पाश से मुक्तिपाने के आन्दोलन का सूत्रपात हो चुका है।[17]

लैम्प्रेरव्ट मानते थे कि प्रत्येक युग में एक विशिष्ट वृत्ति सम्पन्न मानसिक शक्ति(Psychical Force) मनुष्य के समस्त कर्म व क्रिया-कलाप को निर्धारित करती है।[18] किन्तु लैम्प्ररख्ट इतिहास की केवल मनोवैज्ञानिक व्याख्या ही प्रस्तुत नहीं कर रहे थे। हालांकि वे मानते थे कि प्रत्येक आर्थिक गतिविधि मानसिकता से प्रेरित होती है किन्तु मार्क्स से प्रभावित होने के कारण वे मानते थे कि आर्थिक परिवर्तनों का सामाजिक एवं मानसिक जीवन पर प्रभाव

पड़ता है।[19] अतः लैम्प्रेख्ट के अनुसार, इतिहास एक पूर्णतः आध्यात्मिक–प्रक्रिया या पूर्णतः मानसिक प्रक्रिया नहीं है बल्कि यह एक सामाजिक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया (Socio-Psychic Process) है।

दूसरी ओर श्री अरविन्द एक अनन्त–आध्यात्मिक शक्ति (Concept of Spiritual ultimate reality) के सिद्धान्त में दृढ़ता से विश्वास करते हैं एवं यह शक्ति स्वयं को इतिहास में अभिव्यक्त करती है तथा ऐतिहासिक प्रक्रिया को एक अंतनहित अर्थ व अन्तिम लक्ष्य प्रदान करती है।[20]

प्रतीक प्रधान युगः श्री अरविन्द वैदिक युग को भारतीय इतिहास की प्रतीकात्मक अवस्था मानते हैं, जिसमें अंतःप्रज्ञा (Intuition), रहस्यात्मक दृष्टि (mystic vision) और कल्पना प्रवणता की प्रधानता दिखाई पड़ती है।

श्री अरविन्द मानते थे कि, मानव समाज की प्रारम्भिक अवस्था में एक "ऐसी सबल प्रतीकात्मक मनोवृत्ति दृष्टिगोचर होती है जो उसके विचार, प्रथाओं व संस्थाओं पर शासन करती है, अथवा कम–से–कम उनमें रमी हुई होती है। मनुष्य की समस्त धार्मिक और सामाजिक संस्थाएँ, उसके जीवन के समस्त क्षण और अवस्थाएँ उसके लिये प्रतीक हैं। उसके जीवन की पृष्ठभूमि में तथा उसकी गतिविधि का निर्माण तथा नियंत्रण करने वाले अथवा उसमें हस्तक्षेप करने वाले गुह्य प्रभावों के विषय में वह जो कुछ जानता है उस सबको वह प्रतीक के द्वारा प्रकट करने का यत्न करता है।

उदाहरणार्थ, "यज्ञ का धार्मिक विधान समस्त समाज पर, उसके (मनुष्य के) जीवन के हर पल, क्षण पर शासन करता है . . .यज्ञ का कर्मकाण्ड अपनी प्रत्येक दिशा में तथा ब्योरे में गुह्य रीति से प्रतीकात्मक है।" इसी प्रकार यदि हम पुरुषसूक्तमें वर्णित चार्तुवर्ण्य व्यवस्था का उदाहरण देखें तो वहाँ भी यही बात दिखाई पड़ती है।" वहाँ चारों विभाग (चार्तुवर्ण्य) स्रष्टा देव के शरीर से, उसके सिर, बाहुओं, जंघाओं तथा पैरों से प्रकट हुए बताये गये हैं।"

"ब्राह्मणो मुखःमासिद बाहु राजन्य वृतः"

आज इसका अर्थ हम यह लेते हैं कि "ब्राह्मण ज्ञानी होते थे, क्षत्रिय शक्ति–सम्पन्न, वैश्य उपज करने वाले एवं समाज को आर्थिक अवलंब देनेवाले तथा शूद्र समाज की सेवा करने वाले। किन्तु यह रूपक विराट पुरुष को जीवन में अभिव्यक्तकरने का एक प्रयत्न था जो अपने आपको अन्य प्रकार से भौतिक तथा अतिभौतिक विश्व के रूप में अभिव्यक्तकिये हुए हैं। मनुष्य तथा विश्व एक ही अदृश्य सत्य के प्रवाहक तथा अभिव्यंजक हैं।[21]

इस विकास क्रम की पहली प्रतीकात्मक अवस्था मुख्यरूप से धार्मिक तथा आध्यात्मिक होती है, दूसरे मनोवैज्ञानिक, नैतिक, आर्थिक तथा भौतिक तत्व भी वहाँ विद्यमान रहते हैं, किन्तु धार्मिक तथा आध्यात्मिक विचारों की अपेक्षा उन्हें गौण माना जाता है। वैदिक संहिताओं की अपनी व्याख्या में अरविन्द यूरोपीय विचारकों की प्राकृतिक–ऐतिहासिक–भाषाशास्त्रीय विधि का तथा सायण की धर्मवैज्ञानिक विधि का खंडन करते हैं और यह दिखाते हैं कि उनमें भौतिक तथा धार्मिक अर्थ के साथ–साथ गुह्य आध्यात्मिक अर्थ भी अंतर्निहित है।[22]

आदर्श प्रधान युगः दूसरी अवस्था जिसे हम आदर्श प्रधान कह सकते हैं जो मुख्यतया मनोवैज्ञानिक व नैतिक है। यहाँ तक कि आध्यात्मिक तथा धार्मिक तत्त्व भी मनोवैज्ञानिक विचार तथा इसकी अभिव्यंजना करने वाले नैतिक आदर्श की अपेक्षा गौण रहते हैं। धर्म उस अवस्था में नैतिक लक्ष्य तथा अनुशासन के लिये एक गुह्य स्वीकृति मात्र रह जाता है। शेष बातों में धर्म अधिकाधिक पारलौकिक स्वरूप ग्रहण करने लगता है। मनुष्य में भागवत सत्ता वैश्व सत्व की सीधी अभिव्यक्ति के भाव की प्रबलता या प्रधानता अब नहीं रह जाती। यह क्रमशः पृष्ठभूमि में चला जाता है और अभ्यास क्षेत्र से विलुप्त होकर अंत में जीवन सिद्धान्त से भी निकल जाता है।

ये भाव ही परम्परा का रूप धारण कर लेते हैं . . .अंत में आदर्शवादी अवस्था बड़े–बड़े सामाजिक आदर्शों की सृष्टि करती है। इसकी मुख्य देन है, सामाजिक मानमर्यादा का भाव ब्राह्मण की मान मर्यादा, शुद्धि एवं पवित्रता में, क्षत्रिय की मानमर्यादा साहस, वीरता, शक्ति, वैश्य की खरे व्यवहार, ईमानदारी, उपयोगी उत्पादन, शूद्र की मर्यादा आज्ञापालन, अधीनता, विश्वसनीय सेवा निहित है। "परन्तु शुद्ध मनोवैज्ञानिक विचारधारा में से इन भावों की जीवंत जड़ अधिकाधिक उखड़ने लगती है अथवा मनुष्य के जीवन में से इनका स्वाभाविक प्रवाह रुकने लगता है। ये भाव ही परम्परा का रूप धारण कर लेते हैं। ये भाव जीवन के वास्तविक अंग से कहीं अधिक चिंतन में रूढ़िबद्धता तथा मौखिक शब्द बनकर रह जाते हैं।"[23]

परम्परा प्रधान युगः आदर्श प्रधान युग क्रमशः परम्परा की अवस्था में तिरोहित हो जाता है। आत्मा और आदर्श की बाह्य अभिव्यक्ति के साधन, बाह्य उपकरण आदर्श से भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं और परम्परा प्रधान युग का सूत्रपात होता है। "इस प्रकार जाति–पांति के विकास में इस नैतिक चतुर्वर्ण के बाह्य भौतिक अवलम्बों – जन्म, व्यवसाय, धार्मिक अनुष्ठान तथा पवित्र संस्कार एवं पारिवारिक रीति रिवाज – में से प्रत्येक को योजना में उसके

परिमाण तथा महत्त्व से कहीं अधिक अतिरंजित स्थान मिलने लगता है। "प्रारम्भ में सामाजिक व्यवस्था में जन्म को प्रधानता प्राप्त नहीं थी बल्कि गुण और योग्यता ही सर्वोपरि थे, परन्तु बाद में जैसे-जैसे उस प्रतिरूप को स्थायित्व प्राप्त होता गया वैसे-वैसे शिक्षा और परम्परा द्वारा उसकी रक्षा भी आवश्यक होती चली गयी तथा शिक्षा और परम्परा स्वाभाविक रूप से ही आनुवांशिक श्रेणियों को स्थायी बनाती चली गई। इस प्रकार ब्राह्मण का पुत्र परम्परा के अनुसार सदा ही ब्राह्मण समझा जाने लगा. . . परम्परा के इस कठोर रूप के एक बार स्थापित हो जाने के बाद नैतिक भूमिका को कायम रखना अब मुख्य बात न रहकर दूसरे बल्कि तीसरे दर्जे की वस्तु बन गई। जो वस्तु कभी सारी व्यवस्था का आधार थी" वह अब पूर्णतया महत्त्वहीन हो गई। हालांकि विचारक तथा शास्त्रकार का तो अब भी आदर्श पर ही आग्रह था, परन्तु समाज के वास्तविक विधान अथवा क्रियाचार में आदर्श महत्त्वहीन हो गये थे।[24]

परम्परा प्रधान युग मर्यादाएँ बाँधने, रूढ़ पद्धतियों तथा वंश परम्पराओं का विधान करने, धर्म को रूढ़ि में बाँधने, विद्या और शिक्षण को परम्पराओं तथा उन्हें कठोर अपरिवर्तनीय रूप देने, विचार को अचूक प्रमाणों के द्वारा परखने और लौकिक जीवन को ही अन्तिम वास्तविकता प्रमाणित करने का युग होता है। ये युग ऐसे होते हैं जिनमें जिस सत्य को पाने के लिये हम यत्न करते हैं उसकी न तो अनुभूति ही कर पाते हैं और न ही सिद्धि, केवल उसके किसी क्षुद्रांश को ही विस्तारित किया जाता है अथवा उसकी पूर्व बाह्य आकृति की कोई कलापूर्ण नकल बना दी जाती है और जो उसका वास्तविक सत्य होता है वह शिलाभूत होने लगता है और नियम, व्यवस्था तथा परम्परा के कठोर समुदाय में इसका विलीन हो जाना अवश्म्भावी हो जाता है।[25]

इसका कारण यह है कि सदा आकृति का ही प्रभुत्व रहता है, आत्मा पीछे तथा क्षीण हो जाती है।[26] यह पतन की गति हमें भारत के पिछले एक हजार वर्षों में उसकी बढ़ती हुई अंधकारमयी अवस्था तथा निर्बलता में मिलती है।[27]

व्यक्ति-प्रधान तथा तर्क-प्रधान युगः

व्यक्ति-प्रधान युग की विशिष्टता प्रोटेस्टेण्टवाद, तर्क, विद्रोह, प्रगति तथा स्वतंत्रता है। अरविन्द के अनुसार, "मानव समाज का व्यक्तिप्रधान युग परम्परा युग के दूषित तथा असफल हो जाने के फलस्वरूप और पथराये हुए आदर्श प्रधान शासन के विरुद्ध विद्रोह के रूप में आता है। जब परम्पराएँ पूर्ण क्रियात्मक सार्थकता खोकर रूढ़विचार और रीतिरिवाज के बल पर तथा आकार के मोह के कारण केवल यंत्रवत् हो जाती है, तब इसका जन्म होता है।"[28]

व्यक्तिवाद (Individualism) का जन्म यूरोप में हुआ। व्यक्तिवाद के बीज इस इसाई धारणा में निहित हैं कि मनुष्य एक दिव्य व्यक्तित्व है। अरविन्द ऐकेश्वरवाद, धर्मनिरपेक्षता तथा अराजकतावाद के बीज भी व्यक्तिवाद में ही देखते हैं। यूरोप में व्यक्तिवादी युग अपनी आरम्भिक अवस्था में तर्क का विद्रोह था तथा जो अपनी पराकाष्ठा में भौतिक विज्ञान की विजयपूर्ण प्रगति में परिणत हुआ।[29]

पूर्व में इसका प्रवेश तो यूरोप के संसर्ग तथा प्रभाव के कारण हुआ, किसी मौलिक प्रवृत्ति के कारण नहीं।[30] यूरोप ने अपने व्यक्तिप्रधान युग में जिन सत्यों की उपलब्धि की है वे जीवन के केवल आरम्भिक, अपेक्षा दृष्टिगोचर, भौतिक तथा बहिरंग तथ्यों के विषय में है।

यूरोप का व्यक्तिप्रधान युग प्रारम्भ में तर्क का विद्रोह मात्र था, व्यक्ति को अनुभव होने लगता है कि उस पर जो धर्म लादा गया है उसके सिद्धान्तों तथा आचरण का आधार किसी आध्यात्मिक सत्य के जीवन्त भाव नहीं प्रत्युत उसका आधार प्राचीन पुस्तकें, पोप के वचन या चर्च की परम्पराएँ हैं। परन्तु इस विद्रोह का विकास ऐतिहासिक दृष्टि से अनिवार्य था। इस की परिणति भौतिक विज्ञान की विजयपूर्ण प्रगति में हुई। इस विद्रोह ने अपनी विकासमान अवस्था में क्रमशः बिशपशासित चर्चों (Episcopolion), कालविन शैली का पवित्रतावाद (Calvinistic Puritanism) बपतिस्मावाद (Anabaptist) स्वतंत्र (Independent) ,कात्मवाद (Socinian) जैसे सम्प्रदायों को जन्म दिया।

यूरोप के व्यक्तिप्रधान युग ने व्यक्ति विषयक दो शक्तिशाली विचारों को दृढ़ता से स्थापित किया है – प्रथम समाज के अंग के रूप में सब व्यक्तियों के अधिकार की जनतंत्रात्मक धारणा, जिसके अनुसार व्यक्ति पूर्ण समृद्ध जीवन के तथा व्यक्तिगत रूप में जिस परिमाण में विकास के योग्य हैं उस विकास के पूर्णतः अधिकारी होते हैं। यह समष्टि के ऊपर व्यष्टि के महत्त्व की स्थापना है। परन्तु इसके अतिरिक्त एक और गम्भीरतर सत्य भी है जिसे व्यक्तिवाद ने खोज निकाला है और वह यह है कि व्यक्तिएक सामाजिक इकाई ही नहीं है, उसका अस्तित्त्व, जीवित रहने एवं समृद्ध बनने का उसका अधिकार केवल समाज में उसके कार्य उसके उपयोग तक ही निर्भर नहीं हैं। वह केवल सामाजिक इकाई मानव समूह या संघ का सदस्य ही नहीं है, बल्कि वह एक आत्मा है, एक सत्ता है जिसे अपना व्यक्तिगत सत्य तथा विधान सिद्ध करना है साथ ही सामूहिक सत्ता के सत्य एवं विधान में भी अपना स्वाभाविक एवं नियोजित भाग पूरा करना है। अरविन्द कहते हैं कि जिसे यूरोप ने बौद्धिक रूप में स्वीकार किया है तथा पूर्ण बाह्य एवं तलीय महत्त्व प्रदान किया है, परन्तु जो मूल में

एशिया की गहनतम एवं उच्चतर आध्यात्मिक धारणाओं के साथ मेल खाता है एवं भविष्य का निर्माण करने में जिसे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करनी है।[31] यहाँ द्रष्टव्य है कि अरविन्द का यह विश्वास सत्य सिद्ध नही हुआ।

अनुभव-प्रधान युगः लैम्प्रैख्ट के अनुसार जर्मनी में रोमेण्टिसिज़्म के आगमन के साथ अनुभवप्रधान युग का आरम्भ हुआ। अरविन्द के अनुसार प्रथम विश्व युद्ध पूर्व जर्मनी, आयरलैण्ड और भारत में अनुभवप्रधान युग का आरम्भ हुआ। जर्मनी में अनुभव-प्रधानवाद (सब्जेक्टिविज्म) का जर्मन आदर्शवादी दार्शनिकों, जर्मन संगीतज्ञों जैसे बीथोवन व वागनर तथा गोये थे और नीत्शे के कारण अधिक प्राबल्य था।[32] वास्तव में अनुभव का स्रोत उसके "महान् दार्शनिकों, कांट, हीगल, फिख्टे, नीट्शे में, उसके महान् विचारक और कवि गेटे में, उसके महान् संगीतज्ञ बीथोवन तथा वागनर में तथा उस जर्मन आत्मा एवं स्वभाव की सभी विशिष्टताओं में था जिसके वे प्रतिनिधि थे।"[33]

श्री अरविन्द मानते हैं कि यूरोप की प्रगति भौतिक विश्व के नियमों के आविष्कार के द्वारा एवं मानव जीवन की उन आर्थिक एवं समाज-विज्ञान सम्बन्धी अवस्थाओं के आधार पर हुई है जिनका निर्धारण मनुष्य की भौतिक सत्ता, उसकी परिपार्शिक स्थितियाँ, उसके विकासात्मक इतिहास, उसकी शारीरिक, प्राणिक वैयक्तिक एवं सामूहिक आवश्यकता के आधार पर हुआ है।

परन्तु अरविन्द यह भी मानते थे कि भौतिक जगत का ज्ञान ही सम्पूर्ण ज्ञान नहीं है तथा मनुष्य व्यक्ति की मनोवैज्ञानिकता उसकी भौतिक सत्ता एवं अपने मूल में वह उनके द्वारा निर्धारित नहीं होती।[34] इसी कारण मनुष्य पदार्थों के सत्य और उस सत्य के सम्बन्ध से अपनी सत्ता के विधान को खोजने में प्रवृत्त होता है। तब वह अपनी आत्मा और जगत् की आत्मा के सीधे सम्पर्क में आता है। तब वह आत्मालोचक के स्थान पर आत्मचेतन होकर, अपनी आत्मा में अधिकाधिक निवासित होते हुए अपनी बहिरंग मानसिकता और मनोविज्ञान के पीछे जो तत्त्व है उसके साथ सचेतन समस्वरता स्थापित करके अपने आपको पूर्णतः जान सकता है।

इन प्रवृत्तियों के विकास का अर्थ है, मानव विकास के युक्तिवादी, उपयोगितावादी युग से समाज के एक महत्तर अनुभव प्रधान युग की ओर संक्रमण। 19वीं सदी के भौतिकवाद ने एक अद्भुत गम्भीर प्राणात्मकतावाद (Vitalism) को जन्म दिया। संसार की कला, संगीत एवं साहित्य में भी अनुभववाद की दिशा में क्रान्ति घटित हुई। कला, संगीत एवं साहित्य भी बौद्धिक एवं वस्तुवादी विधान एवं प्रकृति से हटकर, अनुभवात्मक गवेषणा करने की ओर निश्चित प्रवृत्ति ग्रहण करते हुए प्रतीत होते हैं।[35]

श्री अरविन्द को विश्वास था कि प्राणमय एवं भौतिक मानसिकता के परदे के पीछे आंतरात्मिक सत्ता के साथ धनिष्ठतर सम्पर्क स्थापित करने के यत्न से और आत्मा की शक्यताओं पर बढ़ती हुई निर्भरता से इस अन्तिम अविष्कार पर पहुँच जायेंगे कि मनुष्य आन्तरिक रूप में एक आत्मा है एवं ईश्वर की एक सचेतन शक्ति है। श्री अरविन्द के अनुसार, यही वह ज्ञान है जिसे प्राचीन ऋषियों ने सामाजिक प्रतीकवाद के द्वारा अभिव्यक्तकरने का प्रयत्न किया एवं उस विस्मृत ज्ञान की ओर लौटने का मार्ग 'अनुभववाद' है।[36]

किन्तु अनुभववाद भी अपने आप में पर्याप्त नहीं है, क्योंकि भौतिक तथा जैव मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं का परितोष मात्र भी अनुभववाद का एक रूप हो सकता है।[37] अतः यह आवश्यक है कि मनुष्य के वास्तविक स्वभाव तथा सामाजिक और राष्ट्रीय विकास के आदर्श नियम को खोजा जाये एवं मनुष्य तथा राष्ट्रों के आत्मचरितार्थन के रहस्यों को जाना जाये।[38] वैयक्तिक एवं सामूहिक 'अहम'(Ego) की तुष्टि वास्तविक अनुभववाद नहीं है। वास्तविक अनुभववाद की खोज हमें अरविन्द के सभ्यता एवं संस्कृति की धारणाओं में आधारभूत अन्तर पर विमर्श में ले जाती है।

सभ्यता एवं संस्कृतिः फ्रांसिस बेकन पहले व्यक्ति थे जिन्होंने संस्कृति की अवधारणा को एक निशचित अंतर्वस्तु अथवा तत्त्व प्रदान किया। फ्रांसीसी बुद्धिवादियों तथा विश्वकोषकारों ने 'सभ्यता' पद का प्रयोग अपने समकालीन युग को एक ऐसे युग के रूप में अभिहित करने के लिये किया जो कि अन्धकारमय युग एवं सामन्तवादी युग से भिन्न था। टरगो, फ्रांसिसी अर्थशास्त्री व कूटनीतिज्ञ, ने 'सभ्यता' (civilization) शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया है। तदुपरान्त सभ्य-व्यक्ति और प्रकृति-व्यक्ति के बीच भेद किये जाने का चलन आरम्भ हुआ। जर्मनी में हर्डर वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने 'कल्चर' (Kultur) पद का प्रयोग किया। गेटे ने गाइस्टेसकूल्टवा (Geisteskultur) अथवा 'इन्टेलेक्च्यूअल कल्चर' शब्द का प्रयोग किया। कांट एवं फिख़्ते ने स्वतंत्रता को 'संस्कृति' का मूल तत्त्व माना। कांट कहते है "कला एवं विज्ञान के माध्यम से हमने संस्कार के एक उच्चतर धरातल को चरितार्थ किया है। हमारा व्यवहार एवं परम्परायें सभ्यता के उस स्तर पर हैं जहाँ ये बोझिल हो गयी हैं। लेकिन अब भी ऐसा बहुत कुछ होना बाकी है जिससे हम स्वयं को नैतिक (Moralised) कह सकें।

नैतिकता की अवधारणा 'संस्कृति' का ही एक भाग है हालाँकि जब इसका प्रयोग गौरव व बाह्य शिष्टाचार की रीतियों के अर्थ में किया जाता है तब यह सभ्य व्यवहार अथवा सभ्यता से अधिक कुछ और अर्थ नहीं होता।"[39] फ्रेंच इन्लाईटन्मेंट के विचारकों व फिख्ते और हम्बोल्ट ने भी नैतिकता के संदर्भ से संस्कृति और सभ्यता में भेद किया है। उनके अनुसार नैतिकता/संस्कार संस्कृति का अभिन्न अंग है।

सभ्यता, श्री अरविन्द के अनुसार, बौद्धिक गतिविधियों तथा मनोवैज्ञानिक भावनाओं का पल्लवन तथा दीप्ती है। यह नागरिक समाज (सिविल सोसाइटी), संगठनात्मक राजनीतिक एवं आर्थिक जीवन तथा ज्ञान और विज्ञान का युग है। किन्तु इन सबका प्रयोग भौतिक सुख–सुविधाओं तथा आनन्द आदि के लिये किया जाता है।[40]सभ्यता का मूर्त्त उदाहरण अरविन्द आधुनिक पश्चिम में देखते हैं। सभ्यता की श्री अरविन्द द्वारा आलोचना के दो आधार हैं – पहला जैविक तुष्टि और दूसरा पश्चिमी सभ्यता का आततायीपना।

साधारण लोक–प्रचलित दृष्टि के अनुसार सभ्यता का अर्थ एक ऐसे सभ्य समाज की अवस्था है जिसमें शासन है, रक्षा का प्रबंध है, जो संगठित है, शिक्षित है, ज्ञान एवं साधन संपन्न है। इस प्रकार अरविन्द सभ्यता को मनुष्य द्वारा रचित भौतिक–जैविक–मनोवैज्ञानिक (मनोदैहिक) इच्छाओं एवं कामनाओं की परितुष्टि के लिये रचित तंत्र मानते प्रतीत होते हैं। यदि यह बेलगाम हो जाय तो यह कितना विकराल रूप ले सकता है यूरोप का इतिहास इसका गवाह है।

पुनः, अरविन्द कहते हैंः संस्कृति से हमारा आशय मनोमय जीवन का स्वयं अपने लिये ही अनुशीलन करना होता है। परन्तु संस्कृति शब्द स्वयं उभयअर्थी है और हमारे अपने विचारों तथा पूर्वसंचित भावों के अनुसार इसके संकुचित अथवा व्यापक अर्थ किये जा सकते हैं। हमारा मानव–अस्तित्व बड़ा जटिल है तथा अनेक तत्त्वों से निर्मित है। प्रथम इसका निम्नतर और आधारभूत स्तर है जो विकास के क्रम में प्राणमय स्तर के सबसे अधिक समीप है। इस स्तर के दो पहलू हैं, इन्द्रियों, संवेदनों तथा आवेगों का मनोमय जीवन, जिसमें प्रकृति के अनुभववात्मक उद्देश्य की प्रधानता रहती है यद्यपि वस्तुपरक उद्देश्य भी प्रसंगवश रहता है, दूसरा मनोमय पुरुष का क्रियात्मक अथवा गति–शक्तिपूर्ण जीवन जिसका कर्म करने वाले अंगों तथा कर्म के क्षेत्र के साथ सम्बन्ध रहता है जिसमें प्रकृति का बाह्य उद्देश्य प्रधान रहता है, यद्यपि अनुभवात्मक भी प्रसंगवश रहता है। इस क्रम में आगे, अधिक उच्च अवस्था में, एक ओर तो नैतिक सत्ता और उसका नैतिक जीवन है और दूसरी ओर सौंदर्यात्मक सत्ता और उसका सौंदर्यालक्षी जीवन। इनमें से प्रत्येक उस आधारभूत मन के स्तर को अधिकृत करने का, उस पर अपना प्रभुत्व जमाने का एवं उसके अनुभवों तथा उसकी क्रियाओं को अपने ही उपयोग में लगाने का यत्न करता है, इनमें एक न्याय के विकास एवं आराधन के लिये, तथा दूसरा सुन्दरम् के विकास एवं आराधन के लिय यत्नशील रहता है।[41]

सौन्दर्यात्मक एवं नैतिक संस्कृतिः श्री अरविन्द जीवन्त, बौद्धिक एवं प्रगति से भरपूर सभ्यता के ह्रास के कारण संस्कृति में विकास देखते है। उनके अनुसार संस्कृति, असभ्य एवं आधी परम्परागत सभ्यता के प्रकार से कहीं अधिक उच्च क्षेत्र से सम्बन्धित है। संस्कृति दर्शाती है "मनोमय जीवन का स्वयं के लिये ही अनुशीलन है।"

संस्कृति की अरविन्द की अवधारणा मनुष्य के मस्तिष्क के पूर्ण विकास को लक्षित करती है। आध्यात्मिक युग का विकास एक ऐसी अवस्था की ओर संकेत करता है जो मनोबौद्धिक संस्कृति का भी अतिक्रमण करती है। प्रबुद्ध मानवता मनुष्य की सौन्दर्यात्मक तथा बौद्धिक क्षमताओं के विकास को लक्षित करती है। "मनुष्य के द्वारा संवेदनात्मक मन की क्रियाओं में मुख्यतः निवास न करके ज्ञान, तर्कबुद्धि एवं विशाल बौद्धिक जिज्ञासा की क्रियाओं में, सुसंस्कृत सौंदर्यात्मक सत्ता तथा उस ज्योर्तिमय संकल्प की क्रियाओं में निवास करना जो चरित्र, उच्च नैतिक आदर्श एवं एक विशाल मानव कर्म का निर्माण करता है, अपनी निम्न तथा सामान्य मानसिकता से नियंत्रित न होकर सत्य, सौन्दर्य एवं आत्मशासक संकल्प से परिचालित होना हीएक सच्ची संस्कृति का आदर्श तथा एक संसिद्ध मानवता का आरम्भ है।

श्री अरविन्द के अनुसार जब कोई राष्ट्र या युग ज्ञान, विज्ञान तथा कला का तो विकास कर लेता है, परन्तु अपने सामान्य दृष्टिकोण में, जीवन तथा विचार के अभ्यासों में वह ज्ञान, सत्य, सौन्दर्य तथा जीवन के उच्च आदर्शों द्वारा नहीं, वरन् स्थूल प्राण, जीवन के व्यावसायिक एवं आर्थिक दृष्टिकोण के द्वारा शासित होना पसन्द करता है, तो वह युग या राष्ट्र एक अर्थ में सभ्य है परन्तु सुसंस्कृत मानवता की अनुभूति अथवा संभावना की आशा से बहुत दूर है। भौतिक विज्ञान के महान विकास के बावजूद हम 19वीं सदी की यूरोपीय सभ्यता को निंदित ठहरा सकते है, क्योंकि मानवता को जिस पूर्णता की अभीप्सा करनी चाहिये वह यह नहीं है और यह प्रवृत्ति मानव–विकास के उच्चतर मोड की ओर नहीं ले जाकर उनसे दूर ले जाती है।

श्री अरविन्द मानते है कि इसकी तुलना में प्राचीन एथेन्स, पुनरूत्थान की इटली तथा प्राचीन भारतवर्ष, जीवन की

कला में अधिक बढ़े हुये थे, उसके उद्देश्य को वे अधिक अच्छी तरह जानते थे एवं मानव–पूर्णता के लिये किसी सुस्पष्ट आदर्श को अपना लक्ष्य मानकर उसके लिये तीव्र रूप में अभीप्सा करते थे।हमारी मानसिकता में संकल्प, व्यवहार एवं चरित्र का एक ऐसा पहलू है जो नैतिक मानव का निर्माण करता है, दूसरा पहलू सुन्दरम के प्रति अनुभवशीलता का है जो कलाप्रेमी एवं सौन्दर्यप्रेमी मानव का सृजन करता है। इस प्रकार ऐकांतिक नैतिक व ऐकांतिक सौन्दर्यात्मक संस्कृति भी हो सकती है, इस प्रकार शीघ्र ही एक–दूसरे के साथ संघर्ष में आने वाले दो आदर्श बन जाते है जो स्वभावतः एक–दूसरे के विरोध में आपस में अविश्वास यहाँ तक कि घृणा की भावना लेकर खड़े हो जाते है।

सांस्कृतिक अभिव्यक्तियाँ (Cultural manifestation) मनुष्य के बौद्धिक, नैतिक एवं सौन्दर्यात्मक विकास के विभिन्न आयामों पर प्रकाश डाल सकते है। यहूदियों के प्राचीन धर्म में एक दृढ़ नैतिक शुद्धता विद्यमान थी एवं यही परम्परा ईसाईयत में एक नये रूप में भी देखी जा सकती है। जहाँ स्पार्टा एवं रिपब्लिकन रोम में नैतिक–जीवन पर झुकाव दिखाई पड़ता है तो वह दूसरी ओर पेरीक्लीयन एथेन्स में सौन्दर्यात्मक तत्व पर अधिक दिखाई पड़ता है।[42]

श्री अरविन्द के अनुसार ग्रीक सौन्दर्यप्रियता उसके आदर्शवाद एवं आन्तरिक विचारों के पीछे सदैव एक दार्शनिक सत्य को उजागर करने का उद्देश्य रहा है। श्री अरविन्द 'हेलास' के दार्शनिक, सौन्दर्यात्मक एवं राजनीतिक मानस एवं आधुनिक वैज्ञानिक, आर्थिक एवं उपयोगितावादी मानस के मध्य अन्तर प्रस्तुत करते है, परन्तु वे दोनों को ही आध्यत्मिक रूप से न्यून मानते हैं क्योंकि कि वे दोनों हैलास व आधुनिक पश्चिमी मानसिक–शारीरिक जीवन एवं तर्क (बौद्धिकता) को मानवीय विकास एवं सामाजिक प्रगति के सर्वोच्च आदर्श मानते हैं।

श्री अरविन्द सौन्दर्यात्मकता एवं नैतिकता का समन्वय चाहते थे जो कि तर्क अथवा बौद्धिकता एवं ढ़इच्छा–शक्ति के द्वारा प्रेरित हो।[43] यह उपनिषदों में वर्णित 'तपस' एवं 'आनन्द' का पूर्ण रूप था।[44] 'तपस', ब्राह्माण्डीय शक्तिको प्रदर्शित करता है जो कि संसार का निर्माता, उसका शक्ति –प्रदाताएवं पालनकर्त्ता है। 'आनन्द' परमानन्द का सिद्धान्त है। प्रेम, आन्नद, सुन्दरता इसके तीन मूलभूत ब्राह्माण्डीय नियामक हैं। यूरोप ने स्वयं को आनन्द के निम्न स्तर से जोड़ रखा है। विलासिता एवं सौन्दर्य तथा सार्वभौतिक 'आनन्द' के आन्तरिक रहस्यों के पहलुओं के प्रति उदासीन रहे हैं। इसी कारण वह स्वयं के एक ऊर्जावान धर्म का विकास नहीं कर पाये हैं।[45]

अरविन्द प्रज्ञा और संकल्प की शक्ति से सौन्दर्यात्मकता और नैतिकता के सम्मिश्रण को चरितार्थ करना चाहते हैं। यह वही है उपनिषद् जिसे तपस और आनन्द का सम्मिश्रण कहती है। परन्तु हम पूर्णतः सौन्दर्यात्मकता के महत्त्व को हिन्दु कला एवं दर्शन में ढूंढने में असफल है। नैतिकता एवं सुन्दरता के समन्वय के कारण अरविन्द भारतीय एवं ग्रीक संस्कृति के समन्वयक प्रतीत होते हैं।

अतिबौद्धिक 'सुन्दरम' व अतिबौद्धिक 'शिवम्'

अतिबौद्धिक सुन्दरमःध्यातव्य है कि नैतिकता और रसात्मकता (सौन्दर्यात्मकता) का संश्लेषण भी अन्ततः सृजनात्मकता का मनोबोद्धिक स्तर है। वे इसे मनुष्य की सृजनात्मक उपलब्धियों का परमोच्च नहीं मानते। वे सौन्दर्य और नैतिकता का स्रोत अतिबौद्धिक मानते हैं।

धर्म का अर्थ 'अध्यात्म एवं अतिबौद्धिक' की खोज करना है, अतएव इस क्षेत्र में बौद्धिक तर्क पर्याप्त रूप से सहायक नहीं हो सकता, वह अपने–आपको इस क्षेत्र से बाहर अनुभव करता है। किन्तु मानवीय चेतना तथा मानवीय कर्म के अन्य क्षेत्रों में वह सर्वोच्च पद का अधिकारी है, क्योंकि उसका कार्य 'बौद्धिक और सांत' के निम्नतर स्तर पर या उस सीमा रेखा पर होता है जहाँ 'बौद्धिक' और 'अवबौद्धिक' मिलते हैं तथा जहाँ मनुष्य के आवेग और उसकी सहज वृत्तियाँ अधिकतर तर्कबुद्धि के प्रकाश तथा नियन्त्रण की अपेक्षा रखती हैं। सौन्दर्य का पूर्ण और व्यापक मूल्याकंन तथा अपने समस्त जीवन और सत्ता को पूर्ण रूप से सुन्दर बनाना, निश्चय ही एक पूर्ण व्यक्ति तथा एक पूर्ण समाज का आवश्यक गुण होना चाहिये। किन्तु सौन्दर्य की यह खोज अपने मूल में बौद्धिक नहीं है, इसका उत्स हमारे जीवन की जड़ों में है, यह एक सहज प्रवृत्ति तथा आवेग है, सहज प्रवृत्ति सौन्दर्यात्मक सन्तुष्टि की और आवेग सौन्दर्यात्मक सृजन एवं उपभोग का। हमारी सत्ता के अवबौद्धिक भागों में उत्पन्न होने के कारण ये सहज प्रवृत्ति और आवेग आरम्भ में, भारी स्थूलताओं को मिले होते है। तर्कबुद्धि का कार्य सौन्दर्यात्मकता के नियमों का निर्माण करना तथा परिष्कृत रुचि एवं यथार्थ ज्ञान के द्वारा हमारे मूल्याकंन एवं सृजन को शद्ध बनाना है।[46]

जहाँ सौन्दर्य का सृजन अत्यधिक महान एवं शक्तिशाली रूप में होता है तथा उसका मूल्याकंन और उपभोग अपने उच्चतम शिखर पर पहुँच जाते है, वहाँ तर्कबुद्धि सदा ही अतिक्रान्त हो पीछे रह जाती है।

एक सच्ची और महान शास्त्रीय कला एवं काव्य की वास्तविक भावना यह है कि वह वैश्व तत्व को व्यक्तकरें तथा वैयक्तिक अभिव्यक्तिको वैश्य सत्य और सौन्दर्य के अधीन कर दें।

वस्तुतः सर्वोच्च सौन्दर्य को पाने का अर्थ है ईश्वर को पाना, सर्वोच्च सौन्दर्य को व्यक्तकरने, मूर्त्त करने और सृष्ट करने का अर्थ है अपनी आत्मा में से ईश्वर की सजीव प्रतिमूत और शक्ति को आविर्भूत करना।[47]

अतिबौद्धिक शिवम्: श्री अरविन्द एक योगी, एक महायोगी थे, जिनका खोज्य विषय ईश्वर, दिव्य ज्योति, शक्ति तथा आनन्द था। अतः उनकी दृष्टि अतिबौद्धिक सत्ता की ओर उन्मुख थी, वे जीवन की परम सिद्धि सांस्कृतिक अतिक्रामिता में देखते थे।

श्री अरविन्द के अनुसार हम अपनी आध्यात्मिक सत्ता तथा अपनी सौन्दर्यात्मक सत्ता के नियम और सिद्धान्त के द्वारा एक ऐसे नियम और सिद्धान्त की व्यापकता देखना शुरू करते है जो समस्त सत्ता का नियम और सिद्धान्त है।श्री अरविन्द ईश्वर की प्राप्तिअथवा परम सत्ता के साथ तादात्मय में मानव सत्ता का अंतिम उद्देश्य एवं लक्ष्य मानते हैं। इसीलिये व्यक्ति तथा समुदाय के समस्त भागों तथा समस्त क्रियाओं के विकास का भी यह लक्ष्य है, तर्कबुद्धि कभी भी अन्तिम तथा उच्चतम मार्गदर्शक नहीं हो सकती तथा संस्कृति को भी परस्पर तथा अनन्त तक पहुँचने के लिये आध्यात्मिक संस्कृति बनना होगा। निर्देश देने वाला प्रकाशतथा नियामक और समस्वरता लाने वाला तत्व धर्म है। धर्म मनुष्य की वह सहज प्रवृत्ति, विचार, कर्म तथा अनुशासन है जिसका सीधा लक्ष्य ईश्वर है जबकि शेष सब ईश्वर को केवल परोक्ष रूप में ही लक्ष्य मानते हैं।[48]

सभ्यताओं एवं संस्कृतियों का पतनः अरविन्द ने सभ्यताओं–संस्कृतियों दोनों की उत्पत्ति एवं पतन विषयक सिद्धान्त का भी प्रतिपादन किया है। 19वीं शताब्दी के संस्कृति–सभ्यता विषयक सामान्य सिद्धान्तों के अनुसार ही समाज के जीवन में "उन्होंने सभ्यता–संस्कृतियों की उत्पत्ति, विकास, युवास्था, परिवक्वता तथा पतन आदि" विषयक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। वे कहते हैं कि यदि पतन की अवस्था दीर्घकाल तक बनी रहे तो समाज नष्ट हो जाते है।[49] जिस प्रकार एक मनुष्य की वृद्धावस्था के कारण मृत्यु हो जाती है किन्तु वे यह भी मानते हैं कि समाज के जीवन का नवीकरण तथा पुनरुद्भव संभव है, अरविन्द के अनुसार संस्कृति विषयक यूरोपीय चक्रीय सिद्धान्त आत्म नवीकरण के माध्यम से आत्म प्रवर्धन, दीर्घन के आध्यात्मिक स्रोत को नज़रअन्दाज कर देते हैं जो अमरता का सिद्धान्त हैं।[50]

आधुनिक पश्चिमी सभ्यता ने इतनी भौतिक शक्ति अर्जित कर ली है कि वे बर्बर आक्रमणों का न केवल सामना कर सकते हैं बल्कि इस चुनौती को सदा के लिये मिटा सकते हैं अतः इनका पतन प्राचीन सभ्यताओं की भांति नहीं होगा। सभ्यता के पतन के कारणों का विश्लेषण करते हुए वे कहते हैं कि सामान्यतः आन्तरिक शक्ति तथा ऊर्जा के कमजोर पड़ने से सभ्यताओं का पतन होता है। बर्बरों के बाह्य आक्रमणों की भूमिका न्यून ही होती है भारत का मुगल साम्राज्य तथा रोमन साम्राज्य आन्तरिक विघटन के उदाहरण है।[51]

अरविन्द का सभ्यता संस्कृति का पतन सम्बन्धी सिद्धान्त स्पेंग्लर के सिद्धान्तों से मेल खाता है किन्तु जहाँ स्पेंग्लर संस्कृतियों को जैविक इकाईयाँ मानते हैं, वह अरविन्द उन्हें आध्यात्मिक सत्व की अभिव्यक्ति मानते हैं, इस कारण अरविन्द संस्कृतियों एवं सभ्यताओं के पुनरुज्जीवन की संभावनाओं को स्वीकार करते हैं, स्पेंग्लर नहीं।

स्पेंग्लर के आत्मा के सिद्धान्त में गोयथे एवं नीत्शे का प्रभाव दिखाई देता है इसलिये वे सर्वोपरि अनंत शक्ति में विश्वास नहीं करते जैसा अरविन्द वैदान्तिक प्रभाव के कारण करते हैं। स्पेंग्लर व अरविन्द दोनों ही यह मानते है कि आध्यात्मिक शक्तियों में कमी संस्कृति चक्र के पतन का कारण हैं। स्पेंग्लर के दर्शन में हम ब्रह्माण्डीय नकारात्मकता पाते हैं जबकि अरविन्द में अत्यधिक आशावाद दिखाई पड़ता है। स्पेंग्लर के अनुसार पश्चिमी सभ्यता ने अपने अन्तिम चरण 'सभ्यता का चरण' प्रवेश कर चुकी है, सभ्यता की अवस्था एवं यह पतन का प्रारम्भ है। श्री अरविन्द के अनुसार पूर्व के अनुभववादी एवं आध्यात्मिक रुझान के कारण अभी उम्मीद है। वे मानते है कि यूरोपीय इतिहास ने 'आत्मा के महत्त्व' को पूर्णतः स्वीकार नहीं किया एवं उन्होंने 'क्रिया' पर अधिक महत्त्व दिया जिसने व्यवसायवाद एवं युद्ध की ओर मोड़ दिया। यह तभी समाप्त हो सकता है जब व्यक्तियों की आध्यात्मिकता जाग्रत हो।[52]

अरविन्द को विश्वास था कि पूर्व की चेतना का पुनः जाग्रत होना संभवतः कुछ अधिक अनुभववाद एवं आध्यात्मिकता को उत्पन्न करेगा जो विश्व में एक चमत्कारी शक्तिबनेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *मोहंती सच्चिदानंद, श्री अरविन्द, ए कन्टेम्परेरी रीडर, पृ. 96*
2. *दास एम, श्री अरविन्द, नई दिल्ली, साहित्य अकादमी*
   दास एम, श्री अरविन्द, ऑन एजूकेशन, नई दिल्ली, नेशनल कांउसिल फॉर टीचर्स एजूकेशन
3. *सतप्रेम, श्री अरविन्द द एंडवेन्चर ऑफ कॉशियसनेस, न्यूयार्क, इंसटीट्यूट फॉर इवोल्यूशनरी रिसर्च*
4. *मोहंती सच्चिदानंद, श्री अरविन्द... पूर्वोद्धत, पृ. 96*
5. *वर्मा भुवनेश, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, 'संस्कृति की भारतीय अवधारणा का ऐतिहासिक एवं दार्शनिक परिशीलन', पृ. 178 से उद्धत*

6. मोहंती सच्चिदानंद, श्री अरविन्द... पूवोद्धत, पृ. 96
7. वही
8. मानव–चक्र, वही, पृ. 1
9. वही, पृ. 78
10. श्री अरविन्द, इवोल्यूशन, पृ. 8
11. श्री अरविन्द, एस्सेज ऑन द गीता, दूसरा खण्ड, पृ. 233
12. श्री अरविन्द, हैराक्लाइट्स, पृ. 27
13. कार्ल लैम्प्रेरख्ट, Deutsche Geschichte (1891–1909) वॉल्यूम 12ए ई.ए. एण्ड्रयू, व्हाट इज हिस्ट्री 1905, यहाँ वर्मा, वी पी, पुलिटिकल फिलॉसोफी ऑफ श्री अरविन्दो, पृ 136 से उद्धत
14. मानव–चक्र, पूर्वोद्धत पृ.2
15. मानव–चक्र, पूर्वोद्धत पृ. 2
16. वही, पृ. 1
17. वही
18. देखें, कर्ट ब्रैसिंग, 'लैम्प्रेख्ट', इ. एस. एस.
19. जी.पी. गूच, हिस्ट्री एण्ड हिस्टोरियन्स इन द नाइंटीन्थ सेन्चुरी, पृ॰.570
20. वी॰पी॰ वर्मा, पॉलिटिकल फिलॉसफी आफ श्री अरविन्द, पृ. 138–139
21. मानव–चक्र, पूर्वोद्धत पृ. 5–6
22. श्री अरविन्द, बंकिम–तिलक–दयानन्द, पृ. 60–61(देखें, श्री अरविन्द, वेद रहस्य
23. मानव–चक्र, पूर्वोद्धत, पृ. 7
24. वही, पृ. 7–8
25. वही, पृ. 8–9
26. भुवनेश वर्मा, अप्रकाशित शोध–प्रबन्ध से उद्धृत 'इतिहास एवं संस्कृति :ऐतिहासिक एवं दार्शनिक परिशीलन', पृ. 183
27. मानव–चक्र, पूर्वोद्धत, पृ 10
28. वही, पृ. 11
29. वही, पृ12
30. वही, पृ. 11
31. श्री अरविन्द, मानव–चक्र, पूर्वोद्धत पृ 20–21
32. वही, पृ. 36–37
33. वही, पृ. 36–37
34. वही, पृ. 24
35. वही,पृ 25
36. वही, पृ. 29
37. वही
38. श्री अरविन्द, भौतिक अनुभववाद, मानसिक एवं मनोवैज्ञानिक अनुभववाद के अतिरिक्त आध्यात्मिक समाज एवं आध्यात्मिक युग को अधिक महत्त्व देते हैं।
39. आर. यूकेन, 'मैन करेन्टस ऑफ मॉडर्न थॉट', 1912, पृ. 284 से उद्धृत पृ.
40. भुवनेश... पूर्वोद्धत, पृ. 189
41. वही, 78–79
42. अरविन्द,नेशनल वेल्यू ऑफ आर्ट, पृ॰ 27
43. जार्ज सांतायना, द सेंस ऑफ ब्यूटी, पृ. 270
44. मानव–चक्र, पूर्वोद्धत, पृ. 121–22
45. श्री अरविन्द,हेरेक्लाइटस, पृ. 59–60
46. वही, पृ.96
47. वही, पृ.138–139
48. वही, पृ.167
49. श्री अरविन्द, द स्प्रिट एण्ड फॉर्म्स ऑव इण्डियन पॉलिटी, पृ. 9
50. मानव–चक्र, पूर्वोद्धत पृ, 276
51. द स्प्रिट एण्ड फॉर्म्स . . . पूर्वोद्धत पृ 89
52. मानव एकता का आदर्श, पृ 264–65

मारवाड़ के पंच पीर

डॉ. सन्दीप प्रजापत
पोस्ट डॉक्टरल फैलो (यू.जी.सी.) जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

मारवाड़ के पंच पीरों का समाज और संस्कृति में अपना विशिष्ट स्थान है। पीर-पूजा में निश्चय ही राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा समाविष्ट है। वे ऐतिहासिक एवं वीर पुरूष होने के साथ ही मानव कल्याण हेतु अवतरित हुए और अपने पराक्रम और कार्यों के परिणामस्वरूप जनमानस में लोकप्रिय हुए। धर्म-रक्षा और गौ-रक्षा के कारण अपने प्राण न्यौछावर किये जिससे वे सदा के लिए अमर हो गये। जो राजस्थानी संस्कृति की विशिष्ट पहचान है।

संकेताक्षरः *पीर, वीर, पाबूजी, हरबूजी, रामदेवजी, मेहाजी, गोगाजी, रामसापीर और जाहरपीर।*

मारवाड़ (जोधपुर) अपनी जलवायु, भौगोलिकता, ऐतिहासिकता, शौर्य और लोक संस्कृति के लिए हमेशा प्रसिद्ध रहा है। 11वीं से14वीं सदी के मध्य मारवाड़ समेत पूरे राज्य के धार्मिक जीवन में एक नई पृष्ठभूमि का निर्माण हो चुका था। 15वीं सदी के धार्मिक जागरण ने इस पृष्ठभूमि को और अधिक प्रोत्साहन दिया। मुस्लिम आक्रमणकारियों ने मंदिरों को नष्ट किया और हिन्दुओं को बलपूर्वक मुस्लिम बनाना प्रारम्भ किया। समाज में इसकी प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक था। इस काल में अनेक वीर हुए जिन्होंने हिन्दु-मुस्लिम समन्वय का समर्थन किया, धार्मिक आडम्बरों का विरोध और हृदय की शुद्धि व ईश्वर की भक्तिपर जोर दिया। इसको प्रबल रूप देने में मारवाड़ के पंच (पाँच) पीर अर्थात् पाबूजी, हड़बूजी, रामदेवजी, मेहाजी और गोगाजी का महत्त्वपूर्ण योगदान उल्लेखनीय है। शौर्य एवं गौरव गाथाओं से गुंजित इन पंच पीरों की वीर भूमि पर वीर पूजा की भावना जागृत होना स्वभाविक है और जो यहाँ की संस्कृति की प्रमुख विशेषता भी कही जा सकती है क्योंकि अधिकांश राजस्थानी साहित्य वीर भावना से अुनप्राणित है।

मारवाड़ के पंच पीर क्यों कहा जाता हैः 'पीर' शब्द फारसी भाषा का है जिसका अर्थ है, सिद्ध अथवा महात्मा। पीर के पीछे इस्लाम के सूफीवाद का प्रभाव है। इसको समझाते हुए डॉ. प्रताप सिंह राठौड़[1] ने लिखा है 'पीर' शब्द वास्तव में 'वीर' शब्द का ही रूपान्तर है। मुस्लिम संस्कृति के प्रभाव से वीर ही पीर कहा जाने लगा होगा। यहां के जन-मानस में पीर या वीर के प्रति असीम श्रृद्धा-सम्मान की भावना रही है। पीर पूजा के मूल में इष्ट प्राप्ति, पुत्र या धन-प्राप्ति, रोग-निवारण, अवतारवाद, अनिष्ट-निवारण आदि कारण रहे हैं। देश-रक्षा, गौ-रक्षा, धर्म-रक्षा, शरणागत-रक्षा हेतु वीर मर-मिटते हैं और सदा-सर्वदा के लिए अमर हो जाते हैं, राजस्थान के जनपदों में ऐसे सैकड़ो लोक देवताओं की पूजा की जाती है, जिन्होंने भव्य सांस्कृतिक आदर्शों के पालन हेतु प्राण त्याग दिए थे। जरा-सा पेट-दर्द होते ही, शादी या पुत्र की कामना से, मुकदमा-मॉंदगी में यहाँ लोक देवों की मनौतियाँ की जाती है।

पाबूजी राठौड़, हरबूजी सांखला, रामदेवजी तँवर, मेहाजी मांगलिया और गोगाजी चौहान पांचो पीर क्षत्रियवंश के थे। पांचों ही अलौकिक शक्ति सम्पन्न वीर, धर्मरक्षक, देशभक्त, उदार, गौरक्षक, सिद्धपुरूष एवं त्यागी थे। वैसे पंच पीरों के साथ यहाँ जुझारजी, बालाजी, भैरूजी, माताजी, खेतरपालजी, भोमियांजी, करणीजी, कल्लाजी एवं पितरों की हर गांव और घर में नित्य पूजा की जाती है। पीर-पूजा में निश्चय ही राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा समाई हुई है। लोगों की नैतिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक भावना अभिवर्द्धन में इन देवताओं का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से ये राजस्थानी

संस्कृतिक के अभिन्न अंग है। पंच पीरों में सामान्यतः राजस्थान में पाबूजी, रामदेवजी, और गोगाजी की ही विशेष मान्यता है। मेहाजी और हरभूजी की अपेक्षाकृत कम पूजा होती है।

अपने विचार प्रकट करते हुए महावीर सिंह गहलोत[2] ने लिखा है कि यहाँ पर 'पीर' शब्द के प्रयोग में विचार करना उचित होगा क्योंकि इन पंच पीरों में से दो की मान्यता प्रथम रामशाह या रामसा पीर अर्थात् रामदेवजी और दूसरा जाहरपीर अर्थात् गोगाजी। हिन्दूओं के साथ मुसलमानों में भी बहुत लोकप्रिय है। हिन्दू इन्हें देवता तो मुस्लिम इन्हें पीर। ये पांचों आदर्श वीर पुरूष अपने लोक कल्याणकारी जीवन के कारण सारे जन समुदाय में आदर पा गए। अलौकिक घटनाओं को इनके जीवन चरित्र में जोड़ दिया गया तो सबके लिए पूजनीय हो गए। पंच पीरों की गणना निम्न दोहे से जानी जाती है–

''पाबू, हरभू, रामदे, मांगलिया मेहा।
पाँचों पीर पधारज्यो, गोगाजी जेहा।।''

अर्थात्–पाबू (राठौड़), हरभू (साँखला), रामदेव (तँवर), मेहा (मांगलिया) और गोगा (चौहान), इन पांचों पीरों का आह्वान करता हूँ कि वे जैसे भी हो, अवश्य पधारें।

मारवाड़ के पंच पीरः[3] इनके अनुसार ''ये पाँच ही क्यों गिने गए, इसके सम्बन्ध में यह है कि राजस्थान में मान्यता प्राप्त अनेक लोक देवता है परन्तु अपने समय में ये पाँचों ऐतिहासिक पुरूष होने के कारण साथ ही गिन लिए गए। ये पाँचों क्षत्रिय जाति से है और इनके जीवन काल में इनके कार्यों का मुख्य क्षेत्र मरू प्रदेश ही रहा है। सनातन परम्परा में पाँच की संख्या शुभ मानी जाती रही है। भागवत (वैष्णव)धर्म के आरंभ होने के समय उसके पाँच देव रहे। समय के साथ पाँच की संख्या रूढ हो गई। सनातन धर्म में भी पाँच हिन्दू देवता अर्थात् विष्णु, शिव, गणपति, सूर्य और देवी प्रतिनिधि स्वरूप मान लिए गए और एक ही धरातल पर इन पाँचों के मन्दिर पंचायत शैली के बनने लगे। दैनिक व्यवहार में भी पंच कर्म और पंच यज्ञ हमारे में प्रचलित है ही।''

श्री मनोहर शर्मा[4] ने लिखा है कि ''गोगाजी चौहान एक वीर पुरूष थे परन्तु राजस्थान में उनकी पूजा एक पीर के रूप में

होती है। भारत में हिन्दू–मुस्लिम संस्कृतियो के सम्मेलन के फलस्वरूप अनेक विदेशी शब्दों का यहाँ की लोक–भाषाओं में आत्मीयकरण हुआ है। पीर शब्द का राजस्थानीकरण इस तथ्य का एक ज्वलंत उदाहरण है। राजस्थान में सिद्ध पुरूष को पीर कहा जाता है, चाहे व धर्म से हिन्दू हो या मुसलमान, इस दिशा में धर्म की दृष्टि से विभेद नहीं किया जाता। जो संत अपने जीवन काल में अतिमानव–कृत्य कर दिखाते है, वे पीर पद के अधिकारी होते हैं। इसी प्रकार मरणोत्तर जीवन में चमत्कार दिखाने वाले संत भी पीर कहे जाते हैं। राजस्थान में ऐसे भी कई वीर पुरूष हुए है जिन्होंने सत्य के लिए युद्ध करते हुए अपनी जीवन–लीला संवरण की और वे पीछे पीर के रूप में पूजे गए तथा जनसाधारण को उनके चमत्कार पूर्ण मरणोत्तर जीवन पर पूर्ण विश्वास हुआ। इस दिशा में गोगाजी चौहान का नाम एक उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। सभी उनकी मनौतिया मांगते हैं।

डॉ. सत्येन्द्र[5] ने गोगाजी के एक अन्य प्रचलित नाम 'जाहरपीर' पर विचार करते हुए अनुमान लगाया कि नाथ सम्प्रदाय में एक 'जाफरपीरी' सम्प्रदाय का उल्लेख है और चूंकि प्रत्येक कथा में गोरखनाथजी और गोगाजी का साथ है अतः या तो जाफरपीर ही जाहरपीर है या गुरू गुग्गा 'जाफरपीर' सम्प्रदाय के प्रसिद्ध पीर हैं। श्री परशुराम चतुर्वेदी[6] के अनुसार ''इनके जीवन–काल के लिए ईसा की १०वीं शताब्दी अथवा अधिक से अधिक ११वीं के प्रारंभिक भाग में अर्थात् विक्रम की ११ वीं शताब्दी में ही कोई समय निश्चित करना उचित कहा जा सकता है।'' गोगाजी और गोरखनाथजी का समकालीन होना संभव है परन्तु गोगाजी को 'जाफरपीर' या 'जाफरपीरी' सम्प्रदाय का कोई पीर मानना उचित नहीं। नाथ सम्प्रदाय में 'जाफरपीरी' सम्प्रदाय का उद्‌भव निश्चय ही गोरखनाथ के समय में नहीं हुआ था।[7] गोगाजी के जाहरपीर नाम पर विचार करते हुए विद्वानो ने अलग–अलग विचार प्रकट किये है। पण्डित झाबर मल्ल शर्मा[8] ने अपने निबंध की पाद टिप्पणी में पण्डित जगनाथ प्रसाद शुक्ल के अनुमान को व्यक्त करते हुए लिखा है कि गोगाजी चौहान को जो मुसलमान 'जाहिरपीर' कहने लग गये, इसका कारण यह भी हो सकता है उन्होंने गोगाजी के 'गो' और 'गजी' टुकड़े कर लिये और गो के साथ गाजी का योग देखकर अपने विश्वास अनुसार पीर कहने लग गये। ये आगे अपने विचार प्रकट करते हुए लिखते हैं कि जाहिर का अर्थ तो 'प्रकट' या 'प्रकाश्य' है किन्तु यहाँ जाहिरपीर का मतलब जौहर या जुझार मालूम होता है।

डॉ. सत्येन्द्र[9] ने अपने लेख की पाद टिप्पणी में इसे उद्‌धृत किया है और लिखा है कि ''यह भी एक अनुमान ही है।''

श्री अम्बाप्रसाद सुमन ने डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के परामर्श पर लिखा है, जाहरपीर को 'गूगापीर' भी कहते है। 'पीर' शब्द 'वीर' शब्द का चूलिका पैशाची रूप विदित होता है। इलियट ने लिखा है कि ''मराठे इन्हे जाहरपीर कहते है पर यह नहीं लिखा कि यह नाम क्यो पड़ा''

पण्डित झाबरमल्ल शर्मा[10] के अनुसार ''हिन्दू महिला समाज पंच पीरों के नाम पर भी श्रृद्धा रखता है। मंगल कार्यों की निर्विघ्न सम्पन्नता के लिए अनुष्ठित रात्रि जागरण के समय देवी–देवताओं के गीत में पंच पीरों का भी गीत गाया जाता है। पंच पीर नाम से यद्यपि मुसलमान होना प्रकट होता है, तथापि अनुसंधान करने पर पता चला है, कि वे पाँचों क्षत्रिय–कुल–समुद्‌भव वीर थे। मुस्लिम संस्कृति के प्रभाव से उनका 'वीर' की जगह 'पीर' नाम पड़ गया। पंच पीरों के गीत में महिलाएँ गाती हैं–

पाँचों पीर परस सैं उतरया, लाल गरू अगवाणी।
देखो म्हारा लाल गुरू की वाणी।।
पाँचों पीर करयो ए मलीदो, लाल गरूजी पींडा फेरैं–
देखो म्हारा लाल गरू की वाणी।।
पाँचों पीर भाँगड़ली घुटाई, लाल गरूजी प्याला फेरै–
देखो म्हारा लाल गरू की वाणी।।
पाँच भरोटा हरी दूब का, कुम्भ–कलश भर पाणी–
देखो म्हारा लाल गरू की वाणी।।
चर गया दूब (र)पी गया पाणी, लीद रही सैनाणी–
देखो म्हारा लाल गरू की वाणी।।
या थारी वाणी सब जग जाणी, छाणया दूध (र) पाणी–
देखो म्हारा लाल गरू की वाणी।।

अर्थात् पाँचों पीर परस से, जिनके अग्रणी लाल गरू थे। हमारे लाल गुरू की वाणी देखिये।

पाँचों पीर ने मलीदा (चूरमा) किया और लाल गुरू ने पींडी बाँटी। हमारे लाल गुरू की वाणी देखिये।

पाँचों पीर ने भाँग घुटाई और लाल गुरू ने प्याले बाँटे। हमारे लाल गुरू की वाणी देखिये।

हरी दूब के पाँच भार (भरोटे) थे और जल–पूर्ण कलश था। हमारे लाल गुरू की वाणी देखिये।

दूब को (घोड़े) चर गये और पानी को पी गये जिनकी निशानी लीद रह गई। हमारे लाल गुरू की वाणी देखिये।

आपकी यह वाणी समस्त जगत् ने जान ली, कि दूध और पानी छान दिया। हमारे लाल गुरू की वाणी देखिये।

इस गीत से पँच पीरों की स्थिति पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। सर्वप्रथम गीत में पाँचों पीरों का परस से उतरना बताया गया है और परस राजपूतों के बैठने का निश्चित नाम है। यह 'परस' शब्द ही सिद्ध करता है कि ये पाँचों क्षत्रिय थे।

यदि वे मुसलमान होते तो उनका परस से उतरना न बता कर दरगाह, तकिया, मस्जिद या खानकाह से उनके आने का भाव गीत में व्यक्त किया जाता। इस गीत में यह भी कहा गया है कि पाँच पीरों के अग्रणी लाल गुरू थे और लाल गुरू की वाणी का बखान किया गया है। यह भी उनके हिन्दू होने का परिचायक है। लाल गुरू हिन्दू योगी नाथ सम्प्रदाय के अनुयायी थे। गीत में राजस्थान के हिन्दुओं के भोज्य पदार्थ मलीदा (चूरमा) एवं भगवान शंकर की सदा सेवनीय भाँग तथा मण्डल कलश और दूब का उल्लेख है।

श्री गोविन्द अग्रवाल[11] के अनुसार ''अन्य देवी-देवताओं के साथ राजस्थान में पंच पीरों की भी काफी मान्यता रही है। वीरता के साथ-साथ विशेष सिद्धि होने के कारण शायद ये पीर कहलाये हो। मुसलमान भी इन्हें मानते हैं अतः बहुत संभव है कि इसी कारण इसकी संज्ञा पीर हो गई हो। आज से अनेक वर्षो पूर्व तक जेठ सुदी 10 को पंचपीरों की जात दी जाती थी। पंच पीरों के लिए चूरमा बनाया जाता था और शाम को घर के बाहर चूरमा चढ़ाया जाता था और पूजा की जाती थी लेकिन इन वर्षो में यह प्रथा प्रायः खत्म सी हो गई है।''

अतः इससे स्पष्ट है कि मारवाड़ के पंच पीरों की मान्यता दोनों हिन्दू और मुस्लिम में विद्यमान थी पीर और वीर शब्दों का प्रयोग एक ही अर्थ में प्रयुक्त हुआ ऐसा जान पड़ता है। जन-जन द्वारा अपने हृदय में बसाये गये पंच पीर अद्वितीय स्थान प्राप्त कर चुके है, ये पहले तो अपने-अपने वर्ग में पूजे गए और बाद में सर्वसाधारण द्वारा भी मान्यता मिली। दैनिक जीवन को मधुर बनाने में भी सहायक रहे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *मरू-भारती राजस्थानी लोक-देवता विशेषांक, वर्ष-32, अंक-2, जुलाई 1984 में डॉ प्रताप सिंह राठौड़ का लेख ''राजस्थान में प्रचलित पीर पूजा'', पृ. 40-44*
2. *महावीर सिंह गहलोत : राजस्थान के लोकदेवता, पृ. 10*
3. *वही, पृ. 11*
4. *मरू-भारती, वर्ष-4, अंक-4, जनवरी 1956 में श्री मनोहर शर्मा का लेख ''राजस्थानी लोक गीतों में गोगाजी चौहान'',*
5. *पृ. 14*
6. *डॉ. सत्येन्द्र-भारतीय साहित्य में जाहरपीर गुरू गुग्गा पर लेख*
7. *परशुराम चतुर्वेदी : उतरी भारत की सन्त परम्परा, पृ. 60*
8. *डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी : नाथ सम्प्रदाय, पृ. 150*
9. *शोध पत्रिका, भाग-1, अंक-3, में ''गोगा चौहान पर एक दृष्टि'' पर लेख, पृ. 142-153*
10. *डॉ. सत्येन्द्र द्वारा 'भारतीय साहित्य' में उद्धृत*
11. *मरू-भारती, वर्ष-3, अंक-3, अक्टूबर, 1955 में पण्डित झाबरमल्ल शर्मा का लेख ''राजस्थान के लोक-देवता'',*
12. *पृ. 19-20*
13. *मरू-भारती, वर्ष-14, अंक-2, जुलाई 1966 में श्री गोविन्द अग्रवाल का लेख ''राजस्थान के लोक-गीत'', पृ. 41*

औरंगजेब कालीन फ्रांसीसी यात्री–एक यात्रा वृतान्त

शीतल देवी
शोद्यार्थी, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

मध्यकालीन भारत के इतिहास को प्राचीन भारत के इतिहास से जो तत्व अलग करते हैं उन तत्वों में सबसे महत्वपूर्ण हैं मध्यकालीन भारत से सम्बन्धित समसामयिक यात्रा–वृतान्त। ये यात्री अपनी यात्रा के मूल्यवान एवं दिलचस्प विवरण लिखकर छोड़ गए। मुगल काल में अनेको यात्री भारत भ्रमण के लिए आए थे। विभिन्न देशों से आने वाले इन यात्रियों का भारत में आने का उद्देश्य भी भिन्न–भिन्न था। उन्होंने अपने यात्रा विवरणों में भारत भ्रमण के दौरान उस समय की सामाजिक, भौगोलिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व धार्मिक स्थिति को जिस रूप में देखा वैसा ही वर्णन अपने यात्रा–वृतान्तों में कर दिया।

संकेताक्षर : *फ्रांसीसी, औरंगजेब, बर्नियर, तोन्ज, कश्मिर, विनियम प्रणाली, औषधि, चुंगी कर।*

अबुल मुजफ़्फर मुहिउद्वीन मुहम्मद औरंगजेब आलमगीर जिसे आमतौर पर औरंगजेब कहा जाता हैं, भारत पर राज करने वाला छठा मुगल शासक था। औरंगजेब ने भारतीय उपमहाद्वीप पर आधी सदी से भी ज्यादा समय तक शासन किया था और इसी समय अनेकों यात्री भारत भ्रमण के लिए आए। औरंगजेब कालीन यात्रियों के यात्रा वृतान्तों से हमें उस समय के इतिहास को जानने में काफी सहायता मिलती हैं।

बर्नियर: बर्नियर उस समय हिन्दुस्तान आया था जब शाहजहां के बेटों में उत्तराधिकार का युद्ध चल रहा था। औरंगजेब की तख्तनशीनी बर्नियर के हिन्दुस्तान प्रवास के दौरान ही हुई थी। इसी कारण उसे दो मुगल शासकों के समय की घटनाओं को देखने का मौका मिला था। इन घटनाओं का वर्णन उसने अपने यात्रा–वृतान्त ''ट्रैवल्स इन द मुगल एम्पायर'' में किया हैं। बर्नियर 1658 में अहमदाबाद में दारा शिकोह से मिला था, जब वह सूरत से आगरा जा रहा था। बर्नियर ने कई भारतीय शहरों का भ्रमण किया (कश्मीर, राजमहल, आगरा, गोलकुण्डा, कासिमबाजार) और इन शहरों की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन किया हैं। उसकी यात्राओं का मुख्य उद्देश्य ज्ञान हासिल करना था।[1]

बर्नियर ने कश्मीर की विशेषता का वर्णन करते हुए उसे धरती पर अतुलनीय बताया हैं और वहां के शाल उद्योग का वर्णन किया हैं। वह बताता है कि कश्मीर में 2 प्रकार की शाल होती थी। पहली स्पेन की ऊन से भी नरम व दूसरी तिब्बत में पाई जाने वाली बकरियों के सीने की ऊन से तैयार की जाती थी, इन्हें तोन्ज कहा जाता था। इन शालों की कीमत देशी ऊन की शालों से अधिक होती थी। वह पटना, आगरा व लौहार की शालों का भी वर्णन करता हैं।[2] बर्नियर ने घुडसवारों द्वारा प्रयोग में लाई जाने वाली तोपों का भी वर्णन किया है। वह कहता है कि ये तोपे पीतल की होती थी और रंग–रौगन की हुई गाडी पर इन्हें रखा जाता था। इन्हें दो घोडे खींचते थे।[3] बर्नियर दिल्ली में एक बडे मनसबदार दानिस्मद खां के संरक्षण में रहा। धरमत की लड़ाई के विशय में उसे औरंगजेब की सेना में नियुक्त एक फ्रैंच तोपची से जानकारी मिली थी।[4] बर्नियर के वृतान्त से हमें यह भी पता चलता है कि औरंगजेब ने राजसिंहासन प्राप्त करने के लिए अपनी सभी भाईयों को (शुजा, दारा व मुराद) अपनी कुटनीतियों से उनकी एक–एक करके हत्या करवा दी थी।[5]

बर्नियर कहता है कि ''हिन्दुस्तान में बादशाह ही सम्पूर्ण भूमि का स्वामी होता है।'' लेकिन यह कथन भ्रामक प्रतीत होता हैं। हिन्दुस्तान में सभी को व्यक्तिगत सम्पत्ति का अधिकार था।[6] बर्नियर अपने यात्रा-वृतान्त में हिन्दू व मुस्लिम दोनों धर्मों की आस्था व मान्यताओं, पर्व-त्योहारों और देवी-देवताओं के विषय में विस्तृत से विवरण देता हैं।[7]

बर्नियर गुजरात की कोलिय नामक जाति का वर्णन करता हुआ कहता है कि कोलिय को गुजरात की हिन्दू जातियों में 'कुबीज' (साधारण) किसान के समान माना हैं। लेकिन कोलिय जमींदार भी होते थे क्योंकि अहमदाबाद व पाटन सरकारों में कई परगनों में कोलि को जमींदार के रूप में दर्ज किया गया हैं।[8] वह वनस्पति में आम, अनानास, दाल-चीनी आदि पेड़-पौधों के विषय में एवं उनकी महत्तता का विवरण अपने यात्रा-वृतान्त में करता हैं। वह पान की राजनीतिक महत्ता का भी विवरण देता हैं।[9]

ट्रैवर्नियरः यह फ्रांस का यात्री था जो औरंगजेब के समय में भारत यात्रा पर आया था। ट्रैवर्नियर को ''यात्रियों का राजकुमार'' भी कहा जाता है। इन्होंने भारत की छह बार यात्रा की थी। उसने भारत में काफी लम्बा समय गुजारा था लेकिन उसका उद्देश्य हिन्दुस्तान के लोगों के बारे में अध्ययन करना नहीं था। ट्रैवर्नियर पेशे से जौहरी था इसलिए जौहरी व व्यापारी होने के कारण व्यापार व खनिजों के बारे में उसे विस्तृत जानकारी थी। भारतीय इतिहास के अन्य पहलुओं की अपेक्षा इसके यात्रा-वृतान्त का आर्थिक महत्व अधिक हैं।[10] वह कुछ विशिष्ट व्यापारिक पण्य जैसे जहरमोहरा, गरम मसाले, कस्तूरी, नील, हाथीदांत आदि के उत्पादन तथा विक्रय के तरीकों का भी वर्णन करता हैं जो पूर्वी वाणिज्य के इतिहास की जानकारी की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं।[11]

ट्रैवर्नियर औरंगजेब कालीन हीरा खनन उद्योग (गोलकुण्डा), चीनी उद्योग (बंगाल) और भारतीय मुद्रा प्रणाली में वह चांदी, सोना व तांबे की मुद्राओं की कीमतों की तुलना स्थान के आधार पर करता हैं जिससे यह जानने में आसानी हो जाती है कि सिक्कों के बीच विनिमय की कीमत स्थान और समय के अनुसार बदलती रहती थी।[12] वह हिन्दू धर्म की स्थानीय पूजा पद्धतियों के विषय में भी बताता हैं जो कि हमें अन्य स्त्रोतों से प्राप्त नहीं होती। वह बंगाल क्षेत्र में एक स्थानीय त्यौहार चरक पूजा के विषय में विवरण देता हैं।[13] ट्रैवर्नियर ना तो राजस्व प्रणाली के विषय में वर्णन करता हैं और ना ही साधारण जातियों की सामाजिक आर्थिक स्थिति के बारे में बताता हैं।[14]

ट्रैवर्नियर ने अपने यात्रा-वृतान्त में कई महत्वपूर्ण विषयों पर ध्यान नहीं दिया फिर भी हम उनके वृतान्त को महत्वहीन नहीं मान सकते। उसने भारत के प्रमुख नगरों, व्यापारिक मार्गों व व्यापारिक मार्गों पर व्यापारिक कारवा को लूटे जाने सम्बन्धी विवरण देता हैं जो कि भारत की आर्थिक स्थिति की जानकारी के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

थेवनॉटः थेवनॉट 1666 को औरंगजेब के समय में भारत के सूरत शहर में आया था। इसके बाद उसने औरंगाबाद, कैम्बे, गोलकुण्डा आदि कई जगहों का भ्रमण किया। थेवनॉट भारतीय समाज के विषय में, लोगों के रहन-सहन, खान-पान, उत्सव, वेशभूषा व रीति-रिवाज आदि के बारे में विस्तार से बताता हैं।[15] थेवनॉट के यात्रा-वृतान्त में गुजरात के प्रशासन विशेषकर सूरत पर दी हुई उसकी टिप्पणी अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। उसका सूरत के चुंगी विभाग द्वारा लिया गया चुंगी कर का विवरण आर्थिक दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण हैं।[16]

वह मुगलकालीन नगरों की भौगोलिक स्थिति की प्रामाणिक जानकारी देने के साथ-साथ भारतीय वनस्पति एवं जीव-जन्तुओं के विषय में भी विस्तृत से बताता हैं। वह इन वनस्पतियों की घरेलू औषधीय व वाणिज्यक उपयोगिता का भी वर्णन करता हैं।[17]

फ्रांसिस मार्टिनः मार्टिन भी फ्रांस का यात्री था जो औरंगजेब के साथ भारत आया था। भारत में वह फ्रांसीसी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारी के रूप में 1669 ई. में आया। मार्टिन भारतीय तटों से होने वाले व्यापार के विषय में बताता हैं। भारत की आर्थिक स्थिति के साथ-साथ वह समाज का उल्लेख करता है व शिवाजी के कर्नाटक अभियान की जानकारी भी देता हैं।

इस तरह उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि औरंगजेब कालीन भारतीय इतिहास के विभिन्न आयामों के विषय की जो जानकारी हमें अन्य स्त्रोतों से नहीं मिलती, उनके विषय में फ्रांसीसी यात्रियों के यात्रा वृतान्त काफी महत्वपूर्ण सिद्ध बादशाह हुए है, क्योंकि इन्होंने बादशाह तथा दरबार, शहरों, कस्बों, उच्चाधिकारियों, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, व्यापारिक सभी विषयों पर लेखनी चलाई हैं। परन्तु इनका अध्ययन व इतिहास लेखन में उपयोग बड़ी ही सावधानी से करने की आवश्यकता हैं क्योंकि इन्होंने अपने यात्रा-वृतान्तों में सुनी-हुई बातों का भी समावेश किया है। फिर भी ये यात्रा-वृतान्त ऐतिहासिक दृष्टि से काफी उपयोगी है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. फ्रांसिस्को बर्नियर, ट्रैवल्स इन द मुगल एम्पायर (1656-1668), अनु. आर्चिवाल्ड कान्सटेबल, विसेंट स्मिथ, एटलांटिक पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1990, पृ. XV-XVII

ISSN 2277-5587

2. हरिशचन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत, भाग–2 (1540–1761), हिन्दी माध्यम कार्यान्वयनिदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पुनर्मुद्रण 2007, पृ. 665
3. इरफान हबीब, भारतीय इतिहास में मध्यकाल, अनु0 रमेश रावत, ग्रन्थ शिल्पी, दिल्ली, तृतीयसंस्करण, 2013, पृ. 50
4. बर्नियर, वही, पृ. : 240–41, 261–65
5. बर्नियर, वही, पृ. : 66–69,108, 112–114
6. हरिशचन्द्र वर्मा, वही, भाग–2, वही पृ. : 663
7. बर्नियर, वही, पृ. : 342, 326–29
8. इरफान हबीब, वही, पृ. : 292
9. बर्नियर, वही, पृ. : 13, 203, 249
10. जॉन बेपटिस्ट ट्रैवनियर, ट्रैवर्ल्स इन इण्डिया बाए जॉन बैपटिस्ट ट्रैवनियर, खण्ड–1, अनु.विलियम कारूक, दिल्ली, 1989, पृ.: X-XII
11. हरिशचन्द वर्मा, भाग–2, वही, पृ. : 659
12. ट्रेवर्नियर, खण्ड–1, पृ. : 15–16, 22–23, खण्ड–2, पृ. : 19, 68–69
13. ट्रैवनियर, खण्ड–1, पृ. : 81
14. हरिशचन्द्र वर्मा, वही, पृ. : 660
15. जे. डी. थेवनॉट, ए वॉयेज राऊण्ड द वर्ल्ड बाए थेवनूट, सं. सुरेन्द्रनाथ सेन, इण्डियाट्रैवल्स ऑफ थेवनॉट एण्ड करेरी, नेशनल आर्काइव्ज ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 1949, पृ.: 50, 53–54, 70–71, 119–120
16. थेवनॉट, वही, पृष्ठः XVII-XX
17. उपरोक्त, वही, पृष्ठः 16, 24, 54, 144
18. फ्रांसिस मार्टिन, इण्डिया ऑन दी सैवन्टीन्थ सेंचूरी (सोशल, इकॉनामिक एण्ड पॉलिटिक्ल), मैमोरीज ऑफ फ्रांसिस मार्टिन, (1670–1694, इंग्लिश ट्रांसलेशन एण्ड स्टेटेजिक लोतिकाबरदराजन, दिल्ली, मनोहर,1983) वॉल्यूम–II, पृ. : 570–71

राजस्थान में पर्यटन के विकास की उपलब्धियाँ एवं सम्भावनायें

डॉ. शालिनी चतुर्वेदी
असिसटेंट प्रोफेसर, कॉनोडिया पी.जी. महिला महाविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

प्रस्तुत शोधपत्र में भारतीय सभ्यता व संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में पर्यटन के सर्वांगीण महत्व को इंगित करने का प्रयास किया गया है। विशेषरूप से राजस्थान के सन्दर्भ में पर्यटन की आवश्यकता, उपयोगिता, व्यावहारिक स्वरूप व राज्य सरकार द्वारा आयोजित व संचालित विविध कार्यक्रमों, नीतियों, प्रयासों का विवेचन किया गया है। पर्यटन विकास की संभावित दशाओं पर भी प्रस्तुत पत्र में प्रकाश डाला गया है।

***संकेताक्षर** : पर्यटन,प्राकृतिक सौन्दर्य, जीर्णोद्धार, रोमांच, ऐनिमेशन, संगोष्ठियाँ, कार्यशालाएँ, मुस्तैद, आकर्षण, आयोजन।*

पर्यटन छुट्टियाँ बिताने या आमोद–प्रमोद के लिये स्वेच्छा से किये गये भ्रमण को कहते हैं। प्राचीनकाल से ही मनुष्य की घुमक्कड़ प्रवृत्ति रही है जो उसे किसी न किसी रूप में यात्रा के लिये प्रेरित करती रही है। मानव के प्रारम्भिक अस्थायी आवास के दौर में एक स्थान से दूसरे स्थान पर भोजन की तलाश में घूमना शारीरिक आवश्यकता थी परन्तु जब मानव ने स्थायी आवास बना कर रहना शुरू किया तो यह उसके मनोरंजन का साधन बना। प्रकृति का सौन्दर्य उसकी अपार विविधता में निहित है। यह उतना ही असीम है जितना मानव के मन में सौन्दर्य के प्रति उमड़ते विचार तथा सौन्दर्य की सराहना की ललक। यही कारण है कि प्राचीनकाल में अन्वेषकों तथा यात्रियों ने अनेक प्रकार के कष्ट सहकर भी रोमाचंक एवं साहसिक यात्राएँ कीं। मानव की नित नए ओर ज्ञात–अज्ञात स्थानों का भम्रण करने, देखने और उनकी सराहना करने की तीव्र इच्छा ने ही आधुनिक पर्यटन को जन्म दिया है और इसी पर्यटन ने बिना चिमनी एवं धुएँ के उद्योग का रूप ले लिया है। प्राकृतिक सौन्दर्य के अतिरिक्त मानव द्वारा निर्मित किले, महल, संग्रहालय तथा अन्य संरचनाएँ भी मानवीय आकर्षण का केंद्र रही है।

कुछ व्यक्तियों के लिए पर्यटन मनोरंजन का साधन हे, कुछ के लिये छुट्टी बिताने का माध्यम है तथा कुछ अन्य व्यक्तियों के लिये विभिन्न समुदायों की जीवन पद्धति, उनकी संस्कृति तथा उनकी परंपराओं को समझने का साधन है। आज के युग में यह एक महत्वपूर्ण आर्थिक एवं सांस्कृतिक गतिविधि बन गई है। इससे जहाँ एक ओर राष्ट्रीय एकता को मजबूती मिलती है वहीं दूसरी ओर अंतरर्राष्ट्रीय अध्ययन को बल मिलता हैं। पर्यटन, आधारभूत ढाँचे को मजबूत करता है और विदेशी मुद्रा अर्जित करने में सहायक होता है। पर्यटक स्थलों पर पर्यटन अर्थव्यवस्था विकसित हो जाती है। जिससे रोजगार के अवसर बढ़ते है और स्थानीय हस्तकला और सांस्कृतिक गतिविधियों को बढ़ावा मिलता है।

भारत में पर्यटन

भातर में आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास तथा राष्ट्रीय एकता के लिये पर्यटन अति आवश्यक है। भारत एक विशाल देश है जिसे विभिन्न प्रकार की स्थलाकृतियाँ, जलवायु एवं प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण पर्यटन स्थल है। सांस्कृतिक पर्यटन स्थलों में महल, मंदिर, मस्जिद, गुफाएँ आदि प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त समुद्री पुलिन, राजस्थान के रेतीले टीले, दक्षिण भारत के

सदाबहार वर्षा वन तथा पर्वतीय एवं पहाड़ी स्थलों में भी आकर्षक स्थल है।

भारत में पर्यटन का उद्‌गम धार्मिक यात्राओं से शुरू हुआ। प्राचीनकाल में श्रद्धालु तीर्थ यात्रा करने धार्मिक स्थलों पर जाते थे और यह क्रम अब भी जारी है। भारत मे हिन्दु धर्म के चारों धाम की तीर्थ यात्रा संभवतः पर्यटन की सोच की ही परिणति है। इन धामों का चार अलग–अलग दिशाओं में होना इस बात की पुष्टि करते हैं कि इनकी स्थापना के पीछे उद्देश्य मनुष्य को अपने निवास स्थान के अतिरिक्त दूसरे स्थानों की संस्कृति से परिचित कराना था। सदियों पहले जब आवागमन के साधनों का भी विकास नहीं हुआ था, लोग धार्मिक आस्थावश दुर्गम एवं मनोरम स्थलों पर स्थित तीर्थस्थलों की यात्रा किया करते थे। इसी बहाने निवास स्थान से दूर के स्थानों की यात्रा के साथ–साथ रास्ते में पड़ने वाले स्थानों की सभ्यता एवं संस्कृति, रहन–सहन, खान–पान से भी परिचय हो जाता। इससे ना केवल मनुष्य का ज्ञान विस्तृत होता बल्कि एक रोमांच का भी अनुभव होता। अब धीरे–धीरे लोगों की रूचि तीर्थ यात्रा से हटकर मनोरंजन से संबंधित पयर्टन की ओर बढ़ती जा रही है क्योंकि मनोरंजन में मौज–मस्ती तथा रंगीनियाँ होती है जो मन और मस्तिष्क, दोनों को ताजा करती है। कई बार लोग तीर्थ एवं मनोरंजन पर्यटन का मिश्रण करके दोनों का आनंद लेते है।

राजस्थान में पर्यटनः उपलब्धियाँ व सम्भावनायें

पर्यटन के क्षेत्र में राजस्थान सम्पूर्ण विश्व में अपनी अलग पहचान रखता है। यहाँ की समृद्ध सांस्कृतिक परम्पराएँ एवं इतिहास पर्यटकों के विशेष आकर्षण का केन्द्र रहा है। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में राजस्थान में व्यवस्थित रूप से पर्यटक आना शुरू हो गये। उस समय विभिन्न रियासतें पयटकों का मुख्य आकर्षण थी। राजस्थान भारत में अग्रणी राज्य है जहाँ राजा–महाराजाओं के महलों को हैरिटेज होटलों के रूप में पर्यटकों के लिये खोला गया है इससे एक ओर जहाँ इन स्मारकों के रखरखाव से स्थानीय जनता को रोजगार सुलभ हो रहा है वहीं दूसरी ओर पर्यटकों को राजस्थान की संस्कृति को नजदीक से देखने का रोमांच भी प्राप्त हो रहा है।

राजस्थान को पर्यटन मानचित्र पर एक विशिष्ट पहचान दिलाने के लिये 1956 में पर्यटन विभाग एवं 1978 में राजस्थान पर्यटन विकास निगम लिमिटेड की स्थापना की गई। पर्यटन विभाग एवं पर्यटन निगम ने ना केवल राज्य के ऐतिहासिक स्मारकों का संरक्षण किया बल्कि एक स्थानों पर पर्यटकों को सुविधाऐं सुलभ कराने का प्रयास भी किया है। राज्य की समृद्ध परंपराओं के प्रतीक मेले एवं त्यौहारों को सांस्कृतिक पर्यटन के रूप में प्रचारित एवं प्रसारित करने के लिये पर्यटन विभाग ने विभिन्न पर्यटक मेले तथा मरू समारोह (जैसलमेर), हाथी समारोह (जयपुर), मारवाड़ समारोह (जोधपुर), ग्रीष्म समारोह (माउण्ट आबू), ऊँट महोत्सव, (बीकानेर) एवं मेवाड़ समारोह (उदयपुर) आदि शुरू किये हैं आज ये मेले पर्यटकों के विशेष आकर्षण का केन्द्र है। इन मेलों के माध्यम से राज्य की लोक कला एवं संस्कृति को राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक मंच मिला है तथा सांस्कृतिक थाती और कलाओं को भी नया जीवन मिला है। पर्यटन विभाग ने राज्य के नैसर्गिक सौन्दर्य यथा राष्ट्रीय उद्यान एवं अभ्यारण्य के संबंध में साहित्य प्रकाशित कर प्रचार–प्रसार किया जिससे बड़ी संख्या में प्रकृति प्रेमी पर्यटक केवलादेव, रणथम्भौर, सरिस्का, कुम्भलगढ़, सज्जनगढ एवं राष्ट्रीय मरू उद्यान, जैसलमेर में आते हैं।

इसी उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुए राज्य सरकार प्रदेश में पर्यटन विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दे रही है। ऐतिहासिक स्मारकों, किलों, हवेलियों का जीर्णोद्धार कराया जा रहा है। राज्य के विभिन्न स्थलों में पर्यटन विभाग के तत्वाधान में आयोजित किए जाने वाले पर्यटक मेलों तथा जिला स्तर आयोजित पर्यटन मेलों को और अधिक आकर्षित बनाने के विशेष प्रयास किया जा रहे हैं, राज्य के सामाजिक आर्थिक विकास तथा रोजगार मे वृद्धि हेतु राज्य स्तर पर पर्यटन विकास की चुनौतियों व सम्भावनाओं पर विस्तृत विचार किया जाना अपेक्षित है।

देश का सर्वाधिक 'रंग–रंगीला' राजस्थान भारत में ही नहीं विश्व में अपने वैविध्यपूर्ण स्वरूप के कारण विशिष्ट स्थान रखता है परन्तु ऐतिहासिक विरासत, वन्यजीव, रेगिस्तान, झील, किले, शाही रेलगाड़ियों अनेकानेक विशेषताओं के बावजूद भी देश के अन्य राज्यों की तुलना में पर्यटकों को आकर्षित करने में असफल हो रहा है। इसके अन्तर्निहित कारण निम्नलिखित हैं :

- ब्रांडिग नही है। टॉप –10 स्ट्टेस में सबसे कम बजट है, इसे बढ़ाया जाना चाहिए। देश–विदेश में होने वाले मार्केटिंग ट्रेड फेयर मे प्रदेश की प्रभावी उपस्थिति होनी चाहिए।
- पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए समेकित व विशेष नीति का निर्माण किया जाना चाहिये।
- नए पर्यटन स्थल विकसित किये जाना चाहिये।
- ग्रामीण पर्यटन को नजर अंदाज न किया जाए, आधारभूत संरचना का विकास करके उन्हें पर्यटन के लिए सक्षम बनाया जाना चाहिये।

- माही, कडाना बांध के वैव वॉटर में पानी के मध्यस्थित टापूओं को विकसित कर पर्यटन के आकर्षण का केन्द्र बनाया जाना चाहिये।
- रेल में नई तकनीक के टॉयलेट बनाने और उन्हें क्लीन करने की जैसी तकनीक का लाभ ग्रामीण व्यक्तियों तक पहुँचाया जा सकता है।
- सिलिकॉन वैली अमेरीका की तरह राजस्थान को भी आगे ले जा सकते है।
- प्रदेश में अच्छे सॉफ्टवेयर टीचर्स तैयार किए जाने चाहिए।
- राजस्थान मूल के आईटी बिजनेसमैन जो सिलिकॉन वैली में बढ़िया काम करे रहें है प्रदेश के विकास में योगदान के लिए उन्हें आमंत्रित किया जा सकता है।
- केरल आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति के सहारे दुनियाभर में मेडिकल टूरिजम में अपनी विशिष्ट पहचान बना रहा है हमें भी इस दिशा में विशेष प्रयास करने चाहिए योग्य, प्रतिभाशाली चिकित्सकों के पलायन को रोकना चाहिए।
- चूरू व रामगढ़ शेखावटी का क्षेत्र देश में सबसे गर्म व सबसे सर्द क्षेत्र माना जाता है इसलिये यहाँ वर्ल्ड कल्चरल डेस्टिनेशन हब विकसित किया जा सकता है।
- देशी विदेशी पर्यटकों के मुख्य आकर्षण का केन्द्र रहने वाले राजस्थान के लोक गीत व लोक नृत्य के प्रोत्साहन में प्रदेश सरकार को और अधिक ध्यान देना चाहियें केवल कुछ महत्वपूर्ण समारोह व आयोजन में ही नहीं अपितु निरन्तर इनका संरक्षण व विकास किया जाये।
- राजस्थानी फिल्मों को प्रोत्साहित किया जाये विशेषकर एनीमेशन फिल्म निर्माण क्षेत्र और पोस्ट प्रोडक्शन सुविधाओं को विकसित करने का प्रयास करना चाहिये।
- राजस्थान फिल्मों को बढ़ावा देने के लिये फिल्म सिटी का निर्माण किया जाना चाहिये।
- पर्यटन पुलिस व्यवस्था को सक्रिय जागरूक व मुस्तैद किया जाये ताकि देशी–विदेशी पर्यटक बिना किसी डर व भय के पर्यटन का आनन्द ले सकें।
- स्वदेशी, विदेशी पर्यटकों, प्रवासी भारतीयों द्वारा पर्यटन के संदर्भ में दिये जा रहे फीडबैक पर विचार किया जायें
- पर्यटन विकास से जुड़ी विभिन्न चुनौतियों समस्याओं, सम्भावनाओं, उपलब्धियों व सुझावों पर विचार विमर्श हेतु समय–समय पर संगोष्ठियों, कार्यशालाओं व परिचर्चाओं के आयोजन को बढ़ाया जाये ताकि विद्ववतजनों के प्रयासों से इस दिशा में नवीन प्रयास सम्भव हो सकें।
- पर्यटन नीति को सैद्धांतिक ही नहीं अपितु व्यावहारिक व उपयोगी बनाया जाए।
- पर्यटन से जुड़े विभिनन संस्थानों, संरचनाओं व निकायों को इसके विकास हेतु समन्वित प्रयास करना चाहये।
- पर्यटन नीति का समय–समय पर मूल्यांकन किया जाये तथा अपेक्षित संशोधन व सुधार किये जायें।

उपर्युक्त सम्भावित अपेक्षाओं व संस्तुतियों को दृष्टिगत रखते हुये कहा जा सकता है कि वर्तमान में सरकार इस हेतु प्रयासरत है। द ग्रेट इण्डियन ट्रेवल बाजार– 2016 का उद्घाटन करते हुये मुख्यमंत्री वसुंधरा राजे जी ने कहा है कि पर्यटन की राजस्थान की अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण भूमिका है और इसने विश्व में प्रदेश की एक अलग पहचान कायम की है और इसे व्यापक बनाने के लिये पहली बार राजस्थान में कई भाषाओं में ओर कई माध्यमों से प्रचार अभियान चलाया गया है जिसने युवा पर्यटकों का ध्यान अपनी ओर खींचा है। पर्यटन को नई ऊँचाइयाँ देने के उद्देश्य से नई टूरिज्म यूनिट पॉलिसी 2016 लाई गई है। रिसर्जेन्ट राजस्थान समिट के तहत प्रदेश में नई पर्यटन इकाइयों की स्थापना 220 एमओयू किये गये हैं। जिससे प्रदेश में 40 हजार लोगों को रोजगार मिलेगा। धार्मिक पर्यटन को बढ़ावा देने के लिये टेम्पल सर्किट बनाये जा रहे हैं। राज्य सरकार दस्तकारों को बेहतरी एवं उन्हें अपने हुनर दिखाने के लिये सही प्लेटफार्म देने की दिशा में भी कार्य कर रही है। वर्ल्ड क्राफ्ट काउन्सिल द्वारा जयपुर को क्राफ्ट सिटी घोषित किया गया है। युनेस्कों ने भी जयपुर को शिल्प एवं लोक कलाओं के शहर के रूप में चुना है। विदेशी पर्यटकों के मनोरंजन के लिये विभिन्न रंगारंग कार्यक्रम भी आयोजित किये जाते हैं। इस वर्ष आयोजित किये जाने वाले कार्यक्रमों में जयपुर कोक इण्डिया कंसर्ट, म्यूजिक इन द पार्क, नेवल सिम्फोनिक, पुष्कर में सेकेड म्यूजिक कार्यक्रम, उदयपुर में वर्ल्ड म्यूजिक फेस्टिवल, इंटरनेशनल फोटो फेस्टिवल, हैरिटेज फैशन वीक आदि कार्यक्रम निर्धारित हैं। निसन्देह पर्यटन विकास हेतु राज्य सरकार निरंतर प्रयासरत व कटिबद्ध है परंतु विभिन्न चुनौतियों को दृष्टिगत रखते हुये इस दिशा में विशेष प्रयास अपेक्षित है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *एच. भीष्मपालः द टेम्पिल्स ऑफ राजस्थान, कमल प्रकाशन, जयपुर, 1969*
2. *गोस्वामी प्रेमचन्दः राजस्थान – संस्कृति, कला एवं साहित्य, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2001*
3. *बंसल, एस.पी. : राजस्थान वैभव, अल्फा ,प्रकाशन, नई दिल्ली, 1989*
4. *नाथुरामका, लक्ष्मीनारायणः राजस्थान की अर्थव्यवस्था, आदर्श प्रकाशन, जयपुर, 2012*
5. *व्यास, डॉ. राजेश कुमारः राजस्थान में पर्यटन प्रबन्ध, ड्रीमलैण्ड पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2005*
6. *राजस्थान टूरिज्म :*

   (i) *राजस्थान लेसर नॉन डेस्टिनेशन*

   (ii) *फैयर एण्ड फेस्टिवल्स ऑफ राजस्थान*

   (iii) *डिलाइटफुट डेस्टिनेशन*

   (iv) *डिस्कवर राजस्थान*

पत्र पत्रिकाएँः

1. *द टाइम्स ऑफ इण्डिया*
2. *न्यूज रेड लेटर (RTDCLtd.)*
3. *रंगीला राजस्थान*
4. *फ्यूचर टूरिस्ट*
5. *टूरिज्म एण्ड ट्रेवल*
6. *सुजस*
7. *अतिथि : पर्यटन विभाग, राजस्थान सरकार,जयपुर।*

'स्वतंत्रता' की अवधारणात्मक समझ : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

चन्दन श्रीवास्तव
शोद्यार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

'स्वतंत्रता' की अवधारणा का ऐतिहासिक विकास कैसे हुआ ? यह आलेख इस सवाल के विश्लेषण पर आधारित है। आलेख में 'स्वतंत्रता' की अवधारणात्मक उत्पत्ति से सम्बंधित ऐतिहासिक विमर्शों को संक्षेप में प्रस्तुत करते हुए इसके बहुपरिप्रेक्ष्यीय संदर्भों को विश्लेषित किया गया है। व्याख्या एवं विश्लेषण के लिए कुछ चयनित इतिहासकारों व चिंतकों के मन्तव्य को आधार बनाया गया है, जिससे मूलतः यह निकल कर आता है कि स्वतंत्रता की अवधारणात्मक उत्पत्ति एवं ऐतिहासिक विकास के संदर्भ में बहुत ही भिन्न एवं अंतर्विरोधी मत हैं। यहाँ, यह समझना बहुत रोचक है कि विविध विचारधाराओं एवं संदर्भों में स्वतंत्रता की अवधारणा का विकास बहुत ही अलग-अलग तरीके से हुआ है, जिनके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यों को इस आलेख में प्रस्तुत करने की कोशिश की गई है।

संकेताक्षर : *स्वतंत्रता की अवधारणा, इतिहास, औपनिवेशिक विचारधारा, अनुभववादी, तर्कणावादी।*

स्वतंत्रता किसे कहते हैं ? यह सवाल अति जटिल हो जाता है जब हम इसके लिए एक सार्वभौमिक परिभाषा गढ़ने की कोशिश करते हैं। यहाँ तक कि इतिहासकारों व चिंतकों के बीच भी इसके प्रति कोई आम सहमति नहीं बन पायी है। अतः इस सवाल के जवाब में वस्तुनिष्ठता (ऑब्जेक्टिविटी) की अपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। लेकिन, इस सवाल के ऐसे पहलुओं का विश्लेषण अवश्य किया जाना चाहिए, जो ज्ञानमीमांसीय (एपिस्टेमोलॉजिकल) तथा ऐतिहासिक दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण हैं। प्रस्तुत आलेख इसी संदर्भ में है जिसके अंतर्गत 'स्वतंत्रता' से सम्बंधित दो मुख्य पहलुओं का विश्लेषण किया गया है। पहला पहलू है–स्वतंत्रता के अवधारणा की उत्पत्ति, और दूसरा–स्वतंत्रता के बहुपरिप्रेक्ष्यीय अवधारणाओं की समझ। इसके लिए, स्वतंत्रता की अवधारणा के विषय में कुछ चयनित इतिहासकारो व चिंतकों के विचारों को आलेख का मूल आधार बनाया गया है।

आरम्भ में, यदि स्वतंत्रता की अवधारणा के उत्पत्ति से सम्बंधित विमर्श की चर्चा करें तो यह पाते हैं कि ऐतिहासिक समय रेखा पर इसको किसी एक बिन्दु पर दर्शाना बहुत कठिन है क्योंकि, इससे सम्बंधित कई तरह के मन्तव्य अलग-अलग समय पर आते रहे हैं। जैसे कि, एक प्रमुख मन्तव्य के अनुसार, स्वतंत्रता के अवधारणात्मक मूल को प्राचीन सभ्यताओं में देखा जा सकता है। दार्शनिक रूसो इस मन्तव्य के प्रबल समर्थक थें। ऐसा प्रतीत होता है कि इस मत के माध्यम से यह स्थापित करने का प्रयास किया गया कि पुरातनता और आधुनिकता के मध्य एक स्वभाविक सम्बंध है। लेकिन जो दूसरा मन्तव्य है, वह स्वतंत्रता की अवधारणा को आधुनिक काल की देन के रूप में देखता है। अर्थात, प्राचीन सभ्यताओं में स्वतंत्रता की कोई अवधारणा विद्यमान ही नहीं थी। इसके पक्ष में लॉर्ड एक्टन के तर्कों को समझना महत्त्वपूर्ण है। इनके अनुसार प्राचीन सभ्यता के लोग 'स्वतंत्रता के विनियम' (रेग्युलेशन ऑफ लिबर्टी) के बजाए 'सत्ता के विनियम' (रेग्युलेशन ऑफ पावर) को अधिक अच्छी तरह समझते थे (एक्टन,1877)। अपने तर्क के पक्ष में, लॉर्ड एक्टन एथेन्स, ग्रीस आदि प्राचीन राज्यों का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं और उनकी गतिविधियों में 'सत्ता का विनियम' कैसे कार्य कर रहा था, इसकी व्याख्या करते हैं। इनके मन्तव्यानुसार, उस काल के दौरान नैतिकता, धर्म और राजनीति में कोई अंतर कर पाना मुश्किल था। राज्य के लिए व्यक्ति, परिवार, संगठन या अधिनस्थ केवल सामग्री यानि 'मटीरियल' की तरह थें, जिनका उपभोग

राज्य अपने हित में किया करता था (एक्टन, 1877)। अतः एक्टन के अनुसार, प्राचीन काल में व्यक्ति का कोई अस्तित्व ही नहीं था। व्यक्ति केवल राज्य के लिए अस्तित्व में था। राज्य के अस्तित्व के बिना व्यक्ति की अपनी स्थिति शून्य थी। इसलिए, स्वतंत्रता को प्राचीन काल से जोड़ना अनुचित है।

आलोचनात्मक दृष्टिकोण से देखें तो एक्टन अपने तर्क में प्राचीन काल की स्थिति और आधुनिक काल के संदर्भ को एक ही कसौटी पर तौल रहे हैं। कुछ हद तक यह भी प्रतीत होता है कि वे 'स्वतंत्रता' की अवधारणा को विकासमूलक (इवोल्युशनरी) न मानकर, आधुनिक काल में उत्पन्न एक आकस्मिक परिघटना के रूप में समझ रहे हैं। उनके द्वारा ऐसा तर्क प्रस्तुत करने के पीछे पुनर्जागरण का आधार दिखाई देता है जिसने स्वयं से पहले के काल को अंधकारमयी और अतार्किक घोषित करने का काम किया। चूंकि 'स्वतंत्रता' को एक तार्किक अवधारणा के तौर पर प्रस्तुत किया जाता है। अतः एक्टन इसे पुनर्जागरण के प्रभाव के तौर पर परिकल्पित करते हैं।

'स्वतंत्रता' की अवधारणा के उत्पत्ति से सम्बंधित एक और महत्त्वपूर्ण मुद्दा उसके एकल-उत्पत्ति (सिंग्युलर जेनेसिस) एवं बहु-उत्पत्ति (प्लूरल जेनेसिस) के संदर्भ में है। इससे सम्बंधित एक वर्चस्वशाली मत यह है कि 'स्वतंत्रता' की अवधारणा की उत्पत्ति 'पश्चिम' में हुई और वहाँ से इसका प्रसार औपनिवेशिक राज्यों (कोलोनियल स्टेट्स) में किया गया (बैली, 2012)। साथ ही, कुछ यूरोपीयन चिंतकों ने यह भी प्रचारित किया कि एशिया, अफ्रीका जैसे क्षेत्र बौद्धिकता विहिन क्षेत्र रहे हैं, जो स्वयं से 'स्वतंत्रता' की अवधारणा को समझ पाने और उसे अपना पाने में असमर्थ थें। इस मत का प्रयोग एशिया, अफ्रीका आदि क्षेत्रों पर औपनिवेशिक सत्ता द्वारा किए जाने वाले शासन को वैधता दिखाने में की गई। हालांकि, बहुत प्रबल मत होने के बावजूद इसका पुरजोर खण्डन भी होता रहा। सी. ए. बैली (2012) के अनुसार एशियाई समाज के वैचारिक विरासत में ऐसा कोई तत्व नहीं है जो उसे व्यक्तिगत स्वतंत्रता को केन्द्रीय मूल्य (कोर वैल्य) मानने से रोकती हो। वे भारत, चीन, मलेशिया, दक्षिणपूर्व देशों से कई उदाहरणों का संदर्भ देते हुए यह साबित करते हैं कि इन क्षेत्रों में 'स्वतंत्रता' की अपनी विशष अवधारणा स्थानीय तौर पर विद्यमान रही है। अतः, बैली के अनुसार स्वतंत्रता की उत्पत्ति को केवल 'पश्चिम' के साथ जोड़ना समस्यात्मक है। इस तरह, स्वतंत्रता की अवधारणात्मक उत्पत्ति को एकल उत्पत्ति का मानना उचित नहीं है।

विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि स्वतंत्रता की अवधारणात्मक उत्पत्ति अलग-अलग संदर्भों में अपने विशिष्ट विचारधाराओं के अनुकूल हुई है। उदाहरणस्वरूप, पश्चिम में व्यक्तिवाद (इन्डिविजुयलिज्म) की जो अवधारणा है, उससे बहुत ही अलग ढ़ंग से चीनी या भारतीय विचारधारा में व्यक्तिवाद को समझा जाता है (बैली, 2012)। यहाँ तक कि पश्चिम में भी 'स्वतंत्रता' की अवधारणा और व्यक्तिवाद के संदर्भ में अलग-अलग विचारधाराएँ हैं। जैसे, एफ.ए. हायेक (1960) ने अपने मन्तव्य में ब्रिटिश और फ्रेंच विचारधाराओं में स्वतंत्रता के भिन्न-भिन्न उत्पत्ति की चर्चा की है। अब यदि हम यह मानकर आगे बढ़े कि स्वतंत्रता की अवधारणा की उत्पत्ति बहुसंदर्भीय है, तो यह बात अव य उठती है कि क्या उनकी अवधारणाओं में एक जैसी विशेषता है या उनमें अंतर है। इस संदर्भ में जिन विचारों का उद्भव हुआ है उनमें यह देखने को मिलता है कि जहाँ एक ओर स्वतंत्रता को व्यक्तिवाद एवं आधुनिकता से जोड़ा जा रहा है, वहीं दूसरी तरफ इसके राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक आयामों पर भी गहन विमर्श किए जा रहे हैं।

एक्टन की तरह बेन्जामिन कॉन्सटेन्ट (1819) भी स्वतंत्रता को पुरातनता से जोड़ने के पक्ष में नहीं हैं। अपने तर्क में वे यह स्थापित करने का प्रयास करते हैं कि यह एक आधुनिक अवधारणा है। कॉन्सटेन्ट के अनुसार, प्राचीन सभ्यता के सामाजिक संगठन और आधुनिक समाज के बीच एक बड़ा अंतर है। अतः जो पुरातन सभ्यता थी, उसकी व्यवस्था में यह सम्भव ही नहीं था कि 'स्वतंत्रता' की अवधारणा पर आधारित संस्थाओं को निर्मित किया जा सके (कॉन्सटेन्ट, 1819)। वर्तमान में स्वतंत्रता की जो अवधारणा है, जिसमें हर व्यक्ति के पास कानूनी अधिकार है और अपने जीवन की गतिविधि को तय करने की आजादी है, ऐसी व्यवस्था केवल आधुनिक समाज में ही सम्भव है। जो प्राचीन सभ्यता में व्यक्ति था, वह सार्वजनिक तौर पर तो स्वायत्त माना जा सकता है, लेकिन निजी सम्बंधों में वह पूर्णतः दास था। नागरिक के तौर पर वह राज्य के युद्ध और शान्ति की नीति में हिस्सेदार था, लेकिन एक निजी व्यक्ति के तौर पर उसकी गतिविधियों पर कड़ा नियंत्रण था। जबकि आधुनिक समाज में, स्वतंत्रता की अवधारणा ठीक उसके उलट है। आज का व्यक्ति अपने निजी जीवन में स्वतंत्र है, लेकिन स्वायत्त केवल कहने को है (कॉन्सटेन्ट, 1819)। इस संदर्भ में एडमंड बुर्के का मत उल्लेखनीय है तो स्वतंत्रता के व्यक्तिवादी दृष्टिकोण की आलोचना करते हैं और उनके अनुसार स्वतंत्रता केवल सामूहिक प्रकृति (कलेस्टिव नेचर) की होनी चाहिए, जिसमें शाश्वत (इटरनल) तथा उत्कृष्ट नैतिक अनुक्रम (मोरल आर्डर) हो

(स्टैनलिस, 1963)। इस दृष्टिकोण से आधुनिक अवधारणा में स्वतंत्रता की कई सीमाएँ हैं।

इसके साथ ही, स्वतंत्रता की अवधारणा को सामाजिक सत्ता (सोशल पावर) से जोड़कर भी देखे जाने पर कॉन्सटेन्ट का बल रहा है। उनके अनुसार, सामाजिक सत्ता से सम्बंधित आधुनिक स्वतंत्रता के कुछ खतरें भी हैं, जहाँ व्यक्ति अपने निजी अधिकारों के लिए अपने राजनीतिक शक्ति को आसानी से समर्पित कर देता है (कॉन्सटेन्ट, 1819)। इस आधार पर यदि विश्लेषण करें तो यह कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता की आधुनिक अवधारणा पूर्णतः असीम (ऐब्सोल्युट) तथा अभय (अनथ्रियेटेन्ड) नहीं है, बल्कि इसपर समाज का असीमित बंधन है, जिससे कोई छूट नहीं सकता।

जब हम स्वतंत्रता की अवधारणा की चर्चा करते हैं, तो यह सवाल भी उठता है कि विचारधाराओं ने इसकी मान्यता को कैसे आकार दिया। इस संदर्भ में अनुभववादी (इम्पिरिसिज्म) और तर्कणावादी (रैशनलिस्टिक) विचारधाराओं की समझ जरूरी है क्योंकि दोनो विचारधाराओं ने स्वतंत्रता के संदर्भ में अपनी अलग-अलग मान्यताओं को प्रस्तुत किया है। हायेक (1960) ने इस बारे में बहुत ही रोचक व्याख्या प्रस्तुत की है। उनके अनुसार, ऐतिहासिक तौर पर स्वतंत्रता की असल उत्पत्ति अठारहवीं शताब्दी में इंग्लैण्ड और फ्रांस में हुई। हायेक का मानना है कि अठारहवीं सदी से पहले इंग्लैण्ड वैचारिक तौर पर स्वतंत्रता की अवधारणा से अवगत था, लेकिन फ्रांस नहीं। इस कारण, दोनों दशों में स्वतंत्रता की दो अलग-अलग परम्पराओं का उद्‌भव हुआ-एक, 'अनुभववादी व अव्यवस्थित' (इम्पिरिकल एण्ड अनसिस्टेमेटिक) परम्परा और दूसरा, 'चिंतनशील व तार्किक' (स्पेक्युलेटिव एण्ड रैशनलिस्टिक) परम्परा। गौर करनेवाली बात यह है कि इन दोनों ही परम्पराओं ने लोकतांत्रिक संरचना के शासन को बढ़ावा दिया, जबकि उनकी अंतर्निहित मान्यताओं में बड़ा अंतर था। जहाँ एक तरफ ब्रिटिश परम्परा के स्वतंत्रता की अवधारणा पर नैतिकतावादी दार्शनिकों का प्रभाव था, वहीं फ्रेंच परम्परा के स्वतंत्रता पर डेकार्टे के तर्कणावाद का सीधा प्रभाव दिखता है।

स्वतंत्रता की नींव (फाउन्डेशन ऑफ लिबर्टी) के सम्बंध में विश्लेषण करें तो ब्रिटिश परम्परा में इसकी संस्थाओं का विकास सुनियोजित नहीं हुआ है, बल्कि वैसी संस्थाएँ इसलिए विकसित हो पायी क्योंकि वे अपना निर्वाह (सस्टेन) करने में सफल हो सकीं। इसके उलट, फ्रेंच परम्परा का यह मत है कि यह मनुष्य की आकांक्षा और उसके द्वारा सुनियोजित ढंग से तैयार व्यवस्था का प्रतिफल है, जिसके कारण स्वतंत्रता की अवधारणा अस्तित्व में आ सकी (हायेक, 1960)। अतः यह सवाल अति जटिल हो जाता है कि स्वतंत्रता की अवधारणा को मनुष्य ने अपने बौद्धिक क्षमता के आधार पर चेतनस्वरूप में विकसित किया है या फिर यह विभिन्न सभ्यताओं के विकासमूलक प्रकिया (इवोल्युशन) का प्रतिफल है, जो कई गलत-सही अनुभवों के बाद विकसित हुआ। इस दृष्टिकोण से देखें तो अनुभववादी विचारधारा में स्वतंत्रता के पुरातन अवधारणाओं को मान्यता मिलती है, जबकि तर्कणावादी दृष्टिकोण के अनुसार स्वतंत्रता की अवधारणा अचानक से तब प्रकट हुई, जब मनुष्य ने इससे सम्बंधित योजनाबद्ध तंत्र का निर्माण किया। बुर्के स्वतंत्रता को तर्कणावाद से जोड़कर देखे जाने की फ्रेंच परम्परा की आलोचना करते हैं (स्टैनलिस, 1963)।

उपरोक्त विमर्श का एक और पहलू या सवाल यह है कि क्या 'स्वतंत्रता' ऐसी अवधारणा है, जिसे किसी के द्वारा किसी अन्य को दी जा सके। ऐतिहासिक तौर पर यह सिद्धांत प्रबल रहा है कि कोई राज्य अपने नागरिकों को स्वतंत्रता देता है या कोई आधिपत्यशाली राज्य अपने अधीन राज्य को स्वतंत्रता देता है। बैली (2012) ने अपने पुस्तकीय आलेख 'रिकवरिंग लिबर्टीज' में भारतीय चिंतन का संदर्भ देते हुए उपरोक्त मान्यता को चुनौती दी है। वे सांख्यिकीय उदारवाद (स्टैटिस्टिकल लिबरलिज्म) के एक नए आयाम में स्वतंत्रता सम्बंधी भारतीय दलीलों को प्रस्तुत करते हैं। इसके अनुसार, औपनिवेशिक सत्ता का आँकड़ों के आधार पर स्वतंत्र आलोचना करने की पृष्ठभूमि तैयार हुई जो स्वयं के शोषण के प्रति स्वतंत्रता की आवाज बुलन्द करने का एक नया जरिया बना (बैली, 2012)। इसने स्वतंत्रता के संदर्भ में 'स्वराज' की अवधारणा को भी प्रोत्साहित किया। कुल मिलाकर, यह अवधारणा उभर कर आई कि किसी भी समाज में स्वतंत्रता की कल्पना तभी की जा सकती है, जब उसमें स्वराज हो। अर्थात, स्वतंत्रता कोई ऐसी अवधारणा नहीं है जिसे एक राज्य किसी दूसरे राज्य (जो परतंत्र है) को दे सके। हालांकि, यह आलोचना की जाती है कि 'स्वराज' की अवधारणा में स्वतंत्रता के केवल राजनीतिक पहलू को प्रधानता दी गई है। हालांकि इसके साथ ही, स्वतंत्रता की अवधारणा में राजनीतिक अधिकारों, न्यायिक अधिकारों तथा शोषण के विरुद्ध सुरक्षा के भाव को समावेशित करके देखने का नजरिया भारतीय संदर्भ में बहुत महत्त्वपूर्ण रहा है, जिसपर नौरोजी और दत्त ने अपने सिद्धांतो में विशेष बल दिया है (बैली, 2012)। वर्तमान में राज्य को जिस प्रकार से एक कल्याणकारी लोकतांत्रिक संस्था के तौर पर देखा जाता है, उसमें स्वतंत्रता की विविध आवधारणाएँ एक साथ प्रभावी तौर पर सम्मिलित हैं।

स्वतंत्रता की अवधारणात्मक समझ के अंतर्गत इसका आर्थिक परिप्रेक्ष्य भी अति महत्त्वपूर्ण है। वर्तमान स्थिति में, आर्थिक उदारवाद को व्यक्तिवाद के साथ जोड़कर देखा जा रहा है, जो स्वयं को व्यक्ति की स्वतंत्रता के पक्ष में प्रस्तुत कर रहा है। इस संदर्भ में कॉन्सटेन्ट का मत महत्त्वपूर्ण है जो स्वतंत्रता की अवधारणा के फलीभूत होने में वाणिज्य का विशेष योगदान मानते हैं। उनके अनुसार, वाणिज्य ने युद्ध को स्थानांतरित कर दिया, जिसके कारण एक नयी राज्य व्यवस्था का गठन हुआ और व्यक्ति को आर्थिक तौर पर गुलाम, लेकिन निजी तौर पर स्वतंत्र बनाने की प्रक्रिया आरम्भ हुई (कॉन्सटेन्ट, 1819)। इस प्रकार, स्वतंत्रता की अवधारणा पर आर्थिक कारकों का प्रभाव भी शामिल है और स्वतंत्रता ने स्वयं का एक आर्थिक चरित्र भी विकसित कर लिया है।

उपरोक्त व्याख्याओं एवं विश्लषणों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि स्वतंत्रता की अवधारणात्मक उत्पत्ति एवं विकास के कई संदर्भ एवं चरण रहे हैं। एक तरफ, इसे पुरातन सभ्यता से जोड़ा जा रहा है तो दूसरी तरफ इसके उद्‌भव को अठारहवीं शताब्दी के प्रगतिशील चिंतन का प्रतिफल माना जा रहा है। कहीं इसे एक पृथक अवधारणा तथा अधिकार के तौर पर व्याख्यायित किया जा रहा है, तो कहीं इसे समाज के संरचनात्मक ढांचे का अभिन्न अंग माना जा रहा है। अंततः यह कहना महत्त्वपूर्ण है कि स्वतंत्रता की अवधारणा को जिस प्रकार से अतीत में संकल्पित किया गया, उसे आकार देने में सत्ता, समाज, अर्थ और संस्कृति की ऐतिहासिक भूमिका रही है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *लॉर्ड एक्टन, द हिस्ट्री ऑफ फ्रिडम इन एन्टिक्युटी, फियर्स जे. रुफुस, एस्से इन द हिस्ट्री ऑफ लिबर्टी में, वाल्युम–2, इन्डियानापोलिस, लिबर्टी फण्ड, 1877, पृ. 6–28*
2. *बेन्जामिन कॉन्सटेन्ट, ऑन द लिबर्टी ऑफ द एन्सिएन्टस कम्पेयर्ड वीड दैट ऑफ द मॉडर्न, 1819/2007, ऑनलाइन स्रोत से (*http.//mises/org/print/*9005)*
3. *सी. ए. बैली, रिकवरिंग लिबर्टीजः इन्डिन थौट इन द एज ऑफ लिबरलिज्म एंड इम्पायर, कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, 2012, पृ. 188–212*
4. *एफ. ए. हायेक, द कन्सटिट्यूशन ऑफ लिबर्टी, रुटलेज पब्लिकेशन, लंदन एण्ड न्यूयोर्क, 1960, पृ. 1–20, 49–62.*
5. *पीटर जे. स्टैनलिस, सेलेक्टेड राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज ऑफ एडमंड बुर्के, 1963, ऑनलाइन स्रोत से*

बदलते नगरीय भूमि उपयोग का पर्यावरण पर प्रभाव

करतार सिंह
शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

नगरीय भूमि उपयोग का आशय नगर सीमा में स्थित धरातलयी क्षेत्र के उपयोग से हैं। नगर में धरातलीय क्षेत्र को निर्मित कर उसका उपयोग किया जाता है। नगरों की कार्यात्मक आकारिकी या नगरीय आकारिकी के कार्यात्मक पक्ष या नगरीय भूमि उपयोग शीर्षक के अन्तर्गत नगर के विभिन्न भागों में विभिन्न कार्यों में भूमि का जो उपयोग किया जा रहा है, का अध्ययन समाहित हैं। जब एक विशेष कार्य के लिए किसी क्षेत्र के सर्वाधिक भवनों का प्रयोग किया जाता है तो उस क्षेत्र को उस कार्य के आधार पर नामांकित किया जाता है, जैसे – आवासीय क्षेत्र, औद्योगिक क्षेत्र, शैक्षणिक क्षेत्र और सांस्कृतिक क्षेत्र आदि। अतः स्पष्ट है कि भूमि उपयोग नगरीय कार्यात्मक आकारिकी की पहचान का आधार बन जाता है। नगरीय भूमि उपयोग में समय के साथ परिवर्तन होते रहते है। समय के साथ मांग में परिवर्तन एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। नगर संगठन में नगर अभ्युदय के साथ केन्द्रोमुखी शक्तियां सभी वस्तुओं को नगर केन्द्र की ओर गतिमान करती है। लेकिन एक निश्चित समय के बाद केन्द्रोपसारी शक्तियां नगरीय क्षेत्र की वस्तुओं को बाहर की ओर उन्मुख करने लगती है। उदाहरण के लिए नगर का सम्पन्न वर्ग पहले केन्द्र के पास बसता है। लेकिन बढ़ती भीड़–भाड़ के कारण बाद में ऐसा वर्ग नगर के बाहर बसने में सुख–सुविधाओं का अनुभव करता हैं। समय के संदर्भ में जनसंख्या का विकास हुआ एवं मानव की आवश्यकताएं निरन्तर बढ़ती गयी, परिणामतः पर्यावरण का रूपान्तरण होता गया। पर्यावरण के रूपान्तरण के साथ–साथ प्रदूषण का समावेश होता गया। 21 वीं शताब्दी तक नव तकनीकी के विकास के कारण भूमि उपयोग प्रारूप में आधुनिकीकरण तथा औद्योगीकरण का भृदृष्य परिलक्षित हुआ। इसके द्वारा जहां मानव का कल्याण हुआ, वहीं पर पर्यावरण प्रदूषण की विकट समस्या भी उत्पन्न हो गयी है। जनसंख्या की विस्फोट स्थिति, नगरीकरण, औद्योगीकरण, वैज्ञानिक–कृषिकरण आदि के कारण भूमि उपयोग प्रारूप में परिवर्तन से अनेक प्रकार के प्रदूषणों का उद्‌भव हुआ हैं।

संकेताक्षरः *नगरीय भूमि उपयोग, पर्यावरण प्रदूषण, आकारिकी, केन्द्रीय व्यापारिक क्षेत्र (सी.बी.डी.), आधुनिकीकरण तथा औद्योगीकरण, नगरीयकरण, कृषिकरण, पारिस्थितिकी तंत्र, हिमकन्दक, नैसर्गिक गुण, चकबन्दी, एकीकरण, नियोजन, वनाग्नि, संरक्षण।*

नगरीय भूमि उपयोग का आशय नगर सीमा में स्थित धरातलीय क्षेत्र के उपयोग से हैं। नगर में धरातलीय क्षेत्र को निर्मित कर उसका उपयोग किया जाता हैं। नगरों का उद्‌भव एवं विकास धरातल के किसी एक भाग पर होता है। नगर में रहने वालों को विभिन्न उद्‌देश्यों के लिए स्थान की आवश्यकता होती है। नगर द्वारा अधिग्रहित भू–भाग को ही नगरीय भूमि उपयोग कहते हैं। नार्दम के अनुसार नगरीय भूमि उपयोग शब्द व्यापक अर्थ के कारण अधिक उपयुक्त है, जिसमें नगर का स्थलीय भू–भाग जलीय क्षेत्र व सतह से ऊपर का त्रिविमीय स्थान भी शामिल हो जाता हैं। नगरों की कार्यात्मक आकारिकी या नगरीय आकारिकी के कार्यात्मक पक्ष या नगरीय भूमि उपयोग शीर्षक के अन्तर्गत नगर के विभिन्न भागों में विभिन्न कार्यों में भूमि का जो उपयोग किया जा रहा है, का अध्ययन समाहित हैं।

प्रायः एक नगर में दो प्रकार के भूमि उपयोग क्षेत्र पाये जाते हैं – एक निर्मित क्षेत्र और दूसरा गैर–निर्मित क्षेत्र। निर्मित क्षेत्र पर विविध प्रकार के भवन, सड़के, गलियाँ, हवाई अड्डा व स्टेडियम आदि का अस्तित्व होता है। जबकि गैर–निर्मित क्षेत्र पर बने भवन विविध कार्यों के लिए प्रयुक्त किये जाते है। जब एक विशेष कार्य के लिए किसी क्षेत्र के सर्वाधिक भवनों का प्रयोग किया जाता है तो उस क्षेत्र को उस कार्य के आधार पर नामांकित किया जाता है। जैसे आवासीय क्षेत्र, औद्योगिक क्षेत्र, शैक्षणिक क्षेत्र और सांस्कृतिक क्षेत्र आदि। अतः स्पष्ट है कि भूमि उपयोग नगरीय कार्यात्मक आकारिकी की पहचान का आधार बन जाता है।

यह भी उल्लेखनीय है कि नगरीय भूमि उपयोग के निर्धारण में क्षेत्र की स्थिति, आवागमन की सुविधा, भूमि मूल्य, किराये का स्वरूप, कार्यों का स्वरूप आदि तत्व प्रभावकारी भूमिका निभाते है। आधुनिक काल के नगरों में केन्द्रीयता के प्रभाव के परिणामस्वरूप नगर के केन्द्र में केन्द्रीय व्यापारिक क्षेत्र (सी.बी.डी.) की स्थिति पाई जाती है, क्योंकि पूरे नगर के लिए यहां सर्वाधिक सुगमता होती है।[1]

नगरीय भूमि उपयोग

नगरीय भूमि उपयोग के निर्धारण के लिए भूमि उपयोग मानचित्र का निर्माण किया जाता है, ताकि यह निश्चित किया जा सके कि नगर सीमा में स्थित भूमि पर किस प्रकार के कार्यों के लिए निर्माण की अधिकता हैं। नगरीय भूमि उपयोग मानचित्रों का निर्माण सर्वप्रथम नगर नियोजन के लिए किया जाने लगा। बाद में भूगोलवेत्ताओं ने नगरीय कार्यात्मक आकारिकी को स्पष्ट करने के लिए इसका उपयोग करना शुरू किया। इस संदर्भ में सुप्रसिद्ध नगर नियोजक बार्थोलोमेव का प्रयास उल्लेखनीय है। बार्थोलोमेव ने भूमि उपयोग को दो भागों में विभक्त किया है – विकसित क्षेत्र और रिक्त क्षेत्र।[2]

नगरीय भूमि उपयोग के वर्गीकरण में अधिकांश भूगोलवेत्ताओं ने वास्तविकता के आधार पर नगरीय भूमि उपयोग को आठ भागों में विभक्त किया है – व्यावसायिक क्षेत्र, सांस्कृतिक क्षेत्र, मनोरंजन क्षेत्र, आवासीय क्षेत्र, औद्योगिक क्षेत्र, यातायात क्षेत्र, प्रशासनिक क्षेत्र, शैक्षणिक क्षेत्र और खुली भूमि। नगरीय भूमि उपयोग में समय के साथ परिवर्तन होते रहते है। समय के साथ मांग में परिवर्तन एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। नगर संगठन में नगर अभ्युदय के साथ केन्द्रोमुखी शक्तियां सभी वस्तुओं को नगर केन्द्र की ओर गतिमान करती है। लेकिन एक निश्चित समय के बाद केन्द्रोपसारी शक्तियां नगरीय क्षेत्र की वस्तुओं को बाहर की ओर उन्मुख करने लगती है। उदाहरण के लिए नगर का सम्पन्न वर्ग पहले केन्द्र के पास बसता है। लेकिन बढ़ती भीड़–भाड़ के कारण बाद में ऐसा वर्ग नगर के बाहर बसने में सुख–सुविधाओं का अनुभव करता हैं। इसी प्रकार नगर की वृद्धि के साथ–साथ नगर में केन्द्र के पास भूमि व भवनों की मांग बढ़ जाती है, जिसके कारण आवासीय क्षेत्र व्यावसायिक बन जाते हैं। अतः स्पष्ट है कि समयानुसार नगरी भूमि उपयोग प्रारूप में परिवर्तन आता रहता है। नगर के बाहर विस्तार के साथ कृषि भूमि निर्मित क्षेत्र में बदल जाती है। इस प्रकार भूमि उपयोग प्रारूप का पर्यावरण पर प्रभाव देखा जा सकता है।

पर्यावरण

पर्यावरण मानव को तथा मानव पर्यावरण को प्रभावित करता है। मानव पर्यावरण में विशिष्ट क्रियाओं द्वारा नूतन पर्यावरण का सृजन करता है। मानव द्वारा उद्भूत–विशिष्ट पर्यावरण उसकी संस्कृति के विकास का परिमाणक होता है। पर्यावरण के प्रत्येक घटक संतुलित अवस्था में रहते हैं। इनमें भूमि उपयोग में बदलाव असंतुलन की स्थिति उत्पन्न कर देता है, जिससे पर्यावरण की स्वच्छता समाप्त हो जाती है तथा प्रदूषण का उद्भव होता है। मानव एक क्रियाशील प्राणी है जिस कारण वह भूमि उपयोग में निरन्तर परिवर्तनशील करता रहता है जिससे वह पर्यावरण को प्रभावित करता है। मानव की संस्कृति का विकास क्रमागत हैं। पुरापाषाणकाल में अत्यल्प जनसंख्या तथा अविकसित संस्कृति के कारण भूमि उपयोग प्रारूप परिवर्तनशील नहीं था जिससे मानव पर्यावरण को प्रभावित नहीं कर सका, जिस कारण प्रदूषण नाममात्र का ही था। समय के संदर्भ में जनसंख्या का विकास हुआ एवं मानव की आवश्यकताएं निरन्तर बढ़ती गयी, परिणामतः पर्यावरण का रूपान्तरण होता गया। पर्यावरण के रूपान्तरण के साथ–साथ प्रदूषण का समावेश होता गया। 21वीं शताब्दी तक नव तकनीकी के विकास के कारण भूमि उपयोग प्रारूप में आधुनिकीकरण तथा औद्योगीकरण का भृदृश्य परिलक्षित हुआ। इसके द्वारा जहां मानव का कल्याण हुआ वहीं पर पर्यावरण प्रदूषण की विकट समस्या भी उत्पन्न हो गयी है। जनसंख्या की विस्फोटक स्थिति, नगरीकरण, औद्योगीकरण, वैज्ञानिक–कृषिकरण आदि के कारण भूमि उपयोग प्रारूप में परिवर्तन से अनेक प्रकार के प्रदूषणों का उद्भव हुआ है।

पर्यावरण प्रदूषण क्या है?

प्रदूषण अंग्रेजी के **"Pollution"** शब्द लैटिन के **Pollutionem** से लिया गया है, जिसका अर्थ गंदा करना हैं। सामान्य शब्दों में पर्यावरण प्रदूषण वायु, भूमि तथा जल के भौतिक, रासायनिक तथा जैविक लक्षणों में अनचाहे परिवर्तन से है जो मानव और प्रकृति पर नकारात्मक प्रभाव

डालते है। अमेरिकी राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी (1966) के अनुसार ''प्रदूषण जल, वायु या भूमि के भौतिक रासायनिक या जैविक गुणों में होने वाली कोई भी अवांछनीय परिवर्तन हो, जिससे मनुष्य, अन्य जीवों, औद्योगिक क्रियाओं या सांस्कृतिक तत्व तथा प्राकृतिक संसाधनों को कोई हानि हो या होने की संभावना हो, प्रदूषण में वृद्धि का कारण मनुष्य द्वारा वस्तुओं के प्रयोग करने के बाद त्याग देने की प्रकृति और मनुष्य की बढ़ती जनसंख्या के कारण आवश्यकताओं में वृद्धि हुई है।'' अर्थात् प्रकृति के अवयवों में कोई भी विजातीय पदार्थ का मिलना जो जीव सम्पदा को क्षति पहुंचाऐं, पर्यावरण प्रदूषण कहलाता है।

सामान्यतः किसी अवांछित पदार्थ के पर्यावरण में प्रवेश करने से पर्यावरण का सन्तुलन बिगड़ जाता है। इस असन्तुलित अवस्था को पर्यावरण प्रदूषण करते है। अतः पर्यावरण प्रदूषण पर्यावरण की भौतिक रासायनिक एवं जैविक विशेषताओं में वह अवांछित बदलाव है जो पर्यावरण व संबंधित जीवों और सम्पत्ति पर हानिकारक प्रभाव डालता है। यू.एस.ए. प्रेसिडेन्स साहस एडर्वजरी कमेटी में वर्णन किया गया है कि पर्यावरण प्रदूषण हमारे चारों और फैल रहा है। यह प्रदूषण मानव अपनी आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष तरीके से लाभ कमाने के लिऐ पर्यावरण में असन्तुलन पैदा कर रहा है। औद्योगिक जल प्रदूषण, सतही जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, परिवहन के साधनों से प्रदूषण, औद्योगिक मशीनों से प्रदूषण इन सभी प्रदूषणों से शहर काफी प्रभावित हो रहा है।

सामान्य तौर पर प्रकृति में अनेक प्रकार के प्रदूषण पाये जाते है, लेकिन भूमि उपयोग में परिवर्तन से निम्न प्रदूषणों का उद्‌भव होता है –

वायु प्रदूषण

वायु जैवमण्डल में हर प्रकार के जीवन के लिए आवश्यक तत्व है। मानव भोजन के बिना कुछ दिन तथा पानी के बिना कुछ घण्टों तक जीवित रह सकता है, लेकिन वायु के बिना एक पल भी नहीं जी सकता। सामान्यतः मनुष्य एक दिन में 22,000 बार सांस लेता है और इस प्रक्रिया में मनुष्य एक दिन में लगभग 16 किलोग्राम वायु का सेवन करता है। प्रतिदिन भोजन और अन्य पदार्थ ग्रहण करने की मात्रा में वायु का 80 प्रतिशत होता है। शुद्ध वायु हमें हमारे वायुमण्डल से मिलती हैं। वायु तथा वायुमण्डल विभिन्न गैसों का योग होता हैं।

वायुमण्डल में पायी जाने वाली कुछ गैसे भारी होती है और कुछ गैसें हल्की होती है। हल्की गैसें वायुमण्डल में अधिक ऊँचाई पर पाई जाती है, जबकि भारी गैसें वायुमण्डल में कम ऊँचाई अर्थात् धरातल के निकट पायी जाती है।

श्वास लेते समय हम मुख्यतः ऑक्सीजन का प्रयोग करते हैं। मानव और प्रकृति दोनों के द्वारा वायु की संरचना में विकार होने के कारण वायु प्रदूषण होता है। सामान्य शब्दों में वायु में हानिकारक ठोस, तरल तथा गैस पदार्थो के प्रवेश से वायु का प्रदूषण होता हैं। वायु प्रदूषण राजनीतिक सीमाओं तक ही सीमित नहीं रहता, यह एक विश्वव्यापी समस्या है।[3]

वायु प्रदूषण के प्रभाव

वास्तव में वायु प्रदूषण भूमि उपयोग प्रारूप में वर्तमान युग की औद्योगिक एवं तकनीकी सभ्यता की एक ऐसी देन है जो केवल पारिस्थितिकी तंत्र को असन्तुलित बनाकर विभिन्न प्रकार के हानिकारक प्रभाव उत्पन्न कर रहा है। भूमि उपयोग प्रारूप से वायु प्रदूषण के द्वारा होने वाले प्रमुख प्रभाव निम्नानुसार हैं –

- **मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव** : मनुष्य प्रतिदिन औसत 8000 लीटर वायु अन्दर बाहर करता हैं। प्रदूषण के सम्मिश्रण से अनेक प्रकार के भयंकर रोग पैदा हो जाते है। नगरीय समूह में बढ़ते औद्योगीकरण के कारण वायु प्रदूषण की समस्या गंभीर होती जा रही हैं, जिसके परिणामस्वरूप नगरीय समूह में श्वास रोग, निमोनिया, फैफड़े के कैंसर, गले में दर्द आदि प्रकार की बीमारियां बढ़ती जा रही हैं। साथ ही वाहनों के धुऐं के कण शरीर में पहुंच कर यकृत, आहार नली तथा मस्तिष्क को भी प्रभावित करते हैं।
- **वनस्पति पर प्रभाव** : उद्योगों की अधिकता के कारण धुंऐं की समस्या गंभीर है जिसके परिणामस्वरूप आस–पास के क्षेत्र में वनस्पतियों को सूर्य का प्रकाश पूरा न मिलने के कारण प्रकाश संश्लेषण की क्रिया नहीं हो पाती है और वनस्पति धुंऐ से प्रभावित हो जाती है।
- **जीव–जन्तुओं पर प्रभाव** : मानव के समान पशुओं एवं अन्य जीवों पर भी वायु प्रदूषण का हानिकारक प्रभाव पड़ता है। पशुओं के द्वारा खाये जाने वाले चारे से विषाक्त पदार्थ उनके शरीर में पहुंच कर हड्डियों एवं दांतों को हानि पहुंचाती है।
- **मौसम पर प्रभाव** : वायुमण्डल का प्रभाव मौसम तथा बादलों, तापमान, वर्षा आदि पर भी पड़ता है। नगरों में तीव्र कोहरा होना वायु प्रदूषण का ही प्रभाव है। इस्पात मिलों के धुंऐ से ''हिमकन्दक'' नामक कण से वर्षा की संभावना होती है।[4]

जल प्रदूषण

जल प्रदूषण से तात्पर्य जल के भौतिक, रासायनिक एवं पौष्टिक गुणों में इस प्रकार परिवर्तन होना है जिसके परिणामस्वरूप जल हानिकारक प्रभाव उत्पन्न करता है। अर्थात् जल में अवांछनीय वस्तु मिल जाने से जल के भौतिक, रासायनिक व जैविक गुणों में परिवर्तन आ जाता है, जिसमें जल की गुणवत्ता गिर जाती है और जल प्रदूषित हो जाता हैं जिसका प्रभाव वनस्पति व जीव जगत पर पड़ता है। गिलपिन के अनुसार जल की रासायनिक, भौतिक और जैविक विशिष्टताओं में मुख्यतः मानवीय क्रियाओं में अवनति आ जाना ही जल प्रदूषण हैं।[5]

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, ''जब जल में भौतिक अथवा मानवीय कारणों से कोई बाह्य सामग्री मिलकर जल के स्वाभाविक या नैसर्गिक गुण में परिवर्तन लाती है, जिसका कुप्रभाव जीवों के स्वास्थ्य पर प्रकट होता है उस जल को प्रदूषित जल कहा जाता है। आवश्यकता से अधिक खनिज लवण कार्बनिक तथा अकार्बनिक पदार्थ तथा औद्योगिक संयंत्रों से निकले रासायनिक पदार्थ, अपशिष्ट पदार्थ तथा मृत जन्तु नदियों, झीलों, सागरों तथा अन्य जलीय क्षेत्रों में विसर्जित किये जाने से ये पदार्थ जल के प्राकृतिक व वास्तविक रूप को नष्ट कर प्रदूषित कर देते है, जल प्रदूषण कहलाता है।''

जल प्रदूषण के स्त्रोत

- सीवरेज व अन्य कार्बनिक पदार्थों से जल प्रदूषण
- औद्योगिक अपशिष्ट जिसमें विभिन्न कार्बनिक पदार्थ शामिल है, जैसे नमक और रासायनिक पदार्थों के कारण प्रदूषण
- कृषि अदूषण
- जनसंख्या वृद्धि, गांवों का कस्बों में तथा नगरों का महानगरों में परिवर्तित होना, वाहित जल की गम्भीर समस्या जल प्रदूषण का एक मुख्य स्त्रोत हैं।पशिष्टों से जल प्र

जल प्रदूषण के प्रभाव

- प्रदूषित जल का सेवन करने से मानव को अनेक प्रकार की बीमारियां जैसे हैजा, पीलिया, तपेदिक व टाइफाइड आदि हो जाती है, जो कि मानव शरीर के लिए बहुत हानिकारक है।
- औद्योगिक अपशिष्ट जल से उत्पन्न सब्जियों के माध्यम से मानव शरीर में प्रदूषक पहुंच जाते है तथा शरीर को क्षति होती है। क्योंकि इनमें विभिन्न प्रकार के रासायनिक पदार्थ मिले होते है। ये रासायनिक पदार्थ मिट्टी को भी प्रदूषित करते है।
- प्रदूषित जल की सिंचाई से पेड़-पौधों तथा वनस्पति रोग ग्रस्त हो जाते है, जिसके परिणामस्वरूप उनकी वृद्धि व विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
- प्रदूषित जल में ऑक्सीजन की कमी तथा विषैले तत्वों की अधिकता के कारण जल में मछलियाँ एवं अन्य जीव-जन्तु बीमारियों से ग्रसित होकर मरने लगते है।
- भूमि उपयोग में परिवर्तन से बढ़ते हुऐ नगरीकरण तथा औद्योगीकरण के कारण पर्यावरणीय समस्या बढ़ रही है, जिसके परिणामस्वरूप जल प्रदूषण की समस्या भी दिन प्रतिदिन बढ़ रही है।

ध्वनि प्रदूषण

ध्वनि पैदा करना मानव तथा जीवधारियों का स्वाभाविक गुण हैं। ध्वनि या आवाज द्वारा ही एक-दूसरे के विचारों का आदान-प्रदान होता है, किन्तु अनावश्यक, असुविधाजनक तथा अनुपयोगी आवाज को ही ध्वनि प्रदूषण कहा जाता हैं। ध्वनि जब अप्रिय व अवांछनीय होने लगती है और कानों पर अतिरिक्त दबाव डालती है, तब वही ध्वनि शोर का रूप धारण कर लेती है और मस्तिष्क पर विपरीत प्रभाव डालती है। मैक्सवैल ने ध्वनि को परिभाषित करते हुऐ कहा है कि, ''शोर वह ध्वनि है जो अवांछनीय है। यह वायुमण्डलीय प्रदूषण का एक प्रमुख प्रकार है''। डॉ. डी.बी. राय के अनुसार, ''अनिच्छापूर्ण ध्वनि जो मानवीय सुविधा, स्वास्थ्य तथा गतिशीलता में हस्तक्षेप करती है अथवा प्रभावित करती है, ध्वनि प्रदूषण कहलाता है''।[6] साइमंस के अनुसार, ''बिना मूल्य की अथवा अनुपयोगी ध्वनि, ध्वनि प्रदूषण है। अर्थात् किसी भी प्रकार की ध्वनि जो कि पाने वाले के लिए इच्छापूर्ति नहीं, ध्वनि प्रदूषण है''। मानव सामान्यतया अपने कानों से ध्वनि को एक निश्चित सीमा तक सुन सकता है, किन्तु जब उसके कान सुनने के लिए तैयार न हो वहीं ध्वनि प्रदूषण है।[7]

ध्वनि प्रदूषण के प्रमुख स्त्रोत

आधुनिक वैज्ञानिक तकनीक व औद्योगीक युग में निरन्तर बढ़ते हुऐ उद्योग-धन्धों, कल कारखानों, मोटरों, रेलगाड़ियों आदि वाहनों, स्वचालित वाहनों, जेट व हवाई जहाजों की संख्या ने ध्वनि या आवाज को अप्रिय शोर बना दिया है। तेज आवाज का संगीत, धार्मिक व सामाजिक समारोह, जुलूस, जन सभाऐं आदि अनेक तत्व ध्वनि प्रदूषण के कारण बनते है, जो वर्तमान भूमि उपयोग प्रारूप की देन है।

ध्वनि प्रदूषण के प्रभाव

वर्तमान में विभिन्न स्त्रोतों के द्वारा ध्वनि प्रदूषण में निरन्तर वृद्धि हो रही है। ध्वनि द्वारा मानव का जनजीवन प्रभावित

हो रहा है, क्योंकि कानों के माध्यम से उसे तीव्र शोर की पीड़ा झेलनी पड़ती है।

ध्वनि प्रदूषण से मानव की संवेदनाओं पर निम्न प्रभाव पड़ते है –

- मानव की संवेदनाओं व सोने पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।
- अधिक ध्वनि प्रदूषण से मानसिक तनाव तथा सिरदर्द बढ़ने लगता है।
- शोरगुल से मानसिक तनाव तथा तनाव से रक्तचाप बढ़ जाता है, जिससे हृदय रोग की आशंका बढ़ जाती है।

मृदा प्रदूषण

प्राकृतिक या मानवजन्य स्त्रोतों से मिट्टी की गुणवत्ता में ह्रास होने को मृदा प्रदूषण कहते हैं। तीव्र गति से होने वाला मृदा–अपरदन, मिट्टी में रहने वाले सूक्ष्म जीवों की कमी आवश्यकता से अधिक नमी या शुष्कता का होना, ह्यूमस की कमी मिट्टी में प्रदूषकों का मिश्रण आदि मृदा प्रदूषण के प्रमुख कारण हैं। भूमि उपयोग में व्यापक परिवर्तन तथा निर्वनीकरण, रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों तथा कृत्रिम रसायनों का अत्यधिक प्रयोग, नगरीय तथा औद्योगिक क्षेत्रों में अपशिष्ट तथा विषैले जल का सिंचाई के रूप में प्रयोग, जल भराव, अपशिष्ट ठोस पदार्थों का जमाव आदि मृदा प्रदूषण के मानव जनित कारण हैं। अम्ल वर्षा वाले क्षेत्रों की मिट्टी में अम्लता की मात्रा बढ़ जाती है।

भूमि उपयोग प्रारूप में तीव्र वृद्धि से परिवर्तन तथा कृषि के व्यवसायीकरण के फलस्वरूप मिट्टी से अधिक फसलों को उगाने तथा अधिकाधिक उत्पादन प्राप्त करने के प्रयास किये जाने लगे है। उत्पादन क्षमता में वृद्धि के लिए प्रयुक्त रासायनिक उर्वरकों की मात्रा निरन्तर बढ़ती जा रही है। अनेक प्रकार के कीटनाशक तथा शाकनाशक रसायनों का प्रयोग दिनोदिन बढ़ता जा रहा हैं। ये रसायन विषैले होते है, जो जड़ों के माध्यम से पौधों में, पौधों से फूल–पत्तों और फलों में तथा अंततः उनका उपभोग करने वाले मनुष्यों तथा पशुओं के शरीर में पहुंचते हैं और अनेक प्रकार के रोग तथा बीमारियां उत्पन्न करते हैं। इसीलिए शाकनाशक रसायनों को रेंगती मृत्यु भी कहा जाता है। भारत में भी हरित क्रांति के साथ शाकनाशक तथा कीटनाशक रसायनों के प्रयोग की मात्रा निरन्तर बढ़ती जा रही हैं। इन रसायनों का प्रयोग अवांछित पौधों, हानिकारक कीटों तथा फसल को रोगों से बचाने के लिए किया जा सकता है, जिनका अधिक मात्रा में प्रयोग मृदा प्रदूषण में वृद्धि करता है।

मृदा प्रदूषण के प्रभाव

- मृदा प्रदूषण से मिट्टी की गुणवत्ता कम हो जाने से उसकी उर्वरता घट जाती है, जिससे मृदा कृषि के लिए अनुपयुक्त हो जाती है।
- जैव नाशी रसायनों के प्रयोग से रासायनिक प्रदूषण मृदा में पहुंचते है और आहार श्रृंखला के माध्यम से मनुष्यों तथा पशुओं के शरीर में पहुंचकर रोग उत्पन्न करते है।

भूमि उपयोग में परिवर्तन से मृदा प्रदूषण तीव्र गति से हो रहा है, जिसका कारण क्षेत्र में हो रहा नगरीयकरण एवं औद्योगीकरण विकास है। साथ ही बढ़ती जनसंख्या भी क्षेत्र में मृदा प्रदूषण का कारण हैं। इसके अलावा भूमि उपयोग में परिवर्तन से विभिन्न प्रकार की औद्योगीक इकाईयां बढ़ी है जिनके द्वारा बड़ी मात्रा में विषैले पदार्थ निस्तारित किये जा रहे है, जो मृदा को प्रदूषित कर रहे है।

नगरीय भूमि उपयोग एवं पर्यावरण प्रदूषण सम्बन्ध

नगरीय भूमि उपयोग में बदलाव के कारण शहरी क्षेत्रों का विस्तार, ग्रामीण क्षेत्रों तक बढ़ा है, जिसके कारण पर्यावरण प्रदूषण की समस्या उत्पन्न होने लगी है। भूमि उपयोग में परिवर्तन के कारण, ग्रामीण क्षेत्रों को शहरी क्षेत्र के रूप में विकसित करने हेतु ग्रामीण क्षेत्रों में तीव्र गति से औद्योगीकरण गतिविधियों को संचालित किया जा रहा है, जिसके कारण वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, जल प्रदूषण जैसी पर्यावरणीय समस्याऐं उत्पन्न होने लगी है। बढ़ती जनसंख्या ने नगरीय भूमि उपयोग को बदलने को विवश कर दिया है जिसके कारण कृषि क्षेत्र पर दबाव बढ़ने के कारण कृषि उत्पादन पर भी इसका नकारात्मक प्रभाव देखा गया है। बढ़ती जनसंख्या ने जल स्तर पर भी नकारात्मक प्रभाव डाला है। बढ़ते नगरीकरण एवं औद्योगीकरण के कारण ग्रामीण भूमि उपयोग में परिवर्तन हुआ तथा कृषि जोतों का आकार भी छोटा हो गया, जिससे कृषि उत्पादन में कमी आयी है तथा प्राकृतिक संसाधनों का अभाव होता जा रहा है।

भूमि उपयोग में परिवर्तन से वनों का विनाश हुआ है, जिससे मानसून पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है और जल स्तर भी लगातार घटता जा रहा है। बदलते भूमि उपयोग से बढ़ते औद्योगीकरण एवं नगरीयकरण के कारण बढ़ते खनन एवं कच्चे माल की आपूर्ति तथा यातायात मार्गों के विकास आदि ने पारिस्थितिकी तंत्र पर प्रभाव डाला है। नगरीय क्षेत्र के अन्तर्गत जनसंख्या घनत्व अधिक पाया जाता है और इसके कारण नगरीय क्षेत्र का वातावरण साफ नहीं रह पाता। बढ़ती जनसंख्या ने नगरीय भूमि उपयोग को बदलने

पर मजबूर किया जिससे नगरीय क्षेत्रों का विस्तार हुआ और इसके कारण इन क्षेत्रों में यातायात के साधनों की अधिकता के कारण पर्यावरण प्रदूषण भी बढ़ा है। औद्योगिक इकाईयों की गतिविधियों से इन क्षेत्रों में वायु प्रदूषण का स्तर भी लगातार तेजी से बढ़ रहा है।

सुझाव

- जनसंख्या वृद्धि, नगरीयकरण एवं औद्योगीकरण के कारण घटते कृषि भूमि का संरक्षण आवश्यक है। इसके लिए बंजर भूमि को कृषि योग्य बनाकर फसल एवं सिंचाई व्यवस्था उस क्षेत्र की प्राकृतिक दशाओं के अनुरूप कृषि की जानी चाहिए, जिससे फसल उत्पादन लागत के अनुसार लाभप्रद हो सके।
- घटते जोतों के आकार के लिए कृषि भूमि की चकबन्दी करना जरूरी है। कृषि भूमि का औसत आकार छोटा होने के कारण भूमि की उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, अतः छोटे-छोटे भागों में विभाजित कृषि भूमि का एकीकरण करने की महत्ती आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए नीति बनाई जानी चाहिए, जिससे भूमि एकीकरण संभव हो सके।
- घटते जल स्तर के कारण सिंचित भूमि क्षेत्र में कमी आ रही है। अतः जल की कमी को ध्यान में रखते हुए शुष्क फसलों को अधिक महत्व देना चाहिए, जिससे फसली क्षेत्र एवं उत्पादन की मात्रा बढ़ सके। इसके लिए कम सिंचाई की फसलों को अधिक से अधिक उत्पादित कर भूमि उपयोग प्रणाली को विकसित कर सकते है।
- वास्तविक वन क्षेत्र घटने के कारण कृषि भूमि उपयोग पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहे है, अतः सरकार को वन सुरक्षा के साथ-साथ इनके विस्तार पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। कई कारणों से वनों का ह्रास हो रहा है, जिसे अनावश्यक वनों का कटाव, वनाग्नि आदि प्रमुख है। अतः मानव द्वारा ह्रास एवं वनाग्नि को रोकने के कारगर उपाय तत्काल किये जाने चाहिए।
- नगरीय विकास हेतु नई बस्तियों एवं आवासों का विकास नगर नियोजन कार्यालय, नगर पालिकाओं आदि द्वारा स्वीकृत मानचित्र व प्रारूप के अनुसार किया जाना चाहिए।
- वायुमण्डल को दूषित होने से बचाने के लिए उद्योगों को आबादी रहित क्षेत्रों में हवा के विपरीत दिशा में स्थापित किया जाये एवं यातायात के साधनों में प्रदूषण रहित प्रबन्ध किये जाये।
- पारिस्थितिकी सन्तुलन बनाये रखने व प्रदूषण जैसी समस्याओं से निजात पाने के लिए सड़कों के दोनों ओर पेड़-पौधे लगाये जाने चाहिए।
- बढ़ते औद्योगीकरण के कारण कच्ची बस्तियों का विकास हो रहा है, जिससे अनेक समस्याओं ने जन्म लिया है। अतः इनका नियोजित विकास किया जाना चाहिए तथा कच्ची बस्तियों में चल पुस्तकालय की शुरूआत की जानी चाहिए, जिससे यहां रहने वाले लोगों को शिक्षा के लिए जागरूक किया जा सकेगा। साथ ही बस्तियों में पढ़ाई के प्रति रूचि रखने वालों को पुस्तकें उपलबध हो सकेंगी।
- प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड एवं अन्य राजकीय विभागों द्वारा जारी विभिन्न नियम-अधिनियमों की पालना सुनिश्चित की जानी चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *जोशी, रतन (2003) – ''नगरीय भूगोल'', राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृ. 189-190.*
2. *उपर्युक्त।*
3. *Mishra, P.L. (1997) – "The Impact of Green House Effect on Environment and Its Consequences in Changing Climatic SCE nario Published in P. Nqq (ed.) book" Geography & Environment, Concept Publication, Vol.-I, p. 51.*
4. *कुमार, अमित (2006) – ''पर्यावरण अध्ययन'', विश्वभारती पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ. 177.*
5. *Gilpin, Alam (1978) – "Dictionary of Environmental Terms", London, p. 171.*
6. *Roy, B. (1975) – "Noise Pollution", Science Reporter, February 1975, p. 263-264.*
7. *Simmons, I.G. (1947) – "The Ecology of Natural Resource", London, p. 311.*

पत्र-पत्रिकाएँ

1. *योजना।*
2. *करूक्षेत्र।*
3. *राजस्थान पत्रिका।*

राजस्थान राज्य अभिलेखागार में संग्रहित बहुमूल्य अभिलेख सम्पदा : 'कागद बहियाँ'–एक अवलोकन

हरिमोहन मीना
शोधार्थी, महाराजा गंगा सिंह विश्वविद्यालय, बीकानेर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

पिछले कुछ दशकों से विश्व के इतिहास लेखन को लेकर नवीन विद्याओं का प्रचलन प्रारम्भ हुआ है। जिनमे क्षेत्रीय इतिहास का स्वतंत्र लेखन महत्वपूर्ण है। भारत के इतिहास के दृष्टिकोण से यहां की स्थानीय रियासतों का इतिहास बहुत समृद्ध रहा है परन्तु उनकी स्वतंत्र विवेचना करना अभी भी शेष है। इसी अनुक्रम में बीकानेर राज्य के इतिहास को नवीन परिभाषा देने वाले यहां के पुरादस्तावेजों की महत्ती भूमिका है और इस श्रृंखला में कागद बहियों ने अपनी अनूठी पहचान स्थापित की है। यह आलेख कागद बहियों में संकलित विविध पक्षों से सम्बद्ध सूचनाओं पर विशेष प्रकाश डालता है ताकि बीकानेर राज्य के इतिहास लेखन हेतु कागद बहियों की उपयोगिता को सार्थकता प्रदान की जा सके।

संकेताक्षर : *कागद बही, बीकानेर, चीरा, कतार, जगात, धाड़वी, गुनैहगारी ।*

वर्तमान राजस्थान के निर्माण से पूर्व राजपूताना 19 रियासतें एवं 3 ठिकानों में विभाजित था एवम सभी रियासतों का स्वतंत्र शासन संचालन था। सभी रियासतों में संपादित होने वाले प्रशासनिक कार्यों का लेखा–जोखा रखने का तरीका भी भिन्न प्रकार था। परन्तु राजकार्य में प्रयुक्त होने वाले अभिलेखों को संग्रहित करके निजि संग्रह या अभिलेखागार के रूप में सुरक्षित रखा जाता था। परन्तु, राजस्थान बनने पर इस अमूल्य अभिलेख संपदा की ओर सरकार का ध्यान गया और सन् 1900 ई. से पूर्व के सभी रियासतों के अभिलेखों को संग्रहित कर राजस्थान राज्य अभिलेखागार को मूर्त रूप दिया गया। इसकी स्थापना 1955 ई. में की गई एवं इसका मुख्यालय जयपुर में बनाया गया। सन् 1960 में इस विभाग को जयपुर से बीकानेर के वर्तमान भवन में स्थानान्तरित कर दिया गया। यहाँ संग्रहित विशाल अभिलेख श्रृंखलाओं का सन् 1963 में केन्द्रीयकरण कर दिया गया ताकि इतिहासकारों, विद्वानों एवं शोधार्थियों को उनके शोधकार्य हेतु वांछित अभिलेख सामग्री एक ही स्थान पर उपलब्ध करवाई जा सके। अभिलेखागार की मुख्यालय के अतिरिक्त 07 अन्य शाखाएँ जयपुर, जोधपुर, अलवर, भरतपुर, कोटा, उदयपुर, एवं अजमेर में स्थित हैं। जिनमें रियासत के सम्बद्ध 20 वीं सदी का रिकार्ड संग्रहित है जिनमें मुख्यतः अंग्रेजी फाईल्स व फारसी दस्तावेज उपलब्ध है।

राजस्थान राज्य अभिलेखागार अभिलेखों की अपार एवं अमूल्य राष्ट्रीय सम्पदा को संजोये हुये हैं इसमें भूतपूर्व राजस्थान की सभी रियासतों तथा राजस्थान सरकार के राजकीय कार्यों से संबधित 25 वर्ष पुराने सभी दस्तावेजों को पुरालेखीय सम्पत्ति मानते हुये अभिलेखागार में संग्रहित कर लिया गया। ये अभिलेख ऐतिहासिक, प्रशासनिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है जो कि इतिहास विषय के विद्वतजनों एवं जनता के लिये बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकतें हैं। आधुनिक पत्रावलियों के साथ–साथ यहाँ मुगलकालीन अभिलेख यथा फरमान, निशान, मन्सूर, यहाँ संरक्षित है जबकि राजस्थानी स्थानीय दस्तावेजों में तत्कालीन पट्टा, परवाना, रुक्का, बहियात, अर्जिया, खरीता, पानडी, तोजी, तोजी दो वरकी, चौपनियाँ, पचाँग आदि भी उपलब्ध है इनमें फारसी, उर्दू व अंग्रेजी भाषा सहित देशज भाषा के विभिन्न दस्तावेज ढूँढाड़ी, मारवाड़ी मेवाड़ी एवं हाडौती भाषा में उपलब्ध हैं।

अभिलेखागार का प्रमुख कार्य राज्य के स्थाई महत्व के अभिलेखों को सुरक्षा प्रदान करना तथा आवश्यकता पडने पर राज्य सरकार के विभिन्न विभागों न्यायालयों, निजी संस्थाओं, शोध अध्येताओं एवं नागरिकों को उपलब्ध करवाना हैं। ऐसे अभिलेख जो ऐतिहासिक महत्व के हो तथा शोध के लिये अत्यंत उपयोगी हो एवं वे अभिलेख जो सरकार के विभिन्न विभागों में सृजित किये जाते है उनके रख रखाव की दृष्टि से वैज्ञानिक पद्धति द्वारा संरक्षण प्रदान करना, आवश्यकता पडने पर ऐसे अभिलेखों से विभिन्न विभागों को अवगत करवाना तथा संबधित कर्मचारियों एवं अधिकारियों को उसके बारें में प्रशिक्षित करना है। विभाग के अन्य महत्वपूर्ण कार्यो में प्रदर्शनियों एवं सेमिनारों के आयोजन द्वारा जनसाधारण में अभिलेखीय जागरूकता उत्पन्न करना हैं।

जैसा कि विदित है अभिलेखागार पुरालेखीय सम्पदा का अथाह भण्डार है जहाँ राजपूताना की समस्त रियासतों का पुरासंग्रह संग्रहित हैं। उक्त रियासतों का इतिहास लेखन करने के लिये अनेक शोधार्थी देश के कोने कोने से ही नही अपितु विदेशों से भी यहाँ आतें हैं। अगर बीकानेर राज्य के इतिहास लेखन की चर्चा की जाए तो यहाँ पुरालेखीय दस्तावेजों की विभिन्न श्रृखंलाएँ उपलब्ध हैं। जिनमे कागद बहियाँ, सावा बहियाँ, हासल, हबूब, कमठाणा, परवाना, जगात, जमाखर्च बहियाँ तथा अनेक फुटकर बहियाँ मुख्य हैं। बीकानेर राज्य के 18 वीं एवं 19 वीं सदी के जनजीवन पर ही नहीं बल्कि विविध पहलुओं पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालने वाली कागद बहियाँ अपना अलग ही दृष्टिकोण रखती हैं।

कागद बहियाँ

रियासत कालीन बीकानेर राज्य से संबधित अभिलेखिय सामग्री में कागद बहियाँ अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। कागद बहियाँ रियासतकालीन बीकानेर के वे सरकारी दस्तावेज है जिनमें तत्कालीन राजकीय आदेशों का संकलन है। ये आदेश रूपी सूचनाएँ राजा पर अधीनस्थ अधिकारी तंत्र द्वारा किसी राजकीय संस्था या राजकीय कर्मचारियों को प्रेषित किए हुए आदेशों की नकलें है। ये सूचनाएँ तत्कालीन शासन व्यवस्था एवं समाज के मध्य सम्बन्धों को स्पष्ट करते हैं। राजस्थान राज्य अभिलेखागार में संग्रहित यह बहियाँ रामपुरिया सेक्शन मे रखी हुई हैं। इस बही श्रृंखला में कुल 53 कागद बहियाँ हैं। जिनमें प्रथम बही वि.सं. 1811 की हैं वहीं अंतिम कागद बही वि. सं. 1900 की हैं। अतः कागद बही श्रृंखला 18 वीं सदी के उतरार्द्ध एवं 19 वीं सदी के पूर्वार्द्ध के कुल 89 वर्षो का प्रतिनिधित्व करती है। इन कागद बहियों की भाषा राजस्थानी एवं लिपि मुड़िया हैं। सामान्यतः प्रत्येक बही एक वर्ष का लेखा–जोखा प्रस्तुत करती है परन्तु इस श्रृंखला में कुछ बहियाँ ऐसी भी हैं जो एक वर्ष से अधिक के कालखण्ड की अवधि का वर्णन प्रस्तुत करती है इसी तरह एक वर्ष के कालखण्ड की दो बहियाँ भी प्राप्त होती है जो कि बहुत कम हैं।[1]

कागद बहियाँ बीकानेर राज्य की तत्कालीन भूराजस्व व्यवस्था से संबधित सूचनाओं की जानकारी देने वाली महत्वपूर्ण स्त्रोत हैं। जिसमें भू–मूल्यांकन, भू–मालिक व काश्तकार के मध्य संबंध, राजस्व वसूली की व्यवस्था (विशेषकर खालसा भू–क्षेत्र में) भूमि के वर्गीकरण एवं प्रशासन के बारे में जानकारी देती हैं।

कागद बहियों में उल्लेखित राजस्व से जुड़ी सूचनाओं का गहन अधययन करने पर पता चलता है कि मुगल शासनकाल के दौरान बीकानेर राज्य में भी मुगल राजस्व व्यवस्था का ही प्रचलन था अर्थात भूमि की गुणवत्ता एवं फसलों की किस्म के आधार पर ही राजस्व का निर्धारण किया जाता था। भूमि का वितरण भी विभिन्न जातियों व उपजातियो में किया गया था। सामान्यतः किसान का अपनी कृषि भूमि पर आनुवांशिक अधिकार माना जाता था। परन्तु कुछ विषम परिस्थितियों में राजा या जागीरदार द्वारा उक्त भूमि का अन्य व्यक्ति को स्थानान्तरण कर दिया जाता था। कागद बहियों में राज्य की भूमि के वितरण की लम्बी फेहरिस्त मिलती है जिसमें विभिन्न श्रेणियों का वर्गीकरण देखने को मिलता है। जिनमें मुख्यतः पट्टा भूमि, वंशानुगत खेतिहर भूमि, सासण (दानस्वरूप वितरित भूमि) भूमि डोहली (धार्मिक उद्देश्य से वितरित) भूमि, करमुक्त भूमि तथा कबज भूमि आदि थी।

कागद बहियों में उल्लेखित सन्दर्भ यह इंगित करते हैं कि तत्कालीन राज्य की सम्पूर्ण भूमि प्रशासनिक रूप से चीरा व परगना ईकाइयों के अन्तर्गत प्रशासित थी। इस कालखण्ड के दौरान मगरा, पूगल, गोसांईसर, खेदड़ा, खारी–पट्टी, शेखसर, राजाहद, बीदाहद, सिहाकोटि, एवं जसरासर आदि मुख्य चीरे थें। जबकि महाजन को 19 वीं सदी के दौरान चीरे का दर्जा प्राप्त हुआ। इसी तरह परगनों के अन्तर्गत 18 वीं सदी में पूनीयां, भटनेर, फलौदी एवं बेणीवाल मुख्य थे। 19 वीं सदी के दौरान कुछ बदलावों के साथ सूरतगढ़, सरदारशहर, टीबी, भादरा, चूरू, अनूपगढ़, रिणी, रतनगढ़, हनुमानगढ़, नोहर, सरदारगढ़, राजगढ़, तथा चूरू इत्यादि को भी परगनों का दर्जा प्रदान कर दिया गया।

इसी तरह कागद बहियों में संकलित सूचनाओं का दायरा यंही तक सीमित नहीं है। यह बहियाँ भूमि की व्यवस्था एवं राजस्व व्यवस्था के अतिरिक्त तत्कालीन राजनीतिक,

सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक पहलुओं की जानकारी का भी अद्वितीय स्त्रोत हैं।

बीकानेर राज्य के आर्थिक संसाधनों में मेट की खान, पत्थर की खान, जिप्सम एवं चूना की खानों का विस्तार था। इन सन्दर्भों की पुष्टि कागद बहियों में उल्लेखित सूचनाओं से होती हैं।[2] उदाहरणार्थ कागद बही नं. 31 वि.सं. 1882 की एक सूचना से कोलायत क्षेत्र की एक मेट की खान से दो मण मेट आवसजी महाराज को दिलाने का वर्णन मिलता हैं।[3] इसी तरह कागद बही न. 33 वि.सं. 1884 के एक सन्दर्भ से पता चलता है कि कोलायत में कपिल मुनि के मंदिर के समीप माता कुलपुरि व गणेशजी का नया मंदिर बनवाने हेतु मगरा क्षेत्र से 15 चूने की गाड़ियाँ मंगवाने का आदेश प्रेषित किया गया।[4] उक्त सूचनाओं से यह पुष्टि होती है कि कोलायत व मगरा क्षेत्र में क्रमशः मेट व चूने के भण्डार मौजूद थे जहाँ से राज्य को आवश्यकतानुसार पूर्ति की जाती थी।[5]

इन वस्तुओं के लेन-देन पर राज्य द्वारा वसूली जाने वाली जगात की जानकारी भी कागद बहियों से मिलती हैं। उदाहरणार्थ :- राज्य द्वारा अगणेऊ के हुवलदार को आदेश दिया गया था कि अगणेऊ गांव से होकर गुजरने वाले मेट से लदे प्रत्येक ऊँट पर तीन आना एक गाड़ी पर एक रूपिया दस आना, एवं एक पोठिया पर 1 रूपिया दो आना, जगात (कर) के रूप में वसूल किये जावे। इसके अतिरिक्त राज्य से होकर गुजरने वाले व्यापारिक मार्गों की महत्वपूर्ण सूचनाएँ भी यह बहियाँ देती है।[6] दिल्ली से होकर दक्षिण की ओर जाने का एक सुरक्षित मार्ग बीकानेर से होकर गुजरता था। सिंध, मुलतान व थट्टा की ओर जाने वाले सुरक्षित व्यापारिक मार्ग बीकानेर राज्य से होकर ही गुजरते थे।[7] कागद बही नं 31 वि.सं. 1882 के एक तथ्य से बीकानेर से सिंध की ओर ऊँटों की एक कतार के जाने का पता चलता है जिसमें इस कतार के बीकानेर राज्य के पूगल, सतासर, बरसलपुर होतें हुये सिंध को जाने की जानकारी मिलती हैं। इसी तरह राज्य से होकर गुजरने वाले बाह्य व्यापारिक मार्गों के अलावा राज्य के आतंरिक मार्गों पर भी ये बहियाँ विस्तार से प्रकाश डालती हैं।[8]

आर्थिक पक्ष के अलावा पर्यावरण की सुरक्षा के प्रति प्रशासन की जागरूकता की जानकारी भी इन बहियों से प्राप्त होती है कागद बहियों में हरे पेड़ पौधों को नही काटने, पशु-पक्षियों की हिंसा न करने तथा पशुओं के चरने के लिये आगोर व ओरण भूमि की व्यवस्था करने का उल्लेख भी प्राप्त होता है। जैसा कि कागद बही नं 33 वि.सं. 1884 की एक सूचना से पता चलता है कि बीकानेर दरबार ने हरिणों को गोली से न मारने के लिये कुछ गांवों यथा साहणीवाल, बिहारीपुरा, ककणियां तथा वीरपुरां के राजपूतों, चौधरियों तथा जनता को यह सख्त आदेश भिजवाया साथ ही आदेश की अवमानना करने वालों को गुनैहगारी स्वरूप सख्त सजा देने अथवा आर्थिक जुर्माना वसूलने के लिये भी निर्देशित किया गया।[9] उक्त सूचना से तत्कालीन प्रशासन का वन्य सम्पदा के प्रति जागरूकता का पता चलता हैं।

बीकानेर राज्य 'चारागाह' के दृष्टिकोण से सदैव समृद्ध रहा हैं अकाल तथा सूखा जैसी परिस्थितियों में ही यहाँ के पशुओं को पंजाब, हरियाणा अथवा मालवा की तरफ रूख करना पडता था। अन्यथा समीपवर्ती राज्यों से भी पशु चरने के लिये यहाँ भेजे जातें थे । एक अन्य सूचना से ज्ञात होता हैं कि अंग्रेज अधिकारी पारसंस साहब की हाँसी व हिसार से 1000 ऊँटनियाँ चरने के लिये बीकानेर क्षेत्र में भेजी गई थी जिनके लिये राज्य ने अजीतपुर की रोही एवं ददरेवा की रोही नामक स्थान निश्चित किये। यह सूचना स्पष्ट करती है कि बीकानेर के उक्त क्षेत्र चरागाह की दृष्टि से समृद्ध थें। यहीं नही बीकानेर राज्य का अधिकांश क्षेत्र चारे का अथाह भण्डार था यहाँ के प्रत्येक क्षेत्र की समृद्धता की सूचना कागद बहियों से प्राप्त होती है। राज्य द्वारा अपनी जनता व राज्य से होकर गुजरने वाले व्यापारियों के लिये पीने के पानी की व्यवस्था करवाई जाती थी जिसके लिये अनेक तालाब, कुएं तथा तलाई आदि के खुदवाने का वर्णन मिलता हैं।[10]

कागद बहियाँ जहां राजनैतिक, आर्थिक तथा पर्यावरण से जुड़े पहलुओं पर प्रकाश डालती हैं वहीं दूसरी ओर सामाजिक पहलुओं की भी इनमें प्रचुरता देखने को मिलती है। राज्य के विभिन्न समुदायों की परम्पराओं, रीति-रिवाजों, रहन-सहन तथा जीवन शैली के अनेक पहलू इन बहियों में परिलक्षित होतें हैं। ये बहियाँ तत्कालीन समाज में होने वाले अपराधों की प्रवृति पर भी विशेष प्रकाश डालती हैं। दहेज, घरेलू हिंसा, व्यापारिक मार्गों में होने वाली डकैती, पशु-पक्षियों की हिंसा, चोरी, व्याभिचार आदि अपराधों की एक बडी श्रृंखला देखने को मिलती है दहेज में लड़कियाँ देने की परम्परा की जानकारी मिलती है। वहीं लड़कियों व औरतों के खरीद-फरोख्त की सूचनाएँ भी मिलती है। कागद बहियों में इस प्रकार के अपराधों से सम्बद्ध सैंकड़ो मामलें देखने को मिलते है। उक्त उद्धरणों से तत्कालीन समाज में व्याप्त अपराध व उसकी प्रवृतियों के साथ ही महिलाओं के प्रति समाज के दृष्टिकोण को भलीभाँति परखा जा सकता हैं।

कागद बही नं. 07 वि.सं. 1840 की फरोही से सबंधित मद में महिलाओं की खरीद करके आगे बेचने की जानकारी

मिलती है। इसी तरह वर्ष 1883 मे गांव लालमदेसर में व्यापारियों के दो ऊँट धाड़वियों द्वारा लूट लिये जाने की जानकारी मिलती है।[11] एक अन्य उद्धरण नागौर से बीकानेर की ओर आते समय रावणिये गांव में धाड़वियों द्वारा 02 ऊँटों के लूटने का विवरण मिलता है।[12] केवल चोरी, डकैती की सूचना ही नही बल्कि अपराधियों को पकड़ने व उन पर जुर्माना करने से संबंधित सूचनाएं भी इन बहियों में देखने को मिलती हैं।

अतएवः यह स्पष्टतयाः समझा जा सकता है कि बीकानेर राज्य की कागद बहियाँ राज्य के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, आदि अनेक पहलुओं से संबधित विभिन्न अभिलेखों की प्रचुरता में जानकारी उपलब्ध करवाती है इन बहियों की उपयोगिता इतनी अधिक है कि इनके अभाव में तत्कालीन बीकानेर राज्य का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास का निष्पक्ष लेखन करना सरल नहीं होगा। अतः बीकानेर राज्य की कागद बहियों का अपना अलग ऐतिहासिक दृष्टिकोण है जिनका अध्ययन वर्तमान शोध कार्य हेतु बहुत ही उपयोगी होगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *कागद बही श्रृंखला की बही नं. 1 जहाँ एक ही वर्ष विक्रम संवत 1811 की सूचनाएँ देती है। वही वर्ष वि. सं. 1870 की सूचनाएँ दो कागद बहीयाँ नं. 18 एंव 19 प्रदान करती है। इसी प्रकार कागद बही नं. 33 व 34 भी एक ही वर्ष अर्थात वि. सं. 1884 के कालखण्ड का प्रतिनिधित्व करती है।*
2. *कागद बही नं. 31, वि.सं. 1882, रामपुरिया रिकार्डस, रा.रा.अ.बी. कागद बही नं. 7, वि.सं. 1840, बीकानेर रिकाडर्स, कागद बही नं. 23, वि.सं. 1874, बीकानेर रिकाडर्स,*
3. *कागद बही नं. 31, वि.सं. 1882, बीकानेर रिकाडर्स,*
4. *कागद बही नं. 31, वि.सं. 1882, पृ. सं. 14 F2, बीकानेर रिकाडर्स, रा.रा.अ.बी.*
5. *कागद बही नं. 31, वि.सं. 1882, पृ. सं. 23 F2, बीकानेर रिकाडर्स, रा.रा.अ.बी.*
6. *कागद बही नं. 33, वि.सं. 1884, पृ. सं. 67 F1, बीकानेर रिकाडर्स, रा.रा.अ.बी.*
7. *डॉ. राजेन्द्र कुमार, ए स्टडी ऑफ ट्रेड रूटस ऑफ वेस्टर्न राजपूताना इन लेट ऐटीन्थ सेन्चूरी, पृ. 51, अंक–2, जनवरी 2015, आलेख–विरासत पत्रिका, इतिहास एवं संस्कृति विभाग, राजस्थान विद्यापीठ विश्वविद्यालय, उदयपुर।*
8. *कागद बही नं. 31, वि.सं. 1882, मिति अश्विन सुदि 14, बीकानेर रिकाडर्स, रा.रा.अ.बी.*
9. *कागद बही नं. 33, वि.सं. 1884, पृ.12 F1, बीकानेर रिकाडर्स, रा.रा.अ.बी.*
10. *कागद बही नं. 32, वि.सं. 1883, पृ.17 F2, पृ.119 12, बीकानेर रिकाडर्स, रा.रा.अ.बी.*
11. *कागद बही नं. 32, वि.सं. 1883, पृ.16 F1, बीकानेर रिकाडर्स, रा.रा.अ.बी.*
12. *कागद बही नं. 32, वि.सं. 1883, पृ.74 F2, बीकानेर रिकाडर्स, रा.रा.अ.बी.*

राजस्थान में तेरहवीं विधानसभा चुनाव में महिलाओं की भूमिका

राणसिंह
शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

73 वें संविधान संशोधन के बाद वर्तमान में महिलाओं की स्थिति का आंकलन करने से पता चलता है कि उनकी स्थिति में ऐतिहासिक काल से लेकर वर्तमान तक काफी परिवर्तन हुआ है। वर्तमान में महिला का राजनीतिक सशक्तिकरण तो हुआ ही है व साथ ही आर्थिक सशक्तिकरण भी जारी है। आज पंचायती राज व्यवस्था में भी महिलाओं का 50 प्रतिशत आरक्षण कर दिया गया है। आज हर क्षेत्र में चाहें वह राजनीति हो या सामाजिक या आर्थिक सभी धीरें–धीरें महिला की भूमिका बढ़ती जा रही है। यहां तक कि देश राज्य के प्रशासनिक पद हो या राजनीतिक पद उनमें महिला ही बैठी नजर आ रही है।

***संकेताक्षर** : महिलायें, चुनाव, मतदान, पंचायती राज व्यवस्था।*

बारहवीं विधानसभा निर्वाचन से पूर्व सौ दिनों की परिवर्तन यात्रा करते हुए वसुंधरा राजे सिंधिया ने राजस्थान की राजनीति में आगाज किया। भैरोसिंह शेखावत के उपराष्ट्रपति बनने के पश्चात् भाजपा के केन्द्रीय नेतृत्व ने राज्य में पार्टी की बागडोर वसुंधरा राजे को सौंपी। जिन्होंने राज्य में सर्वप्रथम भाजपा को पूर्ण बहुमत के साथ सरकार बनाने का मौका दिया। 'हम परों से नहीं हौसलों से उड़ा करते हैं' जैसे वक्तव्य के साथ 8 दिसम्बर 2003 को वसुंधरा राजे सिंधिया मुख्यमंत्री पद पर आसीन हुई। राज्य की प्रथम महिला मुख्यमंत्री वसुंधरा राजे सिंधिया को अपने शासनकाल में जहाँ विकास के नये आयाम स्थापित करने में सफलता मिली वहीं किसानों की समस्याओं का समाधान करने व जातिगत कलह को रोकने में असफलता प्राप्त हुई। मुख्यमंत्री बनने के पश्चात् वसुंधरा के सामने सर्वप्रथम चुनौती अप्रेल–मई 2004 के लोकसभा चुनाव थे। जिसमें उन्होंने राज्य के 25 लोकसभा निर्वाचन क्षेत्रों में से 21 में भाजपा की जीत का परचम लहराया। लेकिन अक्टूबर 2004 में रावला घड़साना में सिंचाई के लिए नहर के पानी की मांग कर रहे किसानों पर हुई गोलीबारी के साथ ही भाजपा सरकार की समस्यायें उदय होने लग गयी।

वसुंधरा राजे ने पांच वर्षों में पालनहार योजना, जननी सुरक्षा योजना, विश्व की सबसे बड़ी भामाशाह वित्तीय सशक्तिकरण योजना, मुख्यमंत्री बालिका संबल योजना, अमृता देवी विश्नोई योजना, आपकी बेटी योजना, अक्षय कलेवा योजना आदि विभिन्न योजनाओं के माध्यम से महिलाओं व बालिका विकास को प्राथमिकता दी। राज्य कर्मचारियों को खुश करने के लिए सेवानिवृत्ति की आयु 58 वर्ष से बढ़ाकर 60 वर्ष कर दी गई। एक प्रशासनिक सप्ताह में पांच कार्य दिवस निर्धारित किये गये व छठे वेतन आयोग की सिफारिशों को लागू किया गया। 1 अप्रेल 2006 से राज्य में मूल्य संवद्धिन बिक्री कर प्रणाली (वैट) लागू की गई। कृषि के विकास के लिए इजराइल की यात्रा की गई। पंचायत व नगर निकायों में महिलाओं का आरक्षण 33 प्रतिशत से बढ़ाकर 50 प्रतिशत कर दिया गया। राजस्थान के सांस्कृतिक व पर्यटन विकास के लिए राजस्थान दिवस पर विभिन्न कार्यक्रम आयोजित किये गये। 2003–04 में स्वीकृत वार्षिक योजना 4 हजार 258 करोड़ रुपये की थी जो वर्ष 2008–09 में बजट अनुमान के अनुसार 15248 करोड़ रुपये हो गई। जबर्दस्ती व लोभवश धर्म परिवर्तन पर रोक लगाने के लिए धर्म स्वातंत्र्य विधेयक लागू किया गया। शिक्षा, चिकित्सा, आयुर्वेद आदि कई क्षेत्रों में रोजगार उपलब्ध कराये गये।

परिसीमन में 36 नई सीटों का सृजन भी किया गया। इसमें अजमेर जिले में अजमेर उत्तर, अजमेर दक्षिण (अजा), अलवर में किशनगढ़ बास, अलवर ग्रामीण (अजा), अलवर शहर और राजगढ़-लक्ष्मणगढ़ (अजजा), बांसवाड़ा में गढ़ी (अजजा), बारां जिले में अंता और बारां-अटरू (अजा), बाड़मेर जिले में बायतू, भरतपुर जिले में डीग-कुम्हेर, बीकानेर जिले में खाजूवाला (अजा), बीकानेर पश्चिम और बीकानेर पूर्व, धोलपुर जिले में बसेड़ी (अजा), गंगानगर जिले में सादुलशहर और अनूपगढ़ (अजा), जयपुर जिले में शाहपुरा, झोटवाड़ा, विद्याधरनगर, सिविल लाइंस, आदर्श नगर, मालीवय नगर, बगरू (अजा) और चाकसू (अजा), जैसलमेर जिले में पोकरण, झुंझुनूं जिले में उदयपुरवाटी, जोधपुर जिले में लोहावट, कोटा जिले में सांगोद, कोटा उत्तर और कोटा दक्षिण, नागौर जिले में खींवसर, पाली जिले में मारवाड़ जंक्शन, टोंक जिले में देवली-उनियारा, उदयपुर जिले में झाड़ोल (अजजा), प्रतापगढ़ में धरियावाद (अजजा) के नाम से विधानसभा सीटों का नवसृजन किया गया।

भारतीय परिसीमन आयोग ने दिनांक 25 जनवरी 2006 को न केवल विधानसभा क्षेत्रों को घटाया और जोड़ा अपितु उसने विधानसभा क्षेत्रों के आरक्षित व अनारक्षित संख्या में भी बदलाव किया। 2003 में अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के लिए क्रमशः 33 व 24 विधानसभा क्षेत्र आरक्षित थे, वहीं 2008 के लिए परिसीमन आयोग ने अनुसूचित जाति व जनजाति के लिए विधानसभा क्षेत्रों की संख्या क्रमशः 34 व 25 कर दी। 13वीं राजस्थान

विधानसभा निर्वाचन क्षेत्रों की संख्या का संभागीय ब्यौरा इस प्रकार है-

विधानसभा क्षेत्रों की संख्या का संभागीय ब्यौरा तालिका

क्र.सं.			विधानसभा क्षेत्रों की संख्या		
	संभाग	अनुसूचित जाति	अनुसूचित जनजाति	सामान्य	कुल
1	जयपुर	8	4	38	50
2	अजमेर	5	0	24	29
3	कोटा	4	1	12	17
4	बीकानेर	5	0	19	24
5	उदयपुर	1	16	11	28
6	जोधपुर	6	1	26	33
7	भरतपुर	5	3	11	19
	योग	**34**	**25**	**141**	**200**

राज्य में कुल 200 विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र है जिनमें 141 सामान्य 34 अनुसूचित जाति व 25 अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित हैं। जयपुर संभाग में सर्वाधिक 50 व कोटा में सबसे कम 17 विधानसभा क्षेत्र है। वहीं अजमेर, बीकानेर, उदयपुर, जोधपुर, भरतपुर सम्भाग में क्रमशः 29, 24, 28, 33, 19 विधानसभा क्षेत्र हैं। अनुसूचित जाति के लिए अधिकतम 8 स्थान जयपुर व अनुसूचित जनजाति के लिए अधिकतम 16 स्थान उदयपुर संभाग में आरक्षित हैं।

चुनावी अधिसूचना या घोषणा

12वीं विधानसभा का पहला सत्र राज्यपाल द्वारा 15 जनवरी 2004 को आहूत किया गया था उसी दिन सदन की प्रथम बैठक हुई थी। इस कारण विधानसभा के पांच वर्ष का कार्यकाल 14 जनवरी 2009 को पूरा हो रहा था। अतः संवैधानिक दृष्टि से तब तक 13वीं विधानसभा का गठन करना अनिवार्य था। 14 अक्टूबर 2008 को मुख्य निर्वाचन आयुक्त एन. गोपालास्वामी ने राजस्थान सहित पांच राज्यों छत्तीसगढ़, दिल्ली, मध्य प्रदेश, मिजोरम के विधानसभा निर्वाचन के कार्यक्रम की घोषणा की। निर्वाचन आयोग ने राजस्थान में निर्वाचन कार्यक्रम इस प्रकार निर्धारित किया-निर्वाचन आयोग के द्वारा निर्धारित चुनावी कार्यक्रम में दिनांक 10 नवम्बर 2008 को चुनावी

अधिसूचना जारी होने के साथ ही नामांकन का कार्य शुरू होगा जो 17 नवम्बर को 3 बजे तक जारी रहेगा। मंगलवार 18 नवम्बर को नामांकन पत्रों की जांच होगी। 20 नवम्बर गुरुवार को 3 बजे तक दाखिल नामांकन पत्र वापिस लिये जायेंगे। दिनांक 4 दिसम्बर को सुबह 8 बजे से सायं 5 बजे तक मतदान व मतगणना 8 दिसम्बर को होगी।

प्रमुख राजनीतिक दल

राज्य की सबसे बड़ी चौपाल के चुनावों की रणभेरी बजने के साथ ही विभिन्न राष्ट्रीय राज्य व मान्यता प्राप्त दल लोकतंत्र के महायज्ञ में आहुति देने के लिए जोर–शोर से तैयारियां करने लग गये। राज्य के प्रमुख राष्ट्रीय राजनीतिक दल कांग्रेस व भाजपा ने पूर्ण बहुमत के साथ अपनी–अपनी विजय के दावे किये। वहीं अन्य राष्ट्रीय राजनीतिक दल बहुजन समाज पार्टी, राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी, मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी ने त्रिशंकु जनादेश का तर्क देते हुए सरकार बनाने में अपने–अपने दल क अहम् भूमिका होने की भविष्यवाणी की।

राष्ट्रीय दलों के अलावा राज्य स्तरीय व क्षेत्रीय मान्यता प्राप्त व अमान्यता प्राप्त दल भी 13वीं विधानसभा के निर्वाचन में अपनी भूमिका निभाने को बेकरार थे। जिनमें कुछ नवीन राजनीतिक दलों का निर्माण तो कांग्रेस व भाजपा के असंतुष्टों ने ही किया था। इसके अलावा तीसरे मोर्चे का भी गठन हुआ। जिनका वर्णन अग्र प्रकार है–

प्रमुख राजनीतिक दल व उनके चुनाव चिन्ह तालिका संख्या

क्र.सं.	प्रमुख राजनीतिक दल	चुनाव चिन्ह
1	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस	हाथ
2	भारतीय जनता पार्टी	कमल
3	बहुजन समाज पार्टी	हाथी
4	राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी	घड़ी
5	भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी	बाल और हंसिया
6	मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी	हथोड़ा, हंसिया और सितारा
7	राजस्थान विकास पार्टी	रेल का इंजन
8	राष्ट्रीय लोकतांत्रिक दल	हस्तचलित पम्प
9	लोक जनशक्ति पार्टी	ब्गला
10	भाकपा भाले (लेनिनिस्ट लिबरेशन)	तीन सितारा वाला झण्डा
11	शिवसेना	तीर कमान
12	ठ्नेलो	चश्मा
13	दलित क्रांति दल	केला
14	भारतीय बहुजन पार्टी	रेल का इंजन
15	समाजवादी पार्टी	साईकिल

प्रतिनिधि चयन की राजनीति

निर्वाचन में प्रत्याशियों का चयन सबसे महत्वपूर्ण होता है इस चयन में प्रत्येक राजनीतिक दल का भविष्य निर्धारित होता है।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस –भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने राजस्थान विधानसभा के सम्पन्न 12 निर्वाचनों में से 8 में सफल होते हुए सत्ता प्राप्त की। 12वीं विधानसभा निर्वाचन के समय प्रत्याशियों के चयन में दलीय गुटीय राजनीति हावी हो गई जिससे आपसी खींचतान में कमजोर उम्मीदवारों का चयन हुआ व कांग्रेस को सत्ता से बेदखल होना पड़ा। केन्द्र में सत्तारूढ़ होने के बाद कांग्रेस को पंजाब, हिमाचल प्रदेश, गुजरात व कनार्टक में हार का सामना करना पड़ा। अब कांग्रेस की उम्मीदें पांच राज्यों के विधानसभा निर्वाचनों पर टिकी हुई थीं और इन निर्वाचनों में सुदृढ़ प्रत्याशियों से ही सफलता की उम्मीदें की जा सकती थी अतः इनके चयन के लिए कांग्रेस में चुनावी अधिसूचना जारी होने से पूर्व ही नीतियाँ बनने लगीं।

कांग्रेस की राष्ट्रीय अध्यक्ष सोनिया गाँधी द्वारा 44 सदस्यीय राजस्थान प्रदेश चुनाव अभियान समिति का गठन किया गया। पूर्व उपमुख्यमंत्री कमला को अध्यक्ष व एमिमुद्दीन उर्फ दुरूर्मियां को समिति का सहप्रमुख बनाया गया। लेकिन इस समिति के गठन पर रामनिवास मिर्धा, बी. डी. कल्ला, गिरिजा व्यास, गुजरात के राज्यपाल नवलकिशोर शर्मा, जगन्नाथ पहाड़िया व बूटासिंह, के गुटों ने नाराजगी जताई। जिससे यह आभास होने लग गया कि प्रत्याशियों के चयन में आंतरिक जोर आजमाईश चरम पर हो रही है। कांग्रेस के प्रदेशाध्यक्ष सी. पी. जोशी, पूर्व मुख्यमंत्री अशोक गहलोत, प्रदेश चुनाव प्रभारी मुकुल वासनिक, समन्वयक विरेन्द्र सिंह सहित कई दिग्गज नेताओं ने प्रत्याशियों के चयन में अहम भूमिका निभाने का प्रयास किया।

कांग्रेस ने 200 में से 23 महिला प्रत्याशियों को व 40 वर्ष से कम आयु के 35 व्यक्तियों को पार्टी प्रत्याशी बनाया। 12वीं विधानसभा के 52 विधायकों को पार्टी प्रत्याशी बनाया गया इनमें चार निर्दलीय व एक भाजपा से शामिल विधायक (अंतरसिंह भड़ाना) भी शामिल हैं। कांग्रेस ने लगभग 90 स्थानों पर नये चेहरे उतारने का प्रयास किया तथा 18 मुस्लिम अल्पसंख्यकों को पार्टी प्रत्याशी बनाया।

भारतीय जनता पार्टी

13वीं राजस्थान विधानसभा निर्वाचन में सशक्त प्रत्याशियों के चयन के लिए भाजपा ने चुनाव अभियान समिति का गठन किया। जिसमें पार्टी के प्रदेशाध्यक्ष ओमप्रकाश माथुर को समिति का अध्यक्ष व वसुंधरा व रामदास अग्रवाल सहित कुल 17 सदस्यों को शामिल किया गया। पिछले चुनावों के मुकाबले इस बार चुनाव समिति छोटी रखी गई जिसमें सांसद ललित किशोर चतुर्वेदी, कैलाश मेघवाल, किरोड़ीलाल मीणा सहित कई दिग्गज नेताओं को बाहर कर दिया गया। भाजपा ने यह चुनाव गुजरात फार्मूला के आधार पर लड़ने का फैसला लिया। भाजपा ने गुजरात के मुख्यमंत्री नरेन्द्र मोदी के उम्मीदवार बदलकर विधानसभा चुनाव जीतने के फार्मूले को राजस्थान में लागू करने की रणनीति बनाई। पार्टी के वरिष्ठतम सदस्यों का मानना था कि चुनाव पार्टी नहीं हारती बल्कि विधायक हारते हैं अतः खराब छवि वाले विधायकों को बदलकर स्वच्छ छवि वाले व्यक्ति को जगह दी जानी चाहिए। जिससे मतदाताओं का गुस्सा ठंडा हो जाये और पार्टी चुनाव में विजयी हो सके। अतः भाजपा के ओमप्रकाश माथुर, वसुंधरा व प्रदेश प्रभारी गोपीनाथ मुंडे ने टिकट के दावेदारों और वर्तमान विधायकों की ग्रेडिंग रिपोर्ट ली। भाजपा ने 9 नवम्बर को 95 विधानसभा क्षेत्रों के लिए प्रत्याशियों के नामों की घोषणा की।

भाजपा ने अपनी अंतिम सूची में सहयोगी दल इंडियन नेशनल लोकदल व जनता दल यूनाइटेड के साथ चार–चार सीटों पर गठबंधन किया। भाजपा ने इनेलो के लिए भादरा, लूणकरणसर, डूंगरगढ़ व नवलगढ़ तथा जनता दल ‌(यू) के लिए बागीदौरा, तिजारा, कोटपूतली व बांसवाड़ा में चुनाव न लड़ने का फैसला लिया। लेकिन अंतिम समय में बांसवाड़ा विधानसभा क्षेत्र पर भाजपा ने जनता दल (यू) के साथ समझौता तोड़ दिया तथा कुल 193 विधानसभा क्षेत्र में भाजपा प्रत्याशी चुनावी मैदान में नजर आये। इस प्रकार भाजपा ने चार चरणों में अपने प्रत्याशियों के नामों की घोषणा की। गुजरात मॉडल के आधार पर लड़े जा रहे इस चुनाव में भाजपा ने 95 नये चेहरे उतारे तथा 50 से अधिक विधायकों व मंत्रियों के टिकट काट दिये। भाजपा ने 32 स्थानों पर महिला प्रत्याशियों को चुनावी मैदान में उतारा तथा 4 स्थानों पर मुस्लिम अल्पसंख्यक प्रत्याशी थे। बाड़मेर जिले में भाजपा ने चौहटन (सुरक्षित) विधानसभा सीट से पाक विस्थापित दलित तरूणराय कागा को टिकट दी।

13वीं राजस्थान विधानसभा निर्वाचन में बहुजन समाज पार्टी ने नसीराबाद विधानसभा क्षेत्र को छोड़कर समस्त 199 विधानसभा क्षेत्र में प्रत्याशियों को मुकाबले के लिए उतारा। बसपा ने सवर्ण समाज का समर्थन पाने के लिए 40 प्रत्याशी ब्राह्मण व राजपूत उतारे तथा 11 मुस्लिम अल्पसंख्यक को पार्टी प्रत्याशी बनाया। बसपा ने 12 महिला प्रत्याशियों को टिकट दी। राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी के 39 प्रत्याशी चुनावी रण में उतरे जिनमें 2 महिला व 3 मुस्लिम अल्पसंख्यक प्रत्याशी थे। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने 20 स्थानों पर चुनाव लड़ा व 1 महिला प्रत्याशी को टिकट दी। मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के 35 प्रत्याशियों ने चुनावी प्रतियोगिता में हिस्सा लिया। जिसमें 3 मुस्लिम अल्पसंख्यक थे।

13वीं राजस्थान विधानसभा निर्वाचन में 41 राज्यस्तरीय व क्षेत्रीय दलों ने भी अपने प्रत्याशी चुनावी मैदान में उतारे। जिसमें लोकजनशक्ति पार्टी के प्रदेश उपाध्यक्ष ने टिकट वितरण में हुई पैसों के लेन–देन की सी. डी. मीडिया को सौंपकर सबको चौंका दिया।

दोनों राजनीतिक दलों के महिला प्रत्याशियों की संख्या के आधार पर 33 प्रतिशत महिला आरक्षण केवल छलावा लगने लग गया। इस निर्वाचन में टिकटों के बंटवारे में जातिवाद, धर्म व क्षेत्रीयता हावी रही। अतः स्पष्ट है कि इस निर्वाचन में प्रत्याशियों के चयन के लिए हुई राजनीति ने लोकतंत्र को शर्मसार कर दिया।

कांग्रेस

कांग्रेस ने पांच चरणों में प्रत्याशियों को टिकट वितरण किया लेकिन प्रथम सूची से पांचवीं सूची तक इसे असंतोष का सामना करना पड़ा। जिससे इसके 80 से अधिक बागी प्रत्याशी चुनावी मैदान में उतर गये। कांग्रेस प्रदेशाध्यक्ष सी. पी. जोशी, पूर्व मुख्यमंत्री अशोक गहलोत, केन्द्रीय मंत्री शीशराम ओला, प्रदेश चुनाव प्रभारी मुकुल वासनिक, केन्द्रीय पर्यवेक्षक दिग्विजयसिंह के नेतृत्व में बागी प्रत्याशियों की मान–मनुहार करने का प्रयास हुआ। किसी को पद का लालच तो किसी को अगली दफा टिकट देने का भरोसा दिलाकर नामांकन वापिस लेने का प्रयास किया गया। तीन दिन की मशक्कत के बाद कांग्रेस के 27 बागियों ने नाम वापिस ले लिया जिनमें प्रमुख इस प्रकार हैं– रतनलाल ताम्बी (जहाजपुर), रेवतराम पंवार (कोलायत), हरीश यादव (झोटवाड़ा), बंशीधर सैनी (विद्याधर नगर), रामस्वरूप मीणा (टोडाभीम), हाजी कयूमखां (मसूदा), हरिराम मेघवाल (अनूपगढ़), देवपाल मीणा (सवाई माधोपुर), जयनारायण बैरवा (चाकसू), याकूल मोहम्मद (भीलवाड़ा), सूबेदारसिंह (बड़ी), महेन्द्रसिंह यादव (बहरोड़), गंगाराम कौली (बयाना), जाफर अली (चित्तौड़गढ़) आदि।

भाजपा

टिकट वितरण से हुए असंतोष के कारण भाजपा में बागी प्रत्याशियों की भरमार हो गई। भाजपा के 75 से अधिक बागी प्रत्याशी चुनाव मैदान में उतर गये जिससे पार्टी के सत्ता में रहने का सपना टूटते हुए नजर आ रहा था। ऐसी परिस्थिति में भाजपा के प्रदेश प्रभारी गोपीनाथ मुण्डे, मुख्यमंत्री वसुंधरा राजे तथा प्रदेशाध्यक्ष ओमप्रकाश माथुर ने राजनीति की समस्त चालें चलते हुए बागियों को मनाने का प्रयास किया व तीन दिन की मशक्कत के बाद करीब दो दर्जन बागी प्रत्याशियों को ही नाम वापसी के लिए मना पाए।

जिनमें प्रमुख इस प्रकार हैं– नवरतन राजोरिया (झोटवाड़ा), नरेन्द्र कंवर (सवाई माधोपुर), गोपाल गहलोत (बीकानेर पूर्व), विवेक कालिया (सांगानेर), अखिल शुक्ला (किशनपोल), अजय अग्रवाल (अलवर), मनोज दिलावर (अटरू), मांगीलाल जोशी (मावली), नंदलाल बंशीवाद (दौसा), गंगाराम कोली (बयाना), लालराम कुमावत (नावां), महेन्द्र यादव (बहरोड़) आदि। 20 नवम्बर की सायं 3 बजे तक नामांकन वापिस लिये जा सकते थे अतः पार्टी प्रत्याशियों की भागदौड़ व मान मनुहार की बदौलत कुल 678 प्रत्याशियों ने अपना नामांकन वापिस ले लिया जिसमें 629 पुरुष व 29 महिला प्रत्याशी थी। अनुसूचित जाति व जनजाति के लिए आरक्षित सीटों पर क्रमशः 80 व 36 प्रत्याशियों ने नामांकन वापिस ले लिया।

प्रतियोगी प्रत्याशी (उम्मीदवार)

नामांकन पत्र वापिस लेने के पश्चात् कुल 2194 प्रत्याशी चुनाव मैदान में डटे रहे जिनमें 2040 पुरुष व 154 महिला प्रत्याशी थी। सर्वाधिक 685 प्रत्याशी जयपुर सम्भाग में व सबसे कम 149 प्रत्याशी कोटा सम्भाग में थे। इसके अलावा अजमेर, बीकानेर, उदयपुर, जोधपुर, भरतपुर सम्भाग में क्रमशः 277, 264, 208, 347, 264 प्रत्याशियों ने चुनावी प्रतियोगिता में हिस्सा लिया। जिनका दलीय विवरण इस प्रकार है–

प्रतियोगी प्रत्याशियों का दलीय ब्यौरा तालिका संख्या

क्र.सं.	राजनीतिक दल	पुरुष प्रत्याशी	महिला प्रत्याशी	कुल प्रत्याशी
1	भाजपा	161	32	193
2	कांग्रेस	177	23	200
3	बसपा	187	12	199
4	भाकपा	19	01	20
5	माकपा	35	0	35
6	राकांपा	37	02	39
7	अन्य मान्यता प्राप्त दल	453	30	483
8	निर्दलीय	971	54	1025
	कुल	**2040**	**154**	**2194**

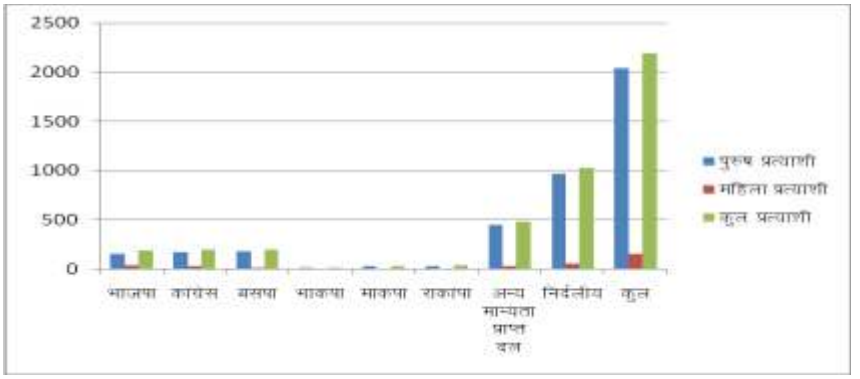

13वीं राजस्थान विधानसभा निर्वाचन के लिए भाजपा के 193 प्रत्याशी चुनाव मैदान में थे जिनमें 161 पुरुष व 32 महिला थी। कांग्रेस ने समस्त 200 स्थानों पर अपने प्रत्याशी उतारे जिनमें 177 पुरुष व 23 महिला थी। बसपा नसीराबाद विधानसभा को छोड़कर समस्त 199 स्थानों पर चुनावी मैदान में थी जिसमें उसके 187 पुरुष व 12 महिला उम्मीदवार थी। भाकपा ने 20 स्थानों पर चुनाव लड़ा जिसमें 19 पुरुष व 1 महिला प्रत्याशी बनी। माकपा के 35 प्रत्याशी चुनावी रण में थे। माकपा ने एक भी महिला प्रत्याशी को टिकट नहीं दी। राकांपा के 39 उम्मीदवार चुनाव में प्रतियोगी बने जिनमें 37 पुरुष व 2 महिला प्रत्याशी थी। अन्य मान्यता प्राप्त दलों के 483 उम्मीदवार इस निर्वाचन में महारथी थे जिनमें 453 पुरुष व 30 महिलायें थी। निर्दलीय प्रत्याशियों की संख्या 1025 थी जिनमें 971 पुरुष व 54 महिला प्रत्याशी थी।

13वीं राजस्थान विधानसभा निर्वाचन में कुल 66.49 प्रतिशत मतदान हुआ जिसमें 67.55 प्रतिशत पुरुष व 65.31 प्रतिशत महिला मतदाता थी। इस निर्वाचन मेंइलेक्ट्रोनिक वोटिंग मशीन से 2 करोड़ 40 लाख 30 हजार 211 मतदाताओं ने अपने मताधिकार का प्रयोग किया जिनमें 1 करोड़ 27 लाख 78 हजार 804 पुरुष व 1करोड़ 12 लाख 51 हजार 407 महिला मतदाता थी। निर्वाचन में कुल 87 हजार 311 डाक मतों का प्रयोग हुआ जिनमें सभी पुरुष डाकमत थे। राजस्थान विधानसभानिर्वाचन 2008 में 1 करोड़ 90 लाख 45 हजार 157 पुरुष मतदाताओं में से 1 करोड़ 28 लाख 66 हजार 115 मतदाताओं ने मतदान किया वही 1 करोड़ 72 लाख 27हजार 896 महिला मतदाताओं में से 1 करोड़ 12 लाख 51 हजार 407 महिलाओं ने मताधिकार का प्रयोग किया। बीकानेर संभाग में सर्वाधिक 72.24 प्रतिशतमतदान हुआ। इस निर्वाचन में सर्वाधिक 78.95 प्रतिशत हनुमानगढ़ व सबसे कम 57.78 प्रतिशत पाली जिले में मतदान हुआ

राजस्थान विधानसभा में महिलाओं की प्रतिभागिता का विश्लेषण :-

राजस्थान विधानसभा निर्वाचन 2008 में कुल 2194 प्रत्याशियों में से 154 महिला प्रत्याशी थी जिनमें 28 महिलाओं को विजयश्री प्राप्त हुई तथा 104 महिला प्रत्याशियों की जमानत जब्त हो गई। इस निर्वाचन में 2 करोड़ 40 लाख 98 हजार 682 वैध मतों में से 26 लाख 5 हजार 820 मत महिला प्रत्याशियों ने प्राप्त किये जो कुल मतदान का 10.83 प्रतिशत है। जिसमें 13 लाख 43 हजार 825 मत (51.57 प्रतिशत) निर्वाचित 28 महिलाओं ने प्राप्त किये। इस निर्वाचन में भारतीय जनता पार्टी और कांग्रेस की ओर से पहली सीटें जीतने का श्रेय भी महिला प्रत्याशियों को गया। भाजपा की अनिता भदेल ने अजमेर दक्षिण से और कांग्रेस की कांता गरासिया ने गढ़ी (बांसवाड़ा) से जीतकर अपनी-अपनी पार्टी का खाता खोला। राजस्थान विधानसभा निर्वाचन 2008 में निर्वाचित महिलाओं का ब्यौरा

इस प्रकार है-

महिला विधायकों का ब्यौरा तालिका संख्या

क्र.सं.	नाम	राजनीतिक दल	विधानसभा क्षेत्र
1	परम नवदीप	कांग्रेस	संगरिया
2	रीटा चौधरी	कांग्रेस	मंडावा
3	गंगा देवी	कांग्रेस	बगरू

4	जहिदा	कांग्रेस	कामां
5	ममता भूपेश	कांग्रेस	सिकराय
6	जकिया	कांग्रेस	टोंक
7	मंजू देवी	कांग्रेस	जायल
8	बीना काक	कांग्रेस	सुमेरपुर
9	गंगाबेन गरासिया	कांग्रेस	पिण्डवाड़
10	सज्जनदेवी कटारा	कांग्रेस	उदयपुर
11	कांता गरासिया	कांग्रेस	गढ़ी
12	निर्मला सहरिया	कांग्रेस	किशनगंज
13	नसीम इंसाफ अख्तर	कांग्रेस	पुष्कर
14	सिद्धि कुमारी	भाजपा	बीकानेर
15	कमला कस्वां	भाजपा	सादुलपुर
16	प्रमिला	भाजपा	चाकसू
17	अनिता	भाजपा	नगर
18	कृष्णेन्द्र कौर	भाजपा	नदबई
19	रोहिणी कुमारी	भाजपा	करौली
20	अनिता भदेल	भाजपा	अजमेर दक्षिण
21	कस्मां मेघवाल	भाजपा	भोपालगढ़
22	सूर्यकांता व्यास	भाजपा	सूरसागर
23	किरण माहेश्वरी	भाजपा	राजसमंद
24	वसुंधरा राजे	भाजपा	झालरापाटन
25	संजना अगरी	भाजपा	सोजत
26	चन्द्रकांता मेघवाल	भाजपा	रामगंज मंडी
27	गोलमा देवी	निर्दलीय	महुआ
28	अंजू देवी धानका	निर्दलीय	बस्सी

उपर्युक्त तालिका संख्या 6.21 के विश्लेषण से स्पष्ट है कि इस निर्वाचन में कांग्रेस व भाजपा की 13–13 महिला प्रत्याशी निर्वाचित हुई जबकि 2 निर्दलीय महिलाओं ने भी विधानसभा में प्रवेश किया। अतः स्पष्ट है कि 13वीं राज्य विधानसभा में 14 प्रतिशत महिलाओं ने प्रवेश किया है तथा प्रथम विधानसभा से 13वीं विधानसभा निर्वाचन तक महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता में वृद्धि हो रही जो लोकतंत्र के लिए शुभ संकेत है।

इस प्रकार राजस्थान के 200 विधानसभा क्षेत्र के लिए होने वाले चुनाव में कुल 2194 उम्मीदवारों के लिए चार दिसंबर 2008 को मतदान कराया गया। इसमें महिला उम्मीदवारों की संख्या 154 रही। कुल मतदातों की संख्या 36,267,919 थी जिसमें महिला मतदाता 17,225,836 और पुरूष मतदाताओं की संख्या 19042083 था। मतगणना को पारदर्शी बनाने के लिए निर्वाचन विभाग ने मतगणना स्थल पर मीडिया सेंटर बनाया। जिसमें एनआईसी के अधिकारी भी थे। मीडिया सेंटर को ब्राडबैंड से जोड़ा गया। इसके साथ ही प्रत्येक रिटर्निंग अधिकारी के कमरे में भी कम्प्यूटर लगाया गया। जिसे मीडिया सेंटर से जोड़ा गया। मतगणना के दौरान

किसी भी इलेक्ट्रोनिक चैनल से पहले मतगणना की ताजा जानकारी वेबसाइट पर उपलब्ध हुई। मतगणना की जानकारी टेलीफोन पर भी प्रदान की गई। निर्वाचन आयोग ने इसके लिए कोल सेंटर स्थापित किये। मतगणना का प्रारम्भ 8 दिसम्बर को प्रातः 8 बजे से हुआ तथा दोपहर 1 बजे तक सम्पूर्ण परिणाम स्पष्ट हो गये। इस प्रकार स्पष्ट है कि राजस्थान विधानसभा निर्वाचन 2008 में चुनावी कार्यक्रम की घोषणा के साथ ही चुनावी रंग में राजस्थान रंगीन हो गया। टिकटों के बंटवारे ने चुनाव में बागी प्रत्याशियों की बौछार कर दी जिससे दोनों प्रमुख राजनीतिक दलों को मुश्किलों का सामना करना पड़ा। निर्वाचन में राजनीतिक दल लोक लुभावन घोषणा पत्रों के साथ जनता के समक्ष प्रस्तुत हुए वही महंगाई, भ्रष्टाचार, गोलीकाण्ड व आतंकवाद चुनावी मुद्दे बने। इन निर्वाचन में चुनावी प्रचार में पैसा पानी की तरह बहाया गया। मीडिया ने अपनी सजग भूमिका निभाने का प्रयास किया तथा मतदान व मतगणना शांतिपूर्ण सम्पन्न हुई।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *सामवेदी सत्यव्रत ('लोकतंत्र के नाम पर सामंतवादी चेहरा देखा राजस्थान में', दैनिक भास्कर, जयपुर 22 नवम्बर 2008, पृष्ठ 6)*
2. *अभिनव योजनाऐं ('सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग', राजस्थान, जयपुर, सितम्बर 2008, पृष्ठ 3)*
3. *राय नवरंग ('राजस्थान नवीनतम समसामयिकी', राय पब्लिकेशन्स, जनवरी 2009, पृष्ठ 13)*
4. *मृग जय ('सक्षम नेतृत्व के लिए जनादेश', दैनिक भास्कर, जयपुर, 10 दिसम्बर 2008, पृष्ठ 6)*
5. *सामवेदी सत्यव्रत ('लोकतंत्र के नाम पर सामंतवादी चेहरा देखा राजस्थान में', दैनिक भास्कर, जयपुर 22 नवम्बर 2008, पृष्ठ 6)*
6. *चौहान जितेन्द्र सिंह ('राजस्थान मंथन भाग–3', चौहान पब्लिकेशन्स, जयपुर, दिसम्बर 2008, पृष्ठ 8)*
7. *शर्मा अनिल ('परिसीमन ने बदला खेल', राजस्थान टूडे, हिन्दुस्तान प्रिन्टिंग हाउस, जोधपुर, दिसम्बर 2008, पृष्ठ 12)*
8. *'13वीं विधानसभा जनरल इलेक्शन : 2008–इन राजस्थान मेनेजमेन्ट ऑफ इलेक्शन एण्ड स्टेटिस्टकल इंफोरमेशन', निर्वाचन विभाग राजस्थान, जयपुर, 2008, पृष्ठ 3*
9. *'13वीं विधानसभा जनरल इलेक्शन : 2008–इन राजस्थान मेनेजमेन्ट ऑफ इलेक्शन एण्ड स्टेटिस्टकल इंफोरमेशन', निर्वाचन विभाग राजस्थान, जयपुर, 2008, पृष्ठ 17*
10. *'दी टाइम्स ऑफ इण्डिया' (15 अक्टूबर 2008, नई दिल्ली, पृष्ठ 1*
11. *दैनिक भास्कर (शेखावाटी) '21 नवम्बर 2008, सीकर, पृष्ठ 2,*
12. *पंजाब केसरी (राजस्थान) '11 अक्टूबर 2008, जयपुर, पृष्ठ 1,*
13. *पंजाब केसरी (राजस्थान) '31 अक्टूबर 2008, जयपुर, पृष्ठ 1,*
14. *राजस्थान पत्रिका, 31 अक्टूबर 2008, जयपुर, पृष्ठ 1,*
15. *दैनिक नवज्योति , 2 नवम्बर 2008, जयपुर, पृष्ठ 12*
16. *पंजाब केसरी 'राजस्थान , 16 नवम्बर 2008, जयपुर, पृष्ठ 1*
17. *दी टाईम्स ऑफ इंडिया ,17 नवम्बर 2008, नई दिल्ली, पृष्ठ 4*
18. *पंजाब केसरी , 1 अक्टूबर 2008, नई दिल्ली, पृष्ठ 1*
19. *दैनिक नवज्योति , 24 सितम्बर 2008, जयपुर, पृष्ठ 1*
20. *दैनिक नवज्योति , 18 अक्टूबर 2008, जयपुर, पृष्ठ 1*
21. *राजस्थान पत्रिका , 7 नवम्बर 2008, जयपुर, पृष्ठ 2*
22. *दैनिक भास्कर , 10 नवम्बर 2008, जयपुर, पृष्ठ 1*
23. *दैनिक भास्कर , 17 नवम्बर 2008, जयपुर, पृष्ठ 1*
24. *दैनिक भास्कर , 18 नवम्बर 2008, जयपुर, पृष्ठ 1*
25. *दैनिक भास्कर , 16 नवम्बर 2008, जयपुर, पृष्ठ 2*
26. *राजस्थान पत्रिका, 21 नवम्बर 2008, जयपुर, पृष्ठ 1*
27. *राजस्थान पत्रिका, 21 नवम्बर 2008, जयपुर, पृष्ठ 1*
28. *दैनिक भास्कर , 21 नवम्बर 2008, जयपुर, पृष्ठ 1*
29. *'13वीं विधानसभा जनरल इलेक्शन : 2008–इन राजस्थान मेनेजमेन्ट ऑफ इलेक्शन एण्ड स्टेटिस्टकल इंफोरमेशन', निर्वाचन विभाग राजस्थान, जयपुर, 2008, पृष्ठ 22*
30. *'13वीं विधानसभा जनरल इलेक्शन : 2008–इन राजस्थान मेनेजमेन्ट ऑफ इलेक्शन एण्ड स्टेटिस्टकल इंफोरमेशन', निर्वाचन विभाग राजस्थान, जयपुर 2008, पृ 114–118*
31. *राजस्थान पत्रिका , 1 दिसम्बर 2008, जयपुर, पृष्ठ 14*

गांधी का स्वराज एवं सुशासन की अवधारणा

विमलेश टेलर
शोधार्थी, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

गांधीजी चाहते थे कि स्वराज का निर्माण सत्य और अहिंसा के आधार पर हो । वे ऐसे स्वराज का सपना देखते थे जो सत्य के रूप में पूर्ण विकेन्द्रीयकरण हो । वर्तमान सुशासन की अवधारणा गांधीजी के स्वराज संबंधी विचारों पर ही आधारित है, क्योंकि गांधीजी के स्वराज में किसी भी प्रकार के लिंग, धर्म, जाति, प्रदेश, रंग, सम्पत्ति की अनुचित असमानताएं नहीं है, इसमें राजनीतिक संस्थाऐं और भूमि जनता की है । इसमें प्रत्येक व्यक्ति सभी स्वतन्त्रताओं का जैसे भाषण, समुदाय, धर्म, व्यवसाय, प्रेस की स्वतन्त्रताओं का उपयोग करता है । इसमें स्वःनियन्त्रित नैतिक प्रतिबन्ध है। इस प्रकार स्वराज में ग्राम और ग्राम समुदाय स्वशासन, स्वावलम्बी और अपने आप में पूर्ण है । सुशासन का मुख्य उद्देश्य भी समाज का विकास एवं समाज को स्वतन्त्र रूप से सहायता प्रदान करना है । गांधीजी के स्वराज की अवधारणा की तरह ही सुशासन में जनता के मूल्यों का समान, जनता के प्रति सेवाभाव, उत्तरदायित्वपूर्ण एवं कार्यकुशल राजनीतिक सत्ता, पारदर्शी न्याय व्यवस्था आदि विचारों की प्रधानता रही है ।

संकेताक्षर *: स्वराज, सुशासन, स्वालम्बन, विकेन्द्रीयकरण।*

गांधी का स्वराज एवं सुशासन की अवधारणा

गांधी न केवल राजनीतिक दार्शनिक थे अपितु सच्चे कर्मयोगी और सन्त प्रवृत्ति के राजनीतिज्ञ भी थे। जॉन बी. बोदुंरा के शब्दों में वे राजनीतिक कार्यकर्ता और व्यवहारिक दार्शनिक थे । वे सिद्धान्त निर्माता नहीं थे।[1] गांधी, मार्क्स की तरह राज्य विहिन,वर्ग विहिन समाज की कल्पना करते है ''जिसमें कोई राजनीतिक शक्ति नहीं होगी, क्योंकि उसमें कोई राज्य ही नहीं होगा ।''[2] गांधी न तो राज्य को ईश्वर की निरपेक्ष सम्प्रभुता मानते है और न ही अराजकतावादियों की तरह राज्य को पूर्णतः समाप्त करना चाहते हैं, परन्तु इतना अवश्य है कि गांधी अराजकतावादियों की तरह राज्य की बढ़ती हुई शक्ति को भय से देखते है और व्यक्ति को अधिक से अधिक स्वतन्त्रता देना चाहते है। गांधी वस्तुतः समन्वयवादी विचार रखते है, जो पश्चिमी राजनीतिक बहुलवाद के समीप है, जिनका समर्थन इग्लैण्ड में डॉ. जे.एन. फिगिस, ए.डी. लिडसे तथा हेरोल्ड जे. लास्की, फ्रांस के डिग्विट और कार्वे करते है। इनके विचार को रूसों की ''सामान्य इच्छा'' के सिद्धान्त से भी भिन्न माना जा सकता है, क्योंकि इनके अनुसार प्रभुत्व शक्ति मात्र जनता की इच्छाओं पर नहीं, उनकी नैतिक शक्ति पर आश्रित हैं ।[3]

गांधी ने अपने आदर्श राज्य को सर्वोदय के सिद्धान्त के आधार पर प्रस्तुत किया है, उन्होंने रस्किन की पुस्तक से सर्वोदय के विचार को अंगीकृत कर एक आदर्श राज्य की कल्पना की है। उनका मानना है कि सर्वोदय एक जीवनव्यापी क्रान्ति है, जो समाज की सभी विषमताओं को समाप्त करने का आधार बन सकती है । ऐसी क्रान्ति अहिंसा और सत्य के द्वारा ही सम्भव है और इसलिए सर्वोदय इन्हीं को प्रतिपादित करता है। सर्वोदय में आत्मनिर्भरता का भाव भी निहित है और इसलिए सादगी और सरल जीवन विकेन्द्रीकरण, स्वावलम्बन और सहयोग के माध्यम से एक आदर्श राज्य अर्थात् रामराज्य की स्थापना हो सकती है ।

ISSN 2277-5587

स्वराज का अर्थ –स्वराज दो शब्दों से मिलकर बना है –स्वराज। जिसमें ''स्व'' का अर्थ होता है, स्वयं का व ''राज'' का अर्थ होता है शासन। इसलिए स्वराज का सामान्य अर्थ होता है ''स्वयं का शासन''। गांधीजी मानते थे कि ''स्वराज'' शब्द इतना व्यापक है कि इसकी सही–सही परिभाषा असम्भव है। इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ–साथ और भी बातें आ जाती है। इसे अर्थ व परिभाषा के घेरे में बांधना इसके दृष्टिकोण को संकीर्ण बनाना होगा और जो कुछ असीम है उसे सीमित कर देना होगा।

सामान्यतः यहाँ स्वराज के निम्न अर्थ देखे जा सकते हैं –

- गांधीजी स्वराज को केवल राजनीतिक अवधारणा नहीं मानते हैं। उनके अनुसार यह एक वैदिक शब्द हैजिसका अर्थ है आत्म शासन और आत्म संयम।[4]
- स्वराज से अभिप्राय है–लोक सम्मति से होने वाला भारत वर्ष का शासन।
- स्वराज का मूल अर्थ स्वशासन है इसलिए इसे अनुशासित शासन जो कि अन्तर आत्मा से अनुशासित है, की संज्ञा दी जा सकती है।
- स्वराज एक स्वनियंत्रण है और इस स्वतन्त्रता का अर्थ अनियन्त्रित स्वतन्त्रता कदापि नहीं है।
- उपनिवेश की स्थिति में स्वराज का अर्थ है कि हम अपनी इच्छानुसार स्वतन्त्रता की घोषणा कर दें। जब तक हममें वह क्षमता पैदा नहीं होती है तब तक स्वराज निरर्थक है। यही इस शब्द का न्यूनतम अर्थ है। यह स्वतन्त्रता व्यक्तिया हिस्सेदारी है।[5]
- 1925 में गांधीजी ने लिखा–''भारत के स्वराज का अर्थ है, भारतीय लोगों की सहमति से बनी सरकार, जो भारत की वयस्क जनता का एक हिस्सा है। चाहें स्त्री हो या पुरूष, जिन्होंने शारीरिक श्रम द्वारा राज्य में अपना योगदान दिया हो, जिनके नाम मतदाता के रूप में रजिस्टर्ड हो।'' दूसरे शब्दों में जनता को इस अर्थ में शिक्षित करना कि वे सत्ता को नियंत्रित व व्यवस्थापित करने की क्षमता पैदा कर सके।[6]

इस प्रकार स्पष्ट है कि स्वराज के अनेक अर्थ हो सकते हैं, लेकिन अपने सबसे महत्वपूर्ण अर्थ में यह मनुष्य को अपने अंतःकरण की आवाज से नैतिक सिद्धांतों पर नैतिक मूल्यों को साथ लेकर सत्य के मार्ग पर चलने की घोषणा है।

स्वराज की अवधारणा – गांधीजी का स्वराज विचार सर्वोदय आदर्श के निकट है। जब तक व्यक्ति का आध्यात्मिक, नैतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक क्षेत्रों में विकास नहीं होगा तब तक स्वराज सम्भव नहीं। गांधीजी जब राष्ट्र के लिये स्वराज का विचार प्रस्तुत करते हैं तो इसका तात्पर्य यही है कि व्यक्ति को हिंसा, पाप, भय, आलस्य, ईर्ष्या आदि से मुक्ति मिले और पृथ्वी पर साधुता का शासन हो। इसकी व्याख्या गांधीजी ने इन शब्दों में की है – उच्च नैतिक शक्ति पर आधारित व्यक्ति की सम्प्रभुता। वह आत्मशासन व आत्मनियन्त्रण से ही सम्भव है। साथ ही राज्य का कर्तव्य हैं कि वह व्यक्ति विकास में सहायक है।[7]

गांधीजी स्वराज के लिये शहरों की अपेक्षा गांवों की उन्नति की स्थापना करना चाहते थे। उनका मानना था कि जिस दिन गाँव से गरीबी चली जायेगी उस दिन सम्पूर्ण भारत में स्वराज की स्थापना हो जाएगी। अतः स्वराज का सूत्रपात गांवों से होना चाहिए। गांवों में पंचायतीराज होना चाहिए, ताकि गाँव के लोग अपना शासन स्वयं कर सके।[8] स्वावलंबन गांधी चिन्तन का मूल मंत्र है इसलिए उन्होंने प्रत्येक गाँव में उद्योग धंधो को चलाने पर बल दिया। उनके अनुसार, अगर गाँव की समस्त आधारभूत आवश्यकताएं गांवों में ही पूरी हो जाएं और वे आत्मनिर्भर हो जाएं तो स्वराज प्राप्त हो सकता है। इस आत्मनिर्भरता के लिए प्रत्येक परिवार को खादी की कताई–बुनाई द्वारा स्वावलम्बन प्राप्त करने पर गांधीजी बल देते है। स्वराज को स्वशासन के रूप में परिभाषित करने पर हम यह पाते हैं कि गांधीजी सभी नागरिको का यह अधिकार समान रूप से मानते हैं कि वे शासन कर सके और असमानता के रहते ऐसा करना सम्भव नहीं है अगर स्वशासन के बिना राष्ट्रीय स्वाधीनता मिलती हैं तो वह अधूरी है।[9]

गांधीजी ने स्वराज को सर्वाधिक बुनियादी रूप में साधन एवं साध्य दोनों ही स्तरों पर प्रतिपादित किया। इसलिये गांधी दर्शन में स्वराज का क्षेत्र उतना ही व्यापक है जितना ''सर्वोदय'' का। गांधीजी का स्वराज एक सम्पूर्ण विचार है, मात्र राजनीतिक स्वाधीनता नहीं। गांधीजी ने इसके अन्तर्गत सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि सभी पहलुओं को शामिल किया है। गांधीजी द्वारा प्रतिपादित स्वराज की अवधारणा के तीन मुख्य तत्व हैं प्रथम–गांधीजी ने व्यक्ति की स्वतन्त्रता की बात पर बल दिया है न कि सामूहिक स्वतन्त्रता पर। द्वितीय–स्वतन्त्रता का आधार अहिंसा है । अहिंसा के बिना स्वराज की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। तृतीय–सत्य जो सभी धर्मो, नैतिकताओं, सामाजिकताओं से ऊपर है जो सर्वत्र विद्यमान है जो समस्त विनाश और परिवर्तन से परे है। हम सत्य, अहिंसा, ईश्वर में जीवन्त विश्वास के बिना राजनीतिक, आर्थिक स्वतन्त्रता तथा नैतिक व सामाजिक विकास प्राप्त नहीं कर सकते हैं ।

सुशासन की अवधारणा – सुशासन की अवधारणा का विकास कौटिल्य, अरस्तु तथा प्लेटों के दर्शनशास्त्र में देखा जा सकता है, परन्तु आधुनिक लोक प्रशासन की शब्दावली में ये शब्द 1990 के दशक में प्रविष्ट हुआ। 1994 में विश्व बैंक ने सुशासन के अभिप्राय को इस प्रकार व्यक्त किया था –सुशासन भविष्यवाणी योग्य, खुला और प्रबुद्ध, नीति–निर्माण एवं नौकरशाही जो व्यावसायिक गुणों से लबरेज है, एक कार्यपालिका जो अपने कार्यो में भाग लेता है। खास बात ये है कि ये सभी विधि के शासन में अपना कार्य करते है।

शासन में सरकार की योजना बनाने, नीतियों का निर्माण तथा क्रियान्विति करने की क्षमता समाविष्ट होती है तथा साथ–साथ इसमें सरकार की कार्यविधि तथा समाज की उद्‌गामी चुनौतियों का सामना करने की क्षमता भी समाविष्ट होती है। शासन की संरचना तथा प्रक्रिया में शासन करने के लिए सरकार के द्वारा संस्थानों का उपयोग के साथ सुशासन के प्रति उन्नति तथा इसमें भाग लेने के लिए शासित अधिकार तथा जिम्मेदारियाँ, कल्याणकारी राज्य के सिद्धान्त, कानून जो हमारे नागरिकों के कल्याण व प्रगति के विकेन्द्रीयकरण और आधारभूत एवं मूल अधिकारों इत्यादि के अनुभव को समर्थ बनाता है। सुशासन का उद्देश्य है विकास एवं समाज को स्वतन्त्र रूप से सहायता प्रदान करना। सुशासन संसदीय लोकतंत्र के ढ़ाँचे में लोगों की सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक जीवन को बदलने का भी प्रयत्न करता है, समयानुसार सुशासन की परिभाषा विस्तृत होती चली गई। संक्षेप में कहा जा सकता है कि सुशासन से आशय जनता के प्रति उत्तरदायी उस शासन व्यवस्था से है, जिसमें निम्नलिखित पहलुओं को सम्मिलित किया जाता है[10] –

- उत्तरदायित्वपूर्ण एवं कार्यकुशल राजनीतिक सत्ता
- सत्ता द्वारा देश के आर्थिक व सामाजिक संसाधनों का उचित प्रबन्ध
- लोकतान्त्रिक मूल्यों का सम्मान
- प्रशासन में जनता के प्रति उत्तरदायित्व
- प्रशासन में सहभागिता
- जनता के प्रति सेवा का भाव
- मानव अधिकारों में आस्था एवं उनके क्रियान्वयन के प्रति झुकाव ।

संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार सुशासन में निम्न आठ विशेषताएँ होती है :–

1. विधि का शासन
2. समानता एवं समावेशन
3. भागीदारी
4. अनुक्रियता
5. बहुमत मतैक्य
6. प्रभावशीलता दक्षता
7. पारदर्शिता
8. उत्तरदायित्व

सुशासन तभी सुशासन है, जब इसमें सभी नागरिकों के हितों का ध्यान रखा जाता हो। यह तभी संभव है जब सरकार गरीबों, बच्चों, वृद्धजनों, महिलाओं आदि के अधिकारों की रक्षा करें और इनके कल्याण के लिए भी विभिन्न प्रकार की योजनाएं संचालित करें।

सुशासन व स्वराज्य में तुलनात्मक सम्बन्ध – गांधीजी के स्वराज की अवधारणा व सुशासन दोनों का अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि गांधीजी एक स्वराज की स्थापना जिन आदर्शों पर करना चाहते थे, उन आदर्शों के माध्यम से वर्तमान में सुशासन की स्थापना भी की जा सकती है। गांधीजी अपने स्वराज में लिंग, धर्म, जाति, प्रदेश, रंग, सम्पत्ति की अनुचित असमानताओं को समाप्त करना चाहते थे, अर्थात् समाज की विषमताओं को दूर करना चाहते थे। वे जाति विहिन, वर्ग विहिन समाज की स्थापना पर जोर देते है। यह सब केवल प्रशासन में जनता की सहभागिता व प्रशासन का जनता के प्रति उत्तरदायित्व से प्राप्त किया जा सकता है, तब ही वहाँ सच्चे अर्थो में सुशासन एवं गांधीजी के स्वराज के सपने को साकार होता हुआ देखा जा सकता है।

गांधीजी के द्वारा स्वराज की जो विशेषताएं बतायी गयी थी, वे सभी सुशासन के तथ्यों में सम्मिलित है, जैसे की जनशक्ति पर आधारित जनतान्त्रिक शासन प्रणाली, राज्य की लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली का आधार विकेन्द्रीयकरण, पंथ निरपेक्ष राज्य, लोककल्याणकारी राज्य, विधि का शासन, पारदर्शिता, लोकतान्त्रिक मूल्यों का सम्मान आदि। सुशासन एक सन्तुलित शासन परीक्षण होता है, जिसमें सरकार निजी क्षेत्र, गैर सरकारी संगठनों तथा सहकारिताओं के बीच सांमजस्यपूर्ण अन्तरसंबंध होता है। निजी क्षेत्र एवं सरकार के बीच अन्तरापृष्ठ शासन की जिम्मेदारी को साझा करने तथा लोकहितों की सुरक्षा करने के लिए सहायक होगा। शक्ति का विकेन्द्रीयकरण, निर्णय–निर्माण प्रक्रिया में केवल अनावश्यक विलम्ब को कम ही नहीं करेगा बल्कि सरकार तथा अधिकारी तन्त्र को

और भी जवाबदेह बनायेगा। वर्तमान में सरकार को जनता के लिए कुशल एवं प्रभावी सेवाओं पर ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता है, क्योंकि जागरूक नागरिक वर्ग सरकार की सेवा सुपुर्दगी में अहम भूमिका निभा सकता है और उस स्थिति में वास्तविक अर्थो में सुशासन की स्थापना हो सकती है। गाँधीजी के स्वराज की अवधारणा व वर्तमान सुशासन दोनों काफी हद तक एक दूसरे से अन्तरसम्बन्धित है ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *बोन्दूरा, जॉन वी., कन्क्यूस्ट ऑफ बोलेन्स दी गांधीयन फिलोसफी ऑफ कान्फलेक्ट, युनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, 1967, पृष्ठ संख्या 07*
2. *सम्पूर्ण गांधी वाग्मय, खण्ड 47, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 104*
3. *सम्पूर्ण गांधी वाग्मय, खण्ड 47, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 394*
4. *दाधीच, नरेश, महात्मा गांधी का चिन्तन, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2014,पृ.सं. 141*
5. *यंग इण्डिया, भाग–3, पृ.सं. 25*
6. *बोस, निर्मल कुमार, स्टडीज इन गांधीजी, इंडियन एसोसिएटेड पब्लिशिंग, कलकता, 1947, पृ.सं. 65*
7. *दुबे, डॉ. अखिलेश्वर प्रसाद, गांधी दर्शन की रूपरेखा, नार्दर्न बुक सेन्टर, नई दिल्ली, 2003, पृ.सं. 78*
8. *यादव, डॉ. डी.एस., राजनीतिक सिद्धान्त और विचार, रजत प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.सं. 57*
9. *दाधीच, नरेश, महात्मा गांधी का चिन्तन, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2014,पृ.सं. 144*
10. books.google.co.in *लोक प्रशासन का अन्य सामाजिक विज्ञानों से सम्बन्ध*

राजस्थान राज्य में स्वास्थ्य योजनाएंः महिला स्वास्थ्य योजनाओं की विवेचना

मोनिका यादव
शोद्यार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय,जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में स्वास्थ्य प्रणाली के सुदृढ़ीकरण में प्रमुख कार्यक्रम संबंधी संघटक हैं– प्रजनन–मातृ नवजात शिशु और किशोर स्वास्थ्य और संक्रामक तथा गैर–संक्रामक रोग। एन.एच.एम. समाज, वहनीय और गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य परिचर्या सेवाओं को सार्वभौमिक पहुंच बनाने की परिकल्पना करता है जो उत्तरदायित्वपूर्ण हों तथा लोगों की आवश्यकता के प्रति संवेदनशील हो।राज्य में महिला एवं बाल विकास से सम्बन्धित योजनाओं का क्रियान्वयन राज्य के विभिन्न विभागों यथा महिला एवं बाल विकास विभाग, चिकित्सा एवं परिवार कल्याण विभाग, सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता विभाग तथा महिला अधिकारिता विभाग आदि द्वारा समन्वित रूप से किया जाता है। राज्य में अभी भी पुरानी परम्पराएँ विद्यमान है जिनके कारण महिलाओं का सामाजिक जीवन ग्रामीण क्षेत्रों में पिछड़ा हुआ है अतः राज्य में मातृत्व मृत्यु दर, नवजात मृत्यु दर, बालिका शिक्षा, बालिका भ्रूण हत्या, बाल विवाह, बालिकाओं से भेदभाव जैसे मुद्दों से निपटना नितान्त आवश्यक है।

संकेताक्षरः *राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन, कुल प्रजनन दर.,लिंगानुपात, परिवार कल्याण एवं जनसंख्या स्थिरीकरण कार्यक्रम, जननी सुरक्षा कार्यक्रम, निःशुल्क दवा एवं अन्य सुविधाएं, समेकित बाल विकास सेवा कार्यक्रम।*

राज्य में महिलाओं एवं बालकों के विकास के लिए विभिन्न राष्ट्रीय तथा राज्य स्तरीय योजनाओं का क्रियान्वयन किया जा रहा है परन्तु शिक्षा के विकास बिना ये सभी अधूरे है क्योंकि शिक्षा का बहुआयामी प्रभाव अन्य सामाजिक क्षेत्रों यथा – स्वास्थ्य, महिला विकास, रोजगार, बाल विकास, श्रम इत्यादि पर पड़ता है। इसको आर्थिक वृद्धि तथा विकास की प्रक्रिया में अत्यधिक महत्वपूर्ण घटक के रूप में भी माना जाता है। शिक्षा से न केवल लोगों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार होता है बल्कि इससे प्रगति के अवसर भी उपलब्ध होते हैं। सरकारी चिकित्सालयों अभी भी संस्थागत सुविधाओं का पूर्ण अभाव है जिसके कारण प्रसूताओं को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है अतः इस योजना की प्रभावोत्पादकता के लिए संस्थागत सुविधाऐं स्थापित कर योग्य विशेषज्ञों एवं कार्मिकों की नियुक्ति की जानी चाहिए तथा महिला साक्षरता को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। जिससे कि पारम्परिक रूप से घरेलू प्रसव के स्थान पर संस्थागत प्रसव में बढ़ोतरी हो सके और राज्य में महिलाए एवं शिशुओं को खुशहाल माहौल मिल सके।

ग्रामीण क्षेत्रों में संसाधनों की कमी की वजह से प्राथमिक स्वास्थ्य हेतु ढ़ांचागत सुविधाओं जैसे–भवनों, कर्मचारियों व रखरखाव का अभाव दिखलायी पड़ता है। ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सुविधाओं की सुचारू रूप से उपलब्धता न होने के कारण यहाँ के अधिकतर व्यक्ति पारंपरिक उपचार पद्धतियों का सहारा लेते हैं जिससे ग्रामीणों में रोगों की जटिलताएं और बढ़ती जाती है।

सन् 2011 की जनगणना के अनुसार इस बार जनसंख्या में 21.44 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। राजस्थान का लिंगानुपात 928 महिलाऐं प्रति 1000 पुरूष है। राज्य के 33 जिलों में से डूँगरपुर का लिंगानुपात सर्वाधित 994 है जबकि धौलपुर का न्यूनतम 846 है। शिशु लिंगानुपात (0 से 6 वर्ष आयु वर्ग) 888 है। राज्य का करीबन आधा बजट शिक्षा, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण, आवास एवं शहरी विकास एवं अनुसूचित जाति एवं जनजाति कल्याण पर खर्च होता है।

राजस्थान में स्वास्थ्य क्षेत्र में 30 मई, 2005 से केन्द्र सरकार का फ्लैगशिप कार्यक्रम एन.आर.एच.एम. (2005–2012) संचालित किया गया जो कि अब एन. एच.एम. (2012–2017) के उपमिशन के रूप में क्रियाशील हैं। इस कार्यक्रम ने एम.एम.आर., आई.एम. आर. तथा टी.एफ.आर. को कम करने में काफी सहायता की है। इसके अतिरिक्त विश्व बैंक की सहायता से रू. 472.28 करोड़ का राजस्थान हैल्थ डवलपमेंट प्रोजेक्ट भी जुलाई, 2004 से राज्य सभी 33 जिलों मे चलाया गया जिसमें रू. 396.85 करोड़ का ऋण विश्व बैंक ने दिया। इस प्रोजेक्ट की अवधि सितम्बर, 2009 तक निर्धारित थी परन्तु इसे मार्च, 2012 तक वृद्धि की गई।11वीं पंचवर्षीय योजना में उत्तम स्वास्थ्य रक्षा सेवाओं के विकास एवं उत्तम स्वास्थ्य रक्षा सेवाएं प्रदान करने पर जोर दिया गया। इस योजना काल में चिकित्सा एवं स्वास्थ्य क्षेत्र में रू. 147762.07 लाख का परिव्यय रखा गया।12वीं पंचवर्षीय योजना (2012–2017) में आयुर्वेद सहित चिकित्सा एवं स्वास्थ्य क्षेत्र में रू. 746699.11 लाख का प्रावधान रखा गया।

राजस्थानः स्वास्थ्य संकेतक : देश में शिशु लिंगानुपात के अलावा अन्य मामलों में प्रगति हुई है परन्तु लक्ष्य पूर्णरूपेण प्राप्त नहीं किये जा सके है। एनआरएचएम के फ्लैगशिप के जरिये किये गये प्रयासों के बावजूद सम्पूर्ण राज्यों मे विसंगति देखने को मिलती है। मातृत्व मृत्यु अनुपात (एम.एम.आर.) स्वास्थ्य सेवा प्रणाली का एक संवेदनशील संकेतक है। एमएमआर के जरिये 15 से 49 वर्ष की प्रजनन आयु की महिलाओं की प्रसव कारणों से प्रति 1 लाख जीवित प्रसव पर मृत्यु को दर्शाया जाता है। वार्षिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण (2011–13) के अनुसार राजस्थान की एमएमआर 244 प्रतिवेदित की गई है जिसे 12वीं पंचवर्षीय योजना में 145 तक लाने का लक्ष्य रखा गया है। यह लक्ष्य प्रसव–पूर्व देखभाल, कुशल दाई का प्रबन्ध तथा आपातकालीन ऑब्सटेटिकल देखभाल से पूरा किया जा सकता है।

बाल मृत्यु दर (आई.एम.आर.) में प्रति 1000 जीवित शिशुओं की 1 वर्ष की आयु से पहले मृत्यु को देखा जाता है जो आबादी में स्वास्थ्य एवं पोषण की स्थिति का एक संवेदनशील सूचक है। राजस्थान में यह 52 प्रतिवेदित है जो कि अधिक है।12वीं पंचवर्षीय योजना में इसे 30 तक लाने का लक्ष्य रखा गया है। जहां तक कुल प्रजनन दर (टी. एम.आर.) का संबंध है, यह इस बात का निर्धारण करती है कि कोई महिला अपनी सम्पूर्ण प्रजनन अवधि के दौरान कितने बच्चों को जन्म दे सकती हैं। राजस्थान में उच्च प्रजनन एक समस्या है जिसके प्रमुख कारण है, अल्पायु में विवाह, बच्चों के जन्म में कम अन्तर, कुशल परियोजनाओं को अभाव आदि। राजस्थान में सी.बी.आर 26.2 तथा टी. एफ.आर. 3.1 है। राज्य में शिशु लिंग दर (आयु समूह 0 से 6 वर्ष) में कमी आई है। कुपोषण एवं रक्त की कमी में कोई खास सुधार नहीं आया है।

उपरोक्त परिस्थितियों से निपटने के लिये राजस्थान में अनेक योजनाएं संचालित की जा रही है,जैसे मुख्यमंत्री बी. पी.एल. जीवन रक्षा कोष, जननी सुरक्षा योजना, मुख्यमंत्री शुभ–लक्ष्मी योजना, मुख्यमंत्री निःशुल्क दवा योजना, मुख्यमंत्री निःशुल्क जॉच योजना, हमारी बेटी एक्सप्रेस, 108 निःशुल्क आपातकालीन एम्बूलेंस सेवाएं, 104 टोल फ्री निःशुल्क चिकित्सा परामर्श सेवा, मोबाईल सर्जिकल यूनिट, प्रैगनेंसी, चाईल्ड ट्रेकिंग एवं स्वास्थ्य सेवाएं प्रबन्ध प्रणाली, धनवंत्री एम्बूलेंस सर्विस योजना, मोबाईल मेडिकल सर्विस, पांच लीटर सरस देशी घी उपहार योजना आदि।

वैश्विक स्तर पर कुल प्रजनन दर 2010–2015 में प्रति महिला 2.5 बच्चों तक पहुँच चुका है जो कि 1990–1995 मे यह दर तीन बच्चों की थी।

चिकित्सा स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण अवसंरचना : राजस्थान राज्य में दिसम्बर, 2016 तक 114 अस्पताल, 579 सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र (सी.एच.सी.) 2,079 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र (पी.एच.सी.), 118 मातृ एवं शिशु कल्याण केन्द्र एवं 14,407 स्वास्थ्य उपकेन्द्र स्थापित किये जा चुके हैं। जनसंख्या स्थिरीकरण सुनिश्चित करने एवं शिशु व मातृ मृत्यु को कम करने के उद्देश्य से राज्य में परिवार कल्याण एवं जनसंख्या स्थिरीकरण कार्यक्रम क्रियान्वित किए जा रहे हैं। राज्य में शिशु मृत्यु दर पर नियन्त्रण एवं गम्भीर बीमारियों से शिशु एवं गर्भवती महिलाओं की सुरक्षा हेतु सघन टीकाकरण कार्यक्रम निरन्तर क्रियान्वित किया जा रहा है।

भारत में ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं की स्थिति

	उपकेन्द्र	प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र	सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र
मानक जनसंख्या/केन्द्र			
सामान्य गांव	5,000	30,000	1,20,000
आदिवासी व पिछड़े गांव	3,000	20,000	80,000

वास्तविक सेवाएं			
औसत जनसंख्या	4,579	27,364	2,14,000
औसत क्षेत्रफल (वर्ग कि.मी.)	22.81	136.31	1067.10
कुल संख्या (31 मार्च 2011)	1,37,311	22,842	3,043
आवश्यक संख्या (जनसंख्या 2011 के अनुसार)	1,58,792	26,022	6,491
कमी (प्रतिशत में)	13.53	12.22	53.12

	उपकेन्द्र	प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र	सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र
कर्मचारी	एक पुरुष स्वास्थ्य कार्यकर्ता, एक महिला स्वास्थ्य कार्यकर्त्री	एक चिकित्साधिकारी+ सामुदायिक स्वास्थ्य अधिकारी+ एक स्वास्थ्य शिक्षा एवं सूचना अधिकारी + स्वास्थ्य सहायक महिला व पुरुष + दवा विशेषज्ञ नर्स + अन्य कर्मचारी	8 विशेषज्ञ डॉक्टर (त्वचा, नेत्र, दन्त, महिला प्रसव, सर्जरी, हृदय रोग, बाल रोग व हड्डी रोग विशेषज्ञ व दो दवा विशेषज्ञ + स्टॉफ नर्स + अन्य कर्मचारी)
सुविधाएं	सरकार द्वारा उपलब्ध करायी गयी किट-ए[1] व किट-बी[2] की व्यवस्था + एक बेड की व्यवस्था	4-6 बेड की व्यवस्था प्रयोगशाला की सुविधाऐं	30 बेड की व्यवस्था + रोगी वाहन + आपरेशन थियेटर + एंबुलेंस + एक्सरे + पैथोलॉजी

किट ए[1] में आयरन, फोलिक एसिड, सेप्ट्रान व विटामिन-ए का घोल होता है।
किट बी[2] में प्रसव से संबंधित दवाएं व सामग्री होती है।

1. उप-केन्द्र: उपकेन्द्र, प्राथमिक स्वास्थ्य परिचर्या प्रणाली तथा समुदाय के बीच सबसे अधिक परिधीय और पहला संपर्क बिन्दु है। उप-केन्द्रों को अंतरवैयक्तिक संपर्क बनाए रखने संबंधी कार्य दिए गए हैं ताकि व्यवहार में परिवर्तन लाया जा सके तथा मातृ एवं बाल स्वास्थ्य, परिवार कल्याण, पोषण, रोग प्रतिरक्षण, अतिसार नियंत्रण तथा संचारी रोग नियंत्रण कार्यक्रमों से संबंधित सेवाएं प्रदान की जा सकें। प्रत्येक उप केंद्र में एक सहायक नर्सधात्री/महिला स्वास्थ्यकर्मी होना अपेक्षित है। राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (एनआरएचएम) के तहत् करार आधार पर एक अतिरिक्तनर्सधात्री का भी प्रावधान है। एक महिला स्वास्थ्य कार्यकर्ता (एलएचवी) को छह उप-केन्द्रों के पर्यवेक्षण का कार्य सौंपा गया है। भारत सरकार एएनएम और एलएचवी के वेतन का भुगतान करती है जबकि पुरुष स्वास्थ्य कर्मी के वेतन का भुगतान राज्य सरकारों द्वारा किया जाता है।

2. प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र (पीएचसी): प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र ग्राम समुदाय और चिकित्सा अधिकारी के बीच पहला संपर्क बिन्दु है। प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र (पीएचसी) की परिकल्पना स्वास्थ्य देखभाल के निवारात्मक और प्रोत्साहक पहलुओं पर बल के साथ-साथ ग्रामीण जनसंख्या को एकी त उपचारात्मक और निवारात्मक स्वास्थ्य देखभाल प्रदान करने के लिए की गई। प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र (पीएचसी) की स्थापना और रखरखाव न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम (एमएनपी) मूलभूत न्यूनतम सेवा (बीएमएस) कार्यक्रम के तहत् राज्य सरकारों द्वारा किया जाता है। अन्य स्टॉफ नियुक्त होते है, इसमें पीएचसी में संविदा आधार पर दो अतिरिक्त स्टाफ नर्सो की नियुक्ति का प्रावधान है। यह केन्द्र 6 उप-केन्द्रों के लिए रेफरल इकाई के रूप में कार्य करता है तथा उसमें रोगियों के लिए 4-6 बिस्तर होते है। पीएचसी के कार्यो में

उपचारात्मक, निवारात्मक, प्रोत्साहक और परिवार कल्याण से संबंधित सेवाएं शामिल है।

3. सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र (सीएचसी): सीएचसी की स्थापना तथा रखरखाव का कार्य एमएनपी/बीएमएस कार्यक्रम के तहत् राज्य सरकार द्वारा किया जा रहा है। न्यूनतम मानकों के अनुसार एक सीएचसी में चार चिकित्सा विशेषज्ञ अर्थात् सर्जन, चिकित्सक, स्त्री रोग विशेषज्ञ तथा बाल रोग विशेषज्ञ नियुक्त होते है, जिनकी सहायता के लिए 21 पैराचिकित्सक तथा अन्य स्टॉफ इण्डियन पब्लिक हैल्थ स्टैण्डर्डस् (आईपीएचएस) के मानकों के अनुसार होते हैं। इसमें एक आपरेशन थिएटर, एक्स–रे, प्रसव कक्ष और प्रयोगशाला सुविधाओं के साथ अंतरंग 30 बिस्तर होते है। यह 4 पीएचसी के लिए रेफरल केन्द्र के रूप में कार्य करता है साथ में प्रसूति देखभाल तथा विशेषज्ञ परामर्श के लिए सुविधाएं भी प्रदान करता है।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन (एन.एच.एम.) : राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन (एन.एच.एम.) व्यक्तिगत, घरेलू, समुदाय और स्वास्थ्य प्रणाली के समीक्षकों के स्तर पर श्रृंखला के माध्यम से प्रभावी स्वास्थ्य के प्रावधानों को सुनियोजितकरने के लिए एक राष्ट्रीय प्रयास है। प्रथम चरण में राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन वर्ष 2005 में प्रारम्भ हुआ एवं वर्ष 2012 में पूर्ण हुआ और अब अगले चरण के लिए मिशन की अवधि को वर्ष 2017 तक के लिए बढ़ा दिया गया है। राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन (एन.यू. एच.एम.) तथा राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (एन.आर. एच.एम.) अब राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन के उपमिशन के रूप मे कार्यरत रहेंगे। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में स्वास्थ्य प्रणाली के सुदृढ़ीकरण में प्रमुख कार्यक्रम संबंधी संघटक हैं– प्रजनन–मातृ नवजात शिशु और किशोर स्वास्थ्य और संक्रामक तथा गैर–संक्रामक रोग। एन.एच.एम. समाज, वहनीय और गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य परिचर्या सेवाओं को सार्वभौमिक पहुंच बनाने की परिकल्पना करता है जो उत्तरदायित्वपूर्ण हों तथा लोगों की आवश्यकता के प्रति संवेदनशील हो।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन (एन.एच.एम.) के उद्देश्य :

- शिशु मृत्यु दर व मातृ मृत्यु दर में कमी लाना।
- स्वास्थ्य सेवाओं को प्रभावित करने वाले अन्य कारकों, विशेषकर महिलाओं व बच्चों के स्वास्थ्य के लिए जैसे–स्वच्छता, पानी, टीकाकरण, पोषण इत्यादि सेवाओं को सभी जगह उपलब्ध करना।
- स्थानीय महामारियों सहित संक्रामक एवं असंक्रामक रोगों की रोकथाम और नियन्त्रण।
- समेकित प्राथमिक चिकित्सा तक पहुँच बनाना।
- जनसंख्या स्थिरीकरण, लिंग और जनसांख्यिकी संतुलन सुनिश्चित करना।
- ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं का सुदृढ़ीकरण करना व वंचित वर्ग सहित जन–जन तक गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सेवाओं को पहुँचाना।
- स्वस्थ जीवन शैली को बढ़ाना।

एन.एच.एम. योजना के अन्तर्गत इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विभिन्न गतिविधियों के 5 मुख्य उप बिन्दु निम्नलिखित हैं:–

- एन.आर.एच.एम. एवं आर.एम.एन.सी.एच. प्लस ए.
- एन.यू.एच.एम.
- राष्ट्रीय रोग नियन्त्रण कार्यक्रम
- चोट व आघात सहित गैर संचारी रोग नियन्त्रण कार्यक्रम
- बुनियादी रख रखाव

एन.एच.एम. के अर्न्तगत वर्षवार कोष आवंटन एवं व्यय

क्र.स.	वित्तीय वर्ष	कुल आंवटित राशि (करोड़ में)	वास्तविक व्यय राशि (करोड़ में)
1.	2012.13	1545.61	1176.32
2.	2013.14	1796.62	1447.08
3.	2014.15	2190.46	1784.54
4.	2015.16	2515.50	1826.98
5.	2016.17	2454.38	1280.16*

*upto 31 December 2016

कुपोषण की समस्या : शरीर के लिए आवश्यक सन्तुलित आहार लम्बे समय तक नहीं मिलना ही कुपोषण का कारण है। कुपोषण के कारण बच्चों और महिलाओं में रोग प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है, जिससे वे आसानी से कई तरह की बीमारियों के शिकार बन जाते है अतः कुपोषण की जानकारियां होना अत्यन्त जरूरी है। कुपोषण प्रायः पर्याप्त संतुलित आहार के अभाव में होता है। बच्चों और स्त्रियों में रक्ताल्पता या घेंघा रोग अथवा बच्चों में सूखा रोग या रतौंधी और यहां तक कि अंधत्व भी कुपोषण के ही खतरनाक परिणाम है। इसके अलावा ऐसे अनेक रोग है जिनका कारण अपर्याप्त या असंतुलित भोजन होता है। भारत में हर तीन गर्भवती महिलाओं में से एक कुपोषण का शिकार होने के कारण खून की कमी, अर्थात् रक्ताल्पता की बीमारी से ग्रस्त हो जाती है। हमारे समाज मे स्त्रियां अपने स्वयं के खान-पान पर ध्यान नहीं देती है। जबकि गर्भवती स्त्रियों को ज्यादा पौष्टिक भोजन की आवश्यकता होती है। उचित पोषण के अभाव में गर्भवती माताएं स्वयं तो रोगग्रस्त होती ही है साथ ही होने वाले बच्चे को भी कमजोर और रोगग्रस्त बनाती हैं।

राजस्थान सरकार की फ्लैगशिप योजनाऐं: राज्य की जनता, विशेषकर कमजोर वर्ग के स्वास्थ्य के स्तर में सुधार हेतु, राज्य सरकार द्वारा चिकित्सा के क्षेत्र पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। राज्य सरकार, संक्रामक एवं अन्य रोगों के नियन्त्रण एवं उन्मूलन तथा राज्य में उपचारात्मक एवं निवारक सेवाएँ उपलब्ध कराकर लोगों को मुख्य धारा में लाने के विभिन्न प्रयास किए गए हैं। चिकित्सा एवं स्वास्थ्य विभाग, राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति के अनुसार चिकित्सा संस्थाओं का संरचनात्मक विकास एवं सुदृढ़ीकरण कर, एक सुनियोजित तरीके से ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में प्रत्येक व्यक्ति को स्वास्थ्य सुविधाएँ उपलब्ध कराने के कार्य किये जा रहे है। राजस्थान में चिकित्सा, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग द्वारा ऐसी अनेक योजनाएँ संचालित है जिसमें कुछ योजनाओं में केन्द्र सरकार का सहयोग प्राप्त होता है। परन्तु आम जनता के स्वास्थ्य एवं सामाजिक-आर्थिक स्थिति में वृद्धि करने के दृष्टि से सरकार द्वारा अपनी स्वयं की कई योजनाएँ संचालित की जा रही है जिनका सीधा लाभ अन्य व्यक्तियों के साथ-साथ महिलाओं को भी प्राप्त होता है। योजनाओं का संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार हैः-

- **मुख्यमंत्री निःशुल्क दवा योजना** :राज्य सरकार द्वारा बीमारियों का उपचार आम आदमी तक पहुँचाने के लिए तथा स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार के रूप में दिनांक 2 अक्टूबर, 2011 से पूरे प्रदेश में ''मुख्यमंत्री निःशुल्क दवा योजना'' प्रारम्भ की गई थी। इस योजना का उद्देश्य राजकीय चिकित्सालयों में आने वाले सभी अन्तरंग एवं बहिरंग रोगियों को लाभ पहुँचाना है। इस योजना के अन्तर्गत चिकित्सा महाविद्यालय, जिला चिकित्सालय, सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों तथा उप स्वास्थ्य केन्द्रों पर आने वाले सभी अन्तरंग एवं बहिरंग रोगियों को अधिकांशतः प्रयोग होने वाली आवश्यक दवाइयाँ निःशुल्क उपलब्ध करवायी जाती है। योजना के क्रियान्वयन के लिए राजस्थान मेडिकल सर्विसेज कॉर्पोरेशन (आर.एम.एस.सी.) का गठन किया गया है। राज्य के सभी सरकारी चिकित्सा संस्थानों में दवा वितरण करने के लिए 33 जिला मुख्यालयों पर जिला औषधि भण्डार गृह (डी.डी. डब्ल्यू.) संचालित किए गए हैं। दवाओं की गुणवत्ता की जाँच ड्रग टेस्टिंग लैबोरेट्रीज द्वारा सुनिश्चित की जा रही है। राजकीय चिकित्सा संस्थानों में संचालित निःशुल्क दवा वितरण केन्द्रों पर उपलब्ध करवायी जा रही दवाइयों की सूची प्रदर्शित की गई है। आउटडोर रोगियों हेतु दवा वितरण केन्द्र के समयानुसार तथा इनडोर एवं आपातकालीन मरीजों के लिए दवा की उपलब्धता 24 घण्टे सुनिश्चित की गई है। स्थानीय क्रय के अन्तर्गत चिकित्सालय में आवश्यकता होने पर वार्षिक बजट का 10 प्रतिशत स्थानीय स्तर पर दवा क्रय हेतु किया जा सकता है।

इस योजना के तहत् 37 ड्रग कैन्सर, 54 ड्रग हॉर्ट रोग, 33 ड्रग मधुमेह तथा 20 ड्रग अस्थमा रोग के लिए उपलब्ध है। दवाओं के स्टॉक के प्रबन्धन हेतु जिला औषधि भण्डार को कम्प्यूटरीकृत कर विशेष ऑनलाइन मोनिटरिंग प्रणाली स्थापित की गई है, जिसमें सभी चिकित्सा संस्थानों की सूची के साथ-साथ दी जाने वाली दवाइयों की सूची भी उपलब्ध है। साथ ही इसके माध्यम से निविदा करने, इनडेन्ट भेजने, चिकित्सा संस्थानों पर दवाईयों के उपभोग की स्थिति जानने, क्रय आदेश जारी करने, एक्सपाइरी डेट पता लगाने, दवाइयों की गुणवत्ता सुनिश्चित करने एवं अवमानक घोषित औषधियों के बारे में सूचना प्रेषित करने आदि में मदद मिलती है तथा औषधियों का समुचित उपयोग सुनिश्चित होता है। वर्ष 2015-16 में दिसम्बर, 2015 तक योजना में 224.65 करोड़ की राशि खर्च की जा चुकी है।

- **मुख्यमंत्री निःशुल्क जाँच योजना** : राज्य सरकार ने राजकीय अस्पतालों में सम्पूर्ण उपचार उपलब्ध कराने के उद्देश्य से जनहित में एक महत्वपूर्ण स्वास्थ्य सुरक्षा योजना ''मुख्यमंत्री निःशुल्क जाँच योजना'' सभी वर्गों के लिए चरणबद्ध तरीके से लागू की है।

- **मुख्यमंत्री बीपीएल जीवन रक्षा कोष योजना** : 1 जनवरी, 2009 से मुख्यमंत्री बीपीएल जीवन रक्षा कोष योजना प्रारम्भ की गई। इस योजना का उद्देश्य निर्धारित श्रेणियों के व्यक्ति या परिवार के सदस्यों को समस्त राजकीय चिकित्सालयों के इन्डोर एवं आउटडोर में निःशुल्क उपचार सुविधा उपलब्ध कराना है। योजनानुसार आवश्यकता पड़ने पर निःशुल्क इलाज हेतु एम्स, नई दिल्ली अथवा पीजीआई, चंडीगढ़ में रैफर भी किया जाता है। शुरू में योजना के अन्तर्गत केवल बीपीएल परिवारों को ही शामिल किया गया था परन्तु समय–समय पर अन्य नई श्रेणियों के परिवारों/व्यक्तियों को भी योजना में सम्मिलित कर लिया गया है।

- **मुख्यमंत्री बालिका संबल योजना** : राज्य में ऐसे कोई दम्पत्ति जिनके पुत्र नहीं है और एक या दो बालिका होने पर दिनांक 1.4.2007 से पूर्व अपना नसबंदी ऑपरेशन करा चुके है तो उन्हें मुख्यमंत्री बालिका सम्बल योजना के अन्तर्गत 5 वर्ष तक की आयु (बालिका के जन्म दिनांक से दम्पत्ति के नसबंदी दिनांक तक) वाली प्रत्येक बालिका के नाम से 10 हजार रूपयें की राशि यू.टी.आई. म्यूचुअल फण्ड की सी.सी.पी. योजना के अन्तर्गत जमा करवाते हुए उन्हें बॉण्ड उपलब्ध करवाये जायेंगें ।इस योजना के पीछे यह उद्देश्य है कि कन्या जन्म को प्रोत्साहन मिले।

- **जननी सुरक्षा योजना** : मातृ मृत्यु दर एवं शिशु मृत्यु दर में कमी लाने हेतु व संस्थागत प्रसव में वृद्धि हेतु यह योजना लागू की गई। इस योजना के अन्तर्गत प्रसूताओं को सरकारी चिकित्सालय में प्रसव कराने पर आर्थिक सहायता देय है।

योजना के लाभ

- ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं को संस्थागत प्रसव कराने पर राशि रूपये 1,400 रू नकद सहायता और राशि रू. 300/– आशा सहयोगिनी को संस्थागत प्रसव के प्रोत्साहन व राशि रू. 300/– प्रसव पूर्व सेवाएँ प्रदान कराने पर देय होंगे।

- शहरी क्षेत्र की महिलाओं को संस्थागत प्रसव कराने पर राशि रू. 1,000/– की नकद सहायता और राशि रू. 200/– आशा सहयोगिनी को संस्थागत प्रसव के प्रोत्साहन व राशि रू. 200/– प्रसव पूर्व सेवाएँ प्रदान कराने पर देय होंगे।

- बीपीएल परिवार की सभी महिलाओं को घरेलू प्रसव पर राशि 500 रू देय होंगे।

- निःशुल्क दवाइयाँ और अन्य उपयोग सामग्री।

- सभी आवश्यक जाँचें और रक्त सुविधा निःशुल्क उपलब्ध।

- निःशुल्क भोजन आदि की सुविधाऐं।

- निःशुल्क परिवहन (घर से स्वास्थ्य संस्थान तक, रैफर किये जाने पर उच्च संदर्भित चिकित्सा संस्थान तक व वापस घर तक)

योजना की पात्रताः इस योजना में वे सभी वर्ग महिलाऐं जो सरकारी चिकित्सा संस्थानों अथवा मान्यता प्राप्त निजी चिकित्सालयों में प्रसव करवाती है योजना के लाभ की अधिकारी है तथा बीपीएल परिवार की महिलाऐं जिनका घरेलू प्रसव होता है।

- **राजस्थान जननी–शिशु सुरक्षा योजना** : मातृ मृत्यु दर तथा शिशु मृत्यु दर कम करने के उद्देश्य से राज्य सरकार के सहयोग से 'राजस्थान जननी–शिशु सुरक्षा योजना'का 12 सितम्बर, 2011 को शुभारंभ किया गया है, जिसके अन्तर्गत सभी प्रसूताओं एवं बीमार नवजात शिशुओं (30 दिवस तक) को सरकारी चिकित्सा संस्थानों में सभी प्रकार की सेवाऐं निम्नानुसार निःशुल्क उपलब्ध करायी जाती हैः–

  प्रसूताओं के लिए : निःशुल्क संस्थागत प्रसव,आवश्यकतानुसार निःशुल्क सिजेरियन ऑपरेशन द्वारा प्रसव,निःशुल्क दवाईयाँ एवं अन्य उपयोगी सामग्री,निःशुल्क जाँच सुविधाऐं,निःशुल्क भोजन,निःशुल्क रक्त सुविधा,निःशुल्क परिवहन सुविधा,यूजर चार्जेज से छूट।

  बीमार नवजात शिशुओं के लिए (30 दिवस की उम्र तक)ः निःशुल्क ईलाज,निःशुल्क दवाईयाँ एवं अन्य आवश्यक सामग्री,निःशुल्क जाँच सुविधा,निःशुल्क रक्त सुविधा,निःशुल्क परिवहन सुविधा,यूजर चार्जेज से छूट।

- **नियमित टीकाकरण** : टीकाकरण कार्यक्रम के अन्तगर्त छः जानलेवा बीमारियों यथा– पोलियो, गलघोंटू, काली खांसी, नवजात शिशुओं में धनुर्वात (टिटेनस), खसरा, क्षय रोग, बच्चों में होने वाले गंभीर प्रकार के जैसे हेपेटाईटिस–बी एवं हिब (हिमोफिलस इनफ्लूयन्जा बी), निमोनिया, मस्तिष्क ज्वर से सुरक्षा प्रदान करने के लिये निवारक टीके लगाये जाते है। इस योजना के अन्तर्गत समस्त गर्भवती महिलाऐं एवं 0 से 1 वर्ष तक के शिशु तथा 1 से 16 वर्ष तक की आयु के बच्चें सम्मिलित है।

योजना का उद्देश्य– बच्चों का जानलेवा बीमारियों से बचाव तथा गर्भवती महिलाओं का टिटेनस से बचाव।

योजना के लाभ : बच्चों को पोलियो, गलघोंटू, काली खांसी, टिटेनस, खसरा एवं क्षय रोग जैसी जानलेवा बीमारियों से बचाना,गर्भवती महिलाओं को टीटी के टीके द्वारा टिटेनस से बचाव,हेपेटाईटिस बी एवं हिब से सुरक्षा,निमोनिया एवं मस्तिष्क ज्वर से सुरक्षा के टीके,विटामिन–ए का घोल पिलाना।

- ''108'' **टोल फ्री एम्बुलेन्स सेवा योजना** : आपातकालीन रोगियों को समुचित चिकित्सा सुविधा मुहैया करवाने के उद्देश्य से राज्य में सरकार द्वारा यह योजना सितम्बर, 2008 से शुरू की गई थी। वर्तमान में 741 एम्बुलेंस राज्य के सभी 33 जिलों एवं 249 ब्लॉक्स/पंचायत समितियों में कार्यरत हैं। वर्ष 2015–16 में दिसम्बर, 2015 तक इस योजना के अन्तर्गत कुल 2,78,756 व्यक्तियों को मेडिकल, 11,498 लोगों को पुलिस सहायता एवं 5 लोगों को फायर सहायता, 1,49,743 गर्भवती महिलाओ को संस्थागत प्रसव हेतु रैफरल सेवा प्रदान की गई है।

- **'104' टोल फ्री सेवा** : इस सेवा के अन्तर्गत किसी भी फोन से टोल फ्री नम्बर ''104'' डायल कर राज्य में व्यक्तियों को निःशुल्क चिकित्सा सलाह दी जा रही है। 31 दिसम्बर, 2015 तक इस योजना के अन्तर्गत 24.41 लाख कॉल को सेवाएँ प्रदान की जा चुकी है। अब इस योजना का उपयोग रैफरल ट्रांसपोर्ट में ''जननी एक्सप्रेस'' के रूप किया जा रहा है। इसके अलावा इस सेवा के माध्यम से शिकायत भी दर्ज की जाती है।

- **बी.पी.एल. 5 लीटर देशी घी योजना** : यह योजना राजस्थान सरकार द्वारा सभी जिलो में 1 मार्च, 2009 से प्रारम्भ की गई है। इस योजना के अन्तर्गत बी.पी.एल. प्रसूताओं को प्रथम प्रसव राजकीय संस्थागत पर होने की स्थिति मे प्रसवोपरान्त अस्पताल से छुट्टी के समय 5 लीटर सरस घी का कूपन उपहार स्वरुप प्रदान किया जाता है, जिसके अनुसार लाभार्थी को 15 दिन के अन्दर घी प्राप्त करना होता है। इस योजना में वर्ष 2015–16 में दिसम्बर, 2015 तक 19,502 बी.पी.एल. प्रसूताएँ लाभान्वित हुई हैं।

- **जननी एक्सप्रेस** : योजनान्तर्गत 600 जननी एक्सप्रेस वाहनों का आवंटन चिकित्सा संस्थान पर इस प्रकार किया गया है, जिससे कि वे 2 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों के क्षेत्र में निःशुल्क परिवहन सेवा उपलब्ध करा सकें। इन वाहनों द्वारा वर्ष 2015–16 में माह दिसम्बर, 2015 तक 44,246 गर्भवती महिलाओं को घर से अस्पताल एवं 1,07,513 को अस्पताल से घर तक रैफरल ट्रांसपोर्ट प्रदान किया गया है। वर्ष 2015–16 में दिसम्बर, 2015 तक 8,034 नवजात शिशुओं को घर से अस्पताल एवं 11,877 नवजात शिशुओं को अस्पताल से घर तक रैफरल ट्रांसपोर्ट प्रदान किया गया अब इस योजना का उपयोग रैफरल ट्रांसपोर्ट में ''जननी एक्सप्रेस'' के रूप किया जा रहा है। इसके अलावा इस सेवा के माध्यम से शिकायत भी दर्ज की जाती है।

ग्रामीण स्वास्थ्य सुविधाओं के व्यापक प्रसार हेतु राजस्थान में राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन में वित्तीय वर्ष 2015–16 के बजट अनुमान कुल 1810 करोड़ रूपये किये गए जो संशोधित बजट में घटकर 1674.58 करोड़ रूपये हो गया। इसके अलावा 2016–17 के बजट अनुमान में 2015–16 के बजट अनुमान की तुलना में इस राशि में लगभग 12 प्रतिशत की कमी की गयी है।वर्ष 2015–16 के बजट अनुमान में 9416.27 करोड़ रूपये आवंटित किये गये थे जो संशोधित बजट में घटकर 8241.40 रह गए। इससे ये पता चलता है कि जितनी राशि आवंटित हो रही है सरकार उतना खर्च नहीं कर रही है। इसके अलावा वित्तीय वर्ष 2016–17 के बजट अनुमान में 2015–16 के संशोधित बजट की तुलना में 15.73 प्रतिशत की बढ़ोतरी की गयी है।वित्तीय वर्ष 2016–17 के दौरान, 2 उप स्वास्थ्य केन्द्रों को प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों में एवं 8 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों को सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रो में क्रमोन्नत किया गया है। 5 नवीन प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र स्वीकृत किए गए हैं एवं चिकित्सालय/सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों में 240 शैय्याओं की स्वीकृति दी गई है।

''मुख्यमंत्री निःशुल्क दवा योजना'' के अन्तर्गत सभी अन्तरंग एवं बहिरंग रोगियों को सामान्यतया प्रयोग आने वाली आवश्यक दवाईयाँ निःशुल्क उपलब्ध करवाई जा रही हैं। इस योजना के अन्तर्गत वर्ष 2016–17 में दिसम्बर, 2016 तक रू. 345.69 करोड़ की राशि व्यय की जा चुकी है।राजस्थान सरकार द्वारा ग्रामीण क्षेत्र की सभी स्कूल जाने वाली कक्षा–6 से 12 तक की किशोरी बालिकाओं एवं बी.पी.एल. परिवारों की स्कूल नहीं जाने वाली 10 से 19 वर्ष तक की किशोरियों को निःशुल्क सैनेटरी नैपकिन्स उपलब्ध कराने की योजना प्रारम्भ की गई है। मुख्यमंत्री निःशुल्क जांच योजना के अन्तर्गत दिसम्बर, 2016 तक 13.65 करोड़ जांचें की जा चुकी हैं।

परिवार कल्याण : जनसंख्या स्थिरीकरण सुनिश्चित करने एवं शिशु व मातृ मृत्यु को कम करने के उद्देश्य से राज्य में परिवार कल्याण एवं जनसंख्या स्थिरीकरण कार्यक्रम क्रियान्वित किए जा रहे हैं। वर्ष 2016–17 में दिसम्बर, 2016 तक लगभग 1,96,238 नसबन्दी ऑपरेशन किए गए एवं 4,27,350 लूप व 1,58,036 पी.पी.आई. लूप लगाई गई। इसके अतिरिक्त 3,82,882 ओ.पी. यूज़र्स एवं 5,04,174 सी.सी. यूज़र्स को सेवाएं दी गई हैं। राज्य में वर्तमान में मातृ मृत्यु अनुपात (एम.एम.आर.) 208 प्रति लाख जीवित जन्म (ए.एच.एस. 2012–13) तथा शिशु मृत्यु दर 43 प्रति हजार जीवित जन्म (एस.आर. एस. 2015) है। शिशु मृत्यु दर (आई.एम.आर.) पर नियन्त्रण एवं गम्भीर बीमारियों से शिशु एवं गर्भवती महिलाओं की सुरक्षा हेतु राज्य में सघन टीकाकरण कार्यक्रम निरन्तर क्रियान्वित किया जा रहा है।

राज्य में शिशु मृत्यु दर एवं प्रसव के दौरान उच्च मातृ मृत्यु दर को कम करने के लिए तथा गर्भवती महिलाओं एवं नवजात शिशुओं को निःशुल्क दवा एवं अन्य सुविधाऐं प्रदान करने के लिए केन्द्र के सहयोग से राज्य सरकार द्वारा राजस्थान जननी शिशु सुरक्षा योजना प्रारम्भ की गई है। इस योजना के अन्तर्गत निःशुल्क दवा, उपभोग्य, प्रयोगशाला जाँच, भोजन, रक्त सुविधा तथा यातायात की सुविधा आदि उपलब्ध करवाई जा रही है। वित्तीय वर्ष 2016–17 में दिसंबर, 2016 तक 12.98 लाख गर्भवती महिलाओं को निःशुल्क दवा, 9.28 लाख गर्भवती महिलाओं को निःशुल्क जांच, 7.97 लाख गर्भवती महिलाओं को निःशुल्क गर्म भोजन, 4.54 लाख गर्भवती महिलाओं को निःशुल्क परिवहन एवं 43,101 गर्भवती महिलाओं को निःशुल्क रक्त सुविधा प्रदान की गई है। टीकाकरण कवरेज बढ़ाने के लिए, मातृ व शिशु स्वास्थ्य एवं पोषाहार (एम.सी.एच.एन.) दिवस नियमित रूप से मनाए जा रहे हैं। वर्ष 2016–17 में दिसम्बर, 2016 तक 5. 53 लाख मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य एवं पोषण सत्र आयोजित किए गए हैं।

राज्य में महिलाओं एवं बालकों के विकास के लिए विभिन्न राष्ट्रीय तथा राज्य स्तरीय योजनाओं का क्रियान्वयन किया जा रहा है परन्तु शिक्षा के विकास बिना ये सभी अधूरे है क्योंकि शिक्षा का बहुआयामी प्रभाव अन्य सामाजिक क्षेत्रों यथा – स्वास्थ्य, महिला विकास, रोजगार, बाल विकास, श्रम इत्यादि पर पड़ता है। इसको आर्थिक वृद्धि तथा विकास की प्रक्रिया में अत्यधिक महत्वपूर्ण घटक के रूप में भी माना जाता है। शिक्षा से न केवल लोगों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार होता है बल्कि इससे प्रगति के अवसर भी उपलब्ध होते हैं।

सरकारी चिकित्सालयों अभी भी संस्थागत सुविधाओं का पूर्ण अभाव है जिसके कारण प्रसूताओं को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है अतः इस योजना की प्रभावोत्पादकता के लिए संस्थागत सुविधाऐं स्थापित कर योग्य विशेषज्ञों एवं कार्मिकों की नियुक्ति की जानी चाहिए तथा महिला साक्षरता को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। जिससे कि पारम्परिक रूप से घरेलू प्रसव के स्थान पर संस्थागत प्रसव में बढ़ोतरी हो सके और राज्य में महिलाएं एवं शिशुओं को खुशहाल माहौल मिल सके।

ग्रामीण क्षेत्रों में संसाधनों की कमी की वजह से प्राथमिक स्वास्थ्य हेतु ढ़ांचागत सुविधाओं जैसे–भवनों, कर्मचारियों व रखरखाव का अभाव दिखलायी पड़ता है। ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सुविधाओं की सुचारू रूप से उपलब्धता न होने के कारण यहाँ के अधिकतर व्यक्ति पारंपरिक उपचार पद्धतियों का सहारा लेते हैं जिससे ग्रामीणों में रोगों की जटिलताएं और बढ़ती जाती है।

स्वास्थ्य मानव जीवन की एक अनमोल सम्पत्ति है। मनुष्य के जीवन और उसकी खुशी के लिए स्वास्थ्य से ज्यादा महत्वपूर्ण किसी अन्य वस्तु की कल्पना कर पाना कठिन है। मानव जीवन में स्वास्थ्य के महत्व को स्वीकारते हुए संविधान में इसे राज्य सूची में शामिल किया गया है। यहाँ राज्य का यह दायित्व है कि सार्वभौम स्वास्थ्य सेवाओं तक सबकी पहुँच हो तथा भुगतान असामर्थ्यता की वजह से किसी को भी स्वास्थ्य सेवाओं से वंचित न होना पड़े। राजस्थान राज्य में सरकार द्वारा इस प्रकार के प्रयास किये जा रहे है जिनमें अभी और सुधार की आवश्यकता है ताकि राज्य की स्वास्थ्य सेवाओं में बेहतर विकास हो सके।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *भारत की जनगणना 2011*
2. *वार्षिक प्रगति प्रतिवेदन चिकित्सा एवं स्वास्थ्य विभाग, राजस्थान 2015–16*
3. *वार्षिक प्रगति प्रतिवेदन महिला एवं बाल विकास विभाग, राजस्थान 2015–16*
4. *आर्थिक समीक्षा 2016–17, आर्थिक एवं सांख्यिकी विभाग, राजस्थान।*
5. *क्रॉनिकल, दिसम्बर, 2016*
6. *क्रॉनिकल, जनवरी, 2017*
7. *कुरूक्षेत्र, अक्टूबर, 2008*
8. *वार्षिक प्रगति प्रतिवेदन 2015–16, महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली (*वेबसाइटः www.wcd.nic.in*)*

9. हैल्थ एण्ड फैमेली वेलफेयर इन्डीकेटर्स इन इण्डिया, 2015, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2015

10. भारत 2016, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

11. प्रगति प्रतिवेदन 2015–16, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

12. प्रशासनिक प्रगति प्रतिवेदन वर्ष 2015–16, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य विभाग, राजस्थान सरकार, जयपुर।

13. आर्थिक समीक्षा 2015–16, आर्थिक एवं सांख्यिकी निदेशालय तथा आयोजना विभाग, राजस्थान सरकार, जयपुर।

14. प्रशासनिक प्रतिवेदन एवं प्रगति विवरण 2015–16, महिला एवं बाल विकास विभाग, राजस्थान।

15. प्रशासनिक प्रगति प्रतिवेदन वर्ष 2015–16, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य विभाग, राजस्थान सरकार, जयपुर।

राजस्थान की लोकदेवी श्री आवड़माता

डॉ. भंवर सिंह
बाड़मेर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

भारत में शक्तिआराधना की परम्परा प्राचीन काल से रही हैं। माड़धरा में भाटी राजवंश की सत्ता लोकदेवी श्री आवड़माता के आर्शीवाद से 8वीं – 9वीं शताब्दी ईस्वी में स्थापित हुई थी। जिसे भाटी राजवंश ने श्री आवड़माता को अपनी 'कुलदेवी' के रूप में प्रतिष्ठापित किया । आवड़माता को हिंगुलाज माता का अवतार माना जाता है। वे लोकदेवी के रूप में बावन नामों से यहां विख्यात हुई। उनका भारत–पाक सीमा पर स्थित 'तन्नोटराय' देवी के नाम से विश्व विख्यात मंदिर है।श्री आवड़ माता का कृतित्व एवं उनके प्रतीक मंदिर ,मेले , ओरण , भजन , प्रवाड़े और लोक साहित्य हमें और हमारी भावी पीढ़ियों को युगों–युगों तक सांस्कृतिक समरसता , धार्मिक उत्थान एवं राष्ट्रोत्थान हेतु प्रेरित करते रहेंगे।

संकेताक्षर : *मातृदेवी, लोकदेवी, श्री आवड़ माता, आईनाथ, भादरीयाराय, तन्नोटराय, सुगनचिड़ी, सामरिक सुरक्षा, सांस्कृतिक समन्वय, पर्यावरण संरक्षण, कामना पूरक देवी ।*

भारत में मातृदेवी की पूजा–परम्परा के साक्ष्य पूर्व–मध्यपाषाण कालीन स्थल बेलन घाटी (इलाहबाद) से प्राप्त अस्थि – निर्मित मातृदेवी की मूर्ति[1] एवं सिन्धु सभ्यता स्थल मोहन जो दड़ो एवं हड़प्पा[2] से प्राप्त मातृदेवी की मूर्तियों के रुप में मिले है। यहाँ प्राचीन काल से ही नारी उर्वराक्तिलोक आस्था एवं उन्नति का केन्द्र रही है। भारत के बाहर मेसोपोटामिया, मिश्र, एशिया माइनर, सीरिया, क्रीट आदि पुरास्थलों से भी बहुसंख्यक नारी मूर्तियाँ प्राप्त हुई है। इससे स्पष्ट है कि मातृदेवी की उपासना अत्यंत प्राचीन काल में संसार के बहुत बड़े भाग में की जाती थी। वैदिक युग में पृथ्वी, अदिति, उषा, सरस्वती, लक्ष्मी आदि नाम से देवी को प्रतिष्ठित पाते है।[3] महाकाव्यकाल में देवी दुर्गा, विन्ध्यवासिनी, महिषासुर मर्दिनी, यशोदा की स्तुति की गई है।[4] देवी को सृष्टिपालन तथा संहार की शक्तिभूता, सनातनी देवी, गुणों का आधार तथा गुणमयी बताया गया है। मार्कण्डेय पुराण में दुर्गा की कथा एवं स्तुति से सम्बधित 'दुर्गासप्तशती' अंश है जिसका पाठ नवरात्र के दिनों में अत्यन्त श्रद्धापूर्वक प्राचीन काल से आज तक किया जाता रहा है।

इस प्रकार देवी की उपासना एवं पूजा प्रागैतिहासिक काल से लेकर आज तक अबाध रुप से होती आ रही है। देवी की उपासना मुख्यतः तीन रूपों में की जाती हैः

1. शांत या सौम्य रुप – उन्नति एवं विकास व उत्थान हेतु।
2. उग्र या प्रचण्ड रुप – आसुरी शक्तियों के विनाश हेतु या बाधा निवारण हेतु।
3. कामप्रधान रुप– आमोद–प्रमोद एवं वंश वृद्धि या उर्वरा शक्ति हेतु।

राजस्थान में भी शक्तिउपासना के रूप में प्राचीन काल से ही मातृदेवी की पूजा के प्रमाण मिलते है। यथाः– सरस्वती, दृषद्वति, आहड़, रंगमहल, रेढ़, बैराठ इत्यादि पुरास्थलों से इसकी पुष्टि होती है। यहाँ के यौधेय शासक (बीकानेर – गंगानगर क्षेत्र) चामुण्डा तथा महिषासुर मर्दिनी के उपासक थे।[4] पूर्व मध्यकालीन अनेक शिलालेखों में कतिपय देवी स्तुति के उद्धरण इसके प्रमाण है– सांमोली शिलालेख (646ई.), बुचकल अभिलेख (815 ई.), जगत का लेख (960 ई.) और

जगत का स्तंभलेख (1172 ई.) आदि। इससे स्पष्ट हैकि नारी शक्ति उस समय एक देवी के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी। तत्कालीन युग धर्म, बल, पुरूषार्थ और यद्ध का था इसलिए युद्ध प्रिय जातियों (क्षत्रिय वर्ण) ने शक्तिको अपनी प्रमुख आराध्य देवी माना तो शिक्षा–दीक्षा में प्रवीण ब्राह्मण वर्ण ने सरस्वती को और वैश्य वर्ण ने लक्ष्मी को अपनी आराध्य देवी के रुप में प्रतिष्ठापित किया। पूर्वमध्ययुग में यहां मुख्यतः राजपूत शासकों का शासन था। जिसमें चौहान, चालुक्य, परमार, प्रतिहार, गुहिल, भाटी और कच्छवाहा वंश मुख्य थे। जिनकी शक्ति में अधिकाधिक मान्यता होने के कारण देवी को अपनी–अपनी कुलदेवी के रुप में संस्थापित कर लिया।

राजस्थान के विभिन्न राजवंशों की कुलदेवियाँ निम्नानुसार हैं[5]:

राजवंश	कुलदेवी	राजवंश	कुलदेवी
प्रतिहार	चामुण्डा माता	झाला	आद माता
गौड़	कामेही माता	बैंस	काली माता
चौहान	शाकम्भरी माता	दहिया	कैवाय माता
दाहिमा	दधि माता	सिसोदिया	बाण माता
कच्छवाहा	जमुवाय माता / अन्नपूर्णा देवी	यादव	कैलादेवी
भाटी	स्वांगिया माता / आवड़ माता	राठैड	नागणैच्चियां माता

राजस्थान में शक्ति के रुप में पूजी जाने वाली देवियों को दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है[6]: शास्त्रोक्त देवियाँ व लौकिक देवियाँ ।

शास्त्रोक्त देवियाँ वे कहलाती हैं जिनका उल्लेख धर्मशास्त्रों में मिलता है जिसमें महिषासुर मर्दिनी, पार्वती, सरस्वती, लक्ष्मी, महाकाली, नवदुर्गा, चामुंडा, और देवीभागवत में वर्णित शाकम्भरी, भ्रामरी और त्रिपुरा–सुन्दरी इत्यादि है।

लौकिक देवियाँ वे कहलाती है जो लोकमानस में विख्यात है। लोकमानस के हृदय में रची–बसी है जिसमें कुछ पौराणिक देवियाँ और कुछ नारी रूप में जन्म लेकर लोकहित के कार्य करती हुई जनसामान्य को कष्ट पीड़ा एवं आतताईयों के आतंक से मुक्तकरने में सहायता करती हुई परलोक गमन हुई, जिसमें श्री आवड़ माता प्रमुख लोकदेवी है। आवड़ माता के अलावा यहां हिंगलाजमाता, करणीमाता, बांकल माता, कैलादेवी, स्वांगियामाता, आईमाता, बीजमाता, शीतलामाता, देवल माता आदि है।

श्री आवड़ माता का व्यक्तित्व एवं कृत्तित्व :श्री आवड़माता का जन्म ग्राम चालकनूं (तहसील धौरीमन्ना, जिला बाड़मेर) में संऊवा शाखा के चारण कुल में वि. सं. 808 (751 ई.) चैत्र, सुदी नवमी, मंगलवार के दिन मामड़जी के घर माता मोहवंती (महडू चारण) की कुक्षि से हुआ था। इनका मूल नाम श्री उभटदे था।[7]इनके जन्म के संबंध में यह दूहा लोकप्रसिद्ध है–

आठ सौ आठ संवत्, मधू सुद नम मंगलवार।
महादेवी मांमड़ घर, आवड़ लियो अवतार।।[8]

श्री आवड़ माता के पिता मांमड़िया जी हिंगलाज देवी के अनन्य भक्त थे। वह पहले निःस्तान दम्पति थे। उन्होने संकल्प लिया कि देवी हिंगलाज माता की सात बार पैदल यात्रा करूंगा। जब वे सातवीं बार यात्रा पर हिंगलाज माता के देवस्थान पहुंचे तब देवी ने प्रसन्न होकर वरदान दिया कि मैं आप के घर सात पुत्रियों के रूप में जन्म लूंगी साथ में एक भाई भी लाऊंगी। इसके पश्चात् हिंगलाज माता द्वारा दिए गए आर्शीवाद के अनुरूप मामड़िया जी के घर आवड़ माता सहित सात बहिनों (1.आई उभ्भटा/ आवड़, 2.आई होल/हुली–हुलास बाई 3. आई गैल /गुली /गुलाब बाई 4. आई आछी 5. आई रैपल–रूपल बाई 6.आई छाछी 7. आई खोड़ियार) और आठवें पुत्र मेहिरख जी का जन्म हुआ।[9] मामड़िया जी के घर पुत्री के जन्म की सर्वप्रथम बधाई आई तो लोगों ने कहा कि श्री हिंगलाज देवी स्वयं आयी है इसलिए उनका नाम **'आईजी'** पड़ा। आवड़ माता ने बाल्यावस्था में नाथ सप्रदाय से दीक्षा ग्रहण कर कानों में कुण्डल धारण किए थे इसलिए इन्हें **'आईनाथ'** के नाम से जाना जाने लगा। इन सातों बहिनों ने आजीवन 'ब्रह्मचर्य' जीवन का पालन किया था। चेलक ग्राम में इनका जन्म होने से आवड़ माता **'चाकनेची देवी'** के नाम से विख्यात हुई। माड़ प्रदेश में लगातार बारह वर्ष तक अकाल पड़ने के कारण रोजगार हेतु मामड़िया जी अपने परिवार एवं गांव वालों सहित नानणगढ़ (भावलपुर–सिन्ध) गये। वहां मामड़िया जी ने अपनी पुत्रियों को चरखे दिलवाये व सूत कातकर कपड़ा बुनने का कार्य करने लगे। आवड़ माता के चमत्कार से ये चरखे अपने आप चलते देखकर उनके माता–पिता को यह आभास हुआ कि आवड़ जी, हिंगलाज

देवी की अवतार है।[10] नानणगढ़ का शासक ईस्लाम धर्मानुयायी अदनसूमरा था उसका दीवान कुशल शाह जैन था। दीवान की पुत्री कणती नामक पुत्री मामड़िया जी की पुत्रियों की सहेली थी। कणती के आग्रह पर ये सातों बहिनें पास ही के एक तालाब पर नहाने गई। स्नान के दौरान पीछे लूचिया नाई ने इनके वस्त्रों को छू कर अपवित्र करके वह कहीं छिप गया। जिसकी जानकारी आवड़ माता ने अपनी आध्यात्मिक शक्तिसे कर ली एवं वे वस्त्र पुनः धारण नहीं किये और आवड़ माता और सभी बहिनों ने सर्प का रूप धारण करके वहां से घर लौटी थी जिससे वे **'नागणैची देवी'** कहलाई। इसकी सूचना लूचिया नामक नाई ने वहां के शासक अदनसूमरा के पुत्र नूरन को दे दी। जिस पर नूरन मामड़िया जी के निवास स्थल पहुंच गया और आवड़ जी की सुन्दरता से मोहित होकर उनसे विवाह का प्रस्ताव रखा। आवड़ जी व उनके पिता मामड़िया जी ने इसे अस्वीकार कर दिया और सिन्ध प्रदेश छोड़ने का निश्चय किया। नूरन द्वारा मामड़िया जी की झोंपड़ी में प्रवेश किया तो आवड़ माता ने अपनी बहिनों सहित नाग का रूप धारण करके फुंफकार मारी जिससे नूरन डर कर वहां से भाग गया।[11] नूरन ने अपने पिता से जिद्द करने लगा कि मैं उन्ही कन्याओं से विवाह करूंगा। मामड़िया जी को अदनसूमरा ने अपने दरबार में बुलाकर उनकी कन्याओं से जबरदस्ती विवाह करने की चेतावनी दी। आवड़ माता ने अचानक उसके दरबार में सिंहनी के रूप में प्रकट होकर जोरदार सिंह गर्जना की और अदृश्य हो गई। जिससे वे सिंघणीयों या **'सहाणों देवी'** के रूप में जानी जाने लगी।[12] तत्पश्चात् मामड़िया जी अपने परिवार व गांव वालों सहित रात्रि में वहां से माड़ प्रदेश (जैसलमेर) को प्रस्थान हुए और रास्ता तय करते हुए हाकड़ा नदी के किनारे पहुंचे। हाकड़ा नदी में पानी बहुत अधिक था उसको पार करना कठिन था। तब आवड़ माता ने अपनी चमत्कारिक शक्ति से सात चल्लू पानी पीकर हाकड़ा नदी को सुखा दिया।

पीधो हजार कोस पार हाकमार हाकड़ा।

भज्या निसुंभ सुंभ भूप आप रूप आवड़ा।।[13]

तब तक पीछे अदनसूमरा भी अपनी सेना सहित इनका पीछा करता हुआ वहां पहुंच गया। जिस पर आवड़ माता ने रौद्र रूप धारण करके अपनी शक्ति से नूरन को मृत्यु लोक पहुंचा दिया और अदनसूमरा को घायल कर दिया और उसकी सेना को श्राप देकर भस्म कर दिया। इस प्रकार अत्याचारी शासक सूमरा का दमन करके सिन्ध प्रदेश की जनता को अत्याचारी शासक से मुक्ति दिलाई।

छेड़ी कचेड़ी बीच मलेच्छां नीच पंणो-निकमा।

तेरी हाथल री धाकल सूं हो गई छकडी गम छमा।।[14]

सिन्ध से प्रस्थान करके आवड़ माता माड़ प्रदेश पहुंचे और कालेडूंगर (जैसलमेर के पास) को अपना निवास स्थान बनाया। इस प्रदेश में अच्छी बरसात हुई और चारों तरफ खुशहाली छा गई। आवड़ माता की ख्याति दिन दूनी रात चौगुनी फैलती गई। आवड़ माता यहां **'कछेडूंगरराय'** के नाम से पूजी जाने लगी।[15]आवड़ माता की ख्याति सुनकर लोद्रवा का परमार शासक जसभान भी उनके दर्शनार्थ पहुंचा तब आवड़ जी ने भोजासर तालाब पर उसको दर्शन दिए और **'भोजासरी देवी'** के नाम से जानी जाने लगी।[16] वहां से आवड़ माता सपरिवार एहप ग्राम पहुंची जहां पर उनके भाई मेहरख को पीवणा सर्प ने दंश लिया और वह बेहोश हो गया तब आवड़ माता ने सूर्योदय से पूर्व अपनी चचेरी बहिन लांग को अमृत लाने भेजा। जब वह पाताल लोक से अमृत लेकर लौट रही थी कि रास्ते में गिरने से उसके घुटने में चोट आई जिससे वह **'खोड़ियार देवी'** कहलाई जो गुजरात राज्य में पूजी जाती है।

लांगा वैगी आवजै, आई ललकारै।

खाथी आवती खिरगी, होगी खोड़ियारै।।[17]

बहिन लांग के घुटने में चोट लगने के कारण वापिस पहुंचने से पूर्व सूरज उदय होने वाला था तब आवड़ माता ने अपनी चमत्कारिक शक्ति से सूरज की गति को मंद कर दी और अपने भाई को अमृतापन करवाकर स्वस्थ कर दिया।[18]वहां से आवड़माता देग नामक तालाब पहुंची जहां पर बहादरिया जी भाटी ने उनका आदर सत्कार किया। वहां आवड़ माता ने बहादरिया जी को आर्शीवाद दिया और **'देगराय'** के नाम से देवी विख्यात हुई।[19]तब तक बहादरिया जी के भाई-बन्धु तणुराव सपरिवार आवड़ माता के दर्शन करने 'बोर' नामक टीले पर पहुंचा। वहां पर आवड़ माता ने राव तणु भाटी को विशाल साम्राज्य की स्थापना का आर्शीवाद दिया और जफ़ की सूखी लकड़ी को हरे-भरे वृक्ष में परिवर्तित कर दिया। जिस पर आवड़माता **'जूनी जफ़ री धणियाणी'** के नाम से पूजित हुई।[20]वहां पर तणुराव ने सातों देवियों और भाई मेहरख को आदरपूर्वक सांहगे पर विराजमान कर इनकी पूजा की जिससे वे **'सहांगिया देवी'** कहलाई।[21] यह क्षेत्र रावतणु ने अपने भाई बहादरिया को जागीर के रूप में भेंट किया था जहां पर बहादरिया ने उनका देवस्थान बनाया और यहां पर आवड़ माता **'भादरिया राय'** के नाम से पूज्य हुई।[22]आवड़ माता ने तणु राव को कहा कि जहां आप रह रहे है वहां एक दुर्ग बनाना जिसका नाम तन्नोट रखना वहीं मेरा मंदिर बनाना उसकी प्रतिष्ठा मैं स्वयं करूंगी। इस पर माता जी के निर्देशानुसार राव तणु ने तन्नोट नामक नगर बसाया वहां पर दुर्ग का निर्माण करवाया और माता जी के मंदिर की प्रतिष्ठा आवड़ माता के हाथ से करवाई। तणु राव ने आवड़ माता को 'स्वांगिया माता' के नाम से कुलदेवी के

रूप में स्वीकार कर आवड़ माता सहित सात बहिनों एवं भाई मेहरख की अष्ठ प्रतिमा तन्नोट मंदिर में प्रतिष्ठापित अत्यन्त हर्ष और उत्साह से करवाई। जहां पर आवड़ माता **'तन्नोटराय'** के नाम से विख्यात हुई।[23] तन्नोट में राव तणु एवं भाटी बंधुओं को विशाल साम्राज्य की स्थापना का आर्शीवाद दिया था। जिसके फलस्वरूप राव तणु ने तन्नोट को अपनी राजधानी बनाईथी।[24] तणु के पुत्र विजयराज प्रथम को आवड़ माता ने चमत्कारिक शक्ति (चूड़) प्रदान की थी जिससे उसने पश्चिमोतर के यवन आक्रमण को निश्फल किया और विशाल भाटी साम्राज्य की स्थापना की थी। विजयराज 'चूड़ाला' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसने आवड़ माता की कृपा से बाईस युद्धों में विजय प्राप्त की थी और तन्नोट सहित मरोट, केरोहर, भटनेर, मुमणवाहन तथा बींझणोट नामक दुर्गो पर अधिकार कर लिया था।[25] कालान्तर में उसके वंशज देवराज ने दुर्ग देरावर की स्थापना की एवं महारावल की उपाधि धारण की थी।[26] देवराज ने आवड़ माता के आर्शीवाद से वाराहों, पंवारों, प्रतिहारों और चन्ना राजपूतों को परास्त कर बावन युद्धों में विजय प्राप्त कर विशाल साम्राज्य की स्थापना की और 'लुद्रवा' को अपनी राजधानी बनाई थी।[27] श्री आवड़ माता ने देवराज के लोकोपकारी कृत्यों एवं उसकी वीरता एवं भक्ति से प्रसन्न होकर उसे एक दिव्य तलवार भेंट की थी। यह तलवार आज भी जैसलमेर दुर्ग में घड़सी जी के खांडे के नाम से विख्यात है। देवराज के उतराधिकारी महारावल मंध, वाछू, दुसाज, विजयराज लांजा, भोजदेव और उसके उतराधिकारी महारावल जैसल ने आवड़ माता की महत्ती कृपा से भाटी राजवंश की नौवीं राजधानी के रूप में जैसलमेर की स्थापना 1155 ई. में की थी।[28]

तन्नोट की स्थापना से पूर्व श्री आवड़ माता आस–पास के लोगों के अनुनय विनय पर गरलाऊंवे पहाड़ पर पहुंची जहां पर रहने वाले तेमड़े नामक दैत्य का वध किया। जिससे वहां आवड़ माता **'तेमड़ेराय'** के नाम से पूजी जाने लगी।[29]तन्नोट की स्थापना के पश्चात् आवड़ माता ने घटीये नामक दैत्य का वध किया था जिससे वे **'घंटीयक देवी'** के नाम से प्रसिद्ध हुई।[30]आवड़ माता भौतिक जीवन में 191 वर्ष रहे तथा अनेक आततईयों व बावन हूण दैत्यों का दमन किया और जनसामान्य का कल्याण करते हुए वि. सं. 999 की माघ सुदी सप्तमी को तेमड़ेराय पर्वत पर वे सातो बहिनों तारंग शिला पर विराजमान होकर पश्चिमी दिशा को महाप्रस्थान हुई जो देखते ही देखते अदृश्य हो गई।

नव सौ ननाणवें गुण गावे चारण गोप।
माहा सुदी सातम तिथरी, आवड़ हुई अलोप।।[31]

किवदंती प्रसिद्ध है कि आवड़ माता ने विजयराज को चूड़ प्रदान की थी और कहा था कि युद्ध भूमि में जाने से पूर्व इसका पूजन करके दाहिने हाथ में धारण कर लेना जिससे शत्रु सेना पर 1000 तलवारें अदृश्य रूप से एक साथ चलेगी। आवड़ माता के उक्त चमत्कार के फलस्वरूप ही उसने कई युद्धों में विजय प्राप्त की थी जिसके उपलक्ष में विजयराज ने वींझणोट दुर्ग का निर्माण करवाकर वहां श्री आवड़ माता का नाम वीझणोटियां देवी रख कर देव स्थान की प्रतिष्ठा की थी जससे श्री आवड़ माता **'वींझणोटियां देवी'** के नाम से विख्यात हुई।[32]

इस प्रकार लोक देवी श्रीआवड़ माता की असीम कृपा से भाटी राजवंश ने विशाल साम्राज्य की स्थापना की एवं पश्चिमोतर से होने वाले बाह्य आक्रमणों का सफलता पूर्वक सामना किया। इस संबंध में यह दूहा लोकप्रसि है–

आवड़ तूठी भाटियाँ, कामेही गोड़ांह।
श्री बरवड़ सीसोदियाँ, करणी राठौड़ांह।।[33]

आवड़ माता के लोककल्याणकारी कार्यो एवं आततईयों के आतंक का अंत करने के फलस्वरूप यहां के लोकमानस ने उन्हें अपनी आराध्य देवी मानकर श्री आवड़ माता एवं उनकी छः बहिनों तथा आठवे भाई की संयुक्त अष्ठप्रतिमाऐं उनके चमत्कृत स्थलों एवं आवड़ माता के जीवन से संबंध रखने वाले स्थलों पर स्थापित कर पूजा–अर्चना प्रारम्भ की एवं वहां जनसामान्य से लेकर शासक वर्ग तक सभी ने अपनी कष्टपीड़ा दूर होने एवं मनोवान्छित कामनापूर्ण होने के उपलक्ष में वहां मंदिरों का निर्माण करवाया जो आज भी विद्यमान हैं– श्री भादरीयाराय जी देक, श्री तन्नोटराय जी देक, श्री तेमड़ेराय जी देक, श्री घंटीयक्षीराय जी देक, श्री कालेडूंगरराय जी देक, श्री देगराय जी देक ,श्री स्वांगियां जी का देक और श्री आईनाथ माता जी का मंदिर आदि।

लोक मानस में 'सुगनचिड़ी' को आवड़ माता का प्रतीक स्वरूप मानी जाती है जो आवड़ माता के भक्तों को उनके कार्य की सिद्धि का अग्रिम संकेत देती है। बीकानेर के राठौड़ राजवंश की कुलदेवी श्री करनी माता,श्री आवड़ माता की परम भक्त थी। लोकमानस में श्री करनी माता को आवड़ माता का ही अवतार माना जाता है। श्री आवड़ माता के तन्नोट स्थित मंदिर में भारतीय सेना व सीमा सुरक्षा बल द्वारा अगाध आस्था से पूजा अर्चना की जाती है।तन्नोट राय मंदिर जैसलमेर से करीब 130 किलोमीटर उत्तर–पश्चिम में स्थित है। सन् 1965 ईस्वी में भारत–पाक युद्ध के दौरान श्री आवड़ माता ने साक्षात् प्रकट होकर चारों तरफ से घिरे हुए भारतीय सैनिकों की रक्षा की थी तथा पाकिस्तानी सेना की तोपों का मुंह पाकिस्तान की तरफ कर दिया था। वहां एक भी भारतीय सैनिक शहीद नहीं हुआ था, जबकि वहां पर पाकिस्तान के 400 सैनिक मारे गये तथा

पाकिस्तानी फौज दुम दबाकर भागने को विवश हुई थी। पाकिस्तानी सेना द्वारा करीब 3000 बम्ब तन्नोट–लोंगेवाला क्षेत्र पर बरसाये गये मगर तन्नोट माता के मंदिर को किसी प्रकार की क्षति नहीं हुई, न ही कोई नागरिक हताहत हुआ। करीब 450 गोले मंदिर परिसर में गिरे जो अधिकांश फटे ही नहीं जो आज भी दर्शकों को आकर्षित करते हैं। कहा जाता है कि भारतीय सैनिकों को माता ने स्वप्न में आकर कहा था कि जब तक तुम मेरे मंदिर परिसर में हो मैं तुम्हारी रक्षा करूंगी।[34] 1965 व 16 दिसम्बर, 1971 ईस्वी के भारत–पाकिस्तान युद्ध में भारत को विजय श्री दिलाने में श्री तन्नोट माता का असीम योगदान एवं आर्शीवाद रहा है, तब से आज तक तन्नोट मंदिर में माता जी की सेवा, पूजा, अर्चना का प्रबंधन सीमा सुरक्षा बल के एक ट्रस्ट द्वारा किया जा रहा है। इस विजय के उपलक्ष में भारत सरकार द्वारा यहां विजय स्तम्भ का निर्माण करवाया गया हैं। सेना से पूर्व यहां पूजा का काम शाकद्वपीय ब्राह्मण द्वारा किया जाता था। श्री आवड़ माता के इस आधुनिक चमत्कार का लोहा पाकिस्तान के सैनिकही नहीं अपितु पाक सेना के ब्रिगेडियर शाहनवाज ने भी माना और श्रद्धास्वरूप श्री तन्नोटराय माता जी के मंदिर में चांदी का एक छत्र भी भेंट किया था। श्री आवड़ माता को **'पश्चिमी भारत की रक्षक देवी'** के रूप में भी पूजा जाता है। श्री आवड़ माता के उपर्युक्त देवस्थलों (देक) पर प्रतिवर्ष माघ, भाद्रपद मास की सप्तमी एवं चैत्र व आश्विन नवरात्रा में विशाल धार्मिक मेलों का आयोजन होता है। जहां हजारो की तादाद में श्रद्धालु पहुंचते है। आवड़ माता के मंदिर पर त्रिशूलयुक्त लाल ध्वजा चढ़ाते है मनोकामनार्थ जाऊ के गांठयुक्त लाल रुमाल बांधते हैं। रात्रि में यहां जागरण, भजन कीर्तन इत्यादि सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन होता है। आवड़ माता के मंदिरों के आस–पास सैंकड़ो किलोमीटर स्थित ओरण में जंगली जीव–जंतु स्वछंद विचरण करते है, गोधन इत्यादि पालतु पशु भी वहां चरते है तथा ओरण में बने विशाल तालाब इनकी वर्ष भर प्यास तृप्त करते है। इस प्रकार श्री आवड़ माता ने तत्कालीन युग में जनमानस को आतताईयों से सुरक्षा प्रदान की वहीं आज इनके देव स्थान, मंदिर, सांस्कृतिक समन्वय की स्थापना करते हैं। वहीं उनके ओरण में स्थित हरे–भरे वृक्षों व तालाबों की पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्धन में महत्ती भूमिका है।श्री आवड़ माता के परम भक्तस्व. संत श्री हरीवंश सिंह निर्मल के अथक प्रयत्नों से भादरीयाराय मंदिर स्थित एशिया की सबसे बड़ी भूमिगत लाइब्रेरी का निर्माण हुआ है जो देश–विदेश के शोधार्थियों की ज्ञान पिपासा को तृप्त करती है।

अतः हमारी सामरीक सुरक्षा, सांस्कृतिक समन्वय, आध्यात्मिक उन्नति एवं पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में लोकदेवी श्री आवड़ माता का पूर्वमध्ययुग से आज तक महत्वपूर्ण योगदान रहा है। श्री आवड़ माता के जीवन से जुड़े स्थल, उनका जीवन चरित्र हमारी भावी पीढ़ियों के उज्ज्वल भविष्य निर्माण एवं नारी उत्थान में भी युगों–युगों तक प्रांसगिक रहेगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *श्रीवास्तव, के. सी. : प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, पृ. 21 , इलाहबाद*
2. *वही, पृ. 47*
3. *वही, पृ.814,15 व 30*
4. *शर्मा, गोपीनाथ : राजस्थान का इतिहास, पृ.17 , आगरा*
5. *डॉ. भंवर सिंह : राजस्थान के लोकदेवताओं का सांस्कृतिक अवदान (शोध प्रबंध) पृ. 441–42*
6. *पातावत, डॉ. भवानी सिंह : आस्था रौ उजास, पृ.157, जोधपुर*
7. *विजय स्तम्भ शिलालेख : तन्नोटराय मंदिर (जैसलमेर) ,सोमानी, वी. आर. : हिस्ट्री ऑफ जैसलमेर, पृ. 155 , दिल्लीलखावत, ओंकारसिंह : जय आवड़ आसापुरा, पृ. 17 , अजमेर*
8. *राठौड़, डॉ. महीपाल सिंह : राजस्थानी साहित्य में लोकदेवता पाबूजी, पृ. 21 ,उदयपुर*
9. *लखावत, ओंकारसिंह : उपर्युक्त, पृ. 32*
10. *भाटी, मूलसिंह : भगवती श्री आवड़ माता, पृ. 19 , जोधपुर*
11. *लखावत : उपर्युक्त, पृ. 35*
12. *लखमीचन्द : तवारीख जैसलमेर, पृ. 226*
13. *भक्तकवि मेहा कीनिया द्वारा रचित दूहा।*
14. *लखावत : उपर्युक्त पृ. 32*
15. *राठौड़, महीपाल सिंह : उपर्युक्त, पृ. 21*
16. *भाटी मूल सिंह : पूर्वोक्त पृ. 21*
17. *भक्तकवि जेठमल द्वारा रचित दूहा।*
18. *लखावत : उपर्युक्त पृ. 33*
19. *राठौड़, महीपाल सिंह : उपर्युक्त, पृ. 22*
20. *वही, पृ. 22*
21. *राठौड़, महीपाल सिंह : उपर्युक्त, पृ. 22*
22. *वही, पृ. 22*
23. *वही, पृ. 22*
24. *मुंहता नैणसी री ख्यात, भाग–2, पृ. 262*
25. *भाटी, नारायण सिंह(सम्पादक): जैसलमेर री ख्यात, पृ. 37,*

26. मयंक, डॉ. मांगीलाल व्यास : जैसलमेर राज्य का इतिहास, पृ. 25
27. वही, पृ. 27
28. वही, पृ. 35
29. राठौड़, महीपाल सिंह : उपर्युक्त, पृ. 22
30. वही, पृ. 22
31. भाटी, मूल सिंह : उपर्युक्त, पृ. 35
32. राठौड़, महीपाल सिंह : उपर्युक्त, पृ. 23
33. चारण, डॉ. नरेन्द्र सिंह : श्री करणी माता का इतिहास , पृ. 21 , उदयपुर
34. विचार साक्षी (पाक्षिक) वर्ष1, अंक2,16 नवम्बर,2012 ईस्वी,बाड़मेर

भारत में श्रम परिदृश्य एवं महिलाऐंः एक विश्लेषण

डॉ. अमित गुप्ता
राजनीति विज्ञान विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

मनुष्य प्रकृति का अविभाज्य अंग है और सतत् रूप से अन्योन्य क्रिया से संलग्न रहता है। मनुष्य अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु निरन्तर क्रियाशील रहता है। ब्रिटानिका कन्साइज एनसाइक्लोपीडिया में श्रम को उत्पादन की तीन साधनों में (पूंजी व भूमि) से एक प्रमुख साधन माना है। जो मानव द्वारा वस्तुओं और सेवाओं के निर्माण हेतु किए गये सभी शारीरिक एवं मानसिक प्रयासों का प्रतिफल है। हर तरह के श्रम में मनुष्य की शारीरिक, तंत्रकीय और बौद्धिक ऊर्जा खर्च होती है, और अपने श्रम से प्रकृति पर असर डालते हुये मनुष्य अपने आपको बदलता है, भौतिक तथा अस्तित्व संस्कृति को उत्पन्न करता है और अपने शारीरिक तथा आत्मिक क्षमताओं को बढ़ाता है। सदियों से महिलाऐं आर्थिक क्रियाकलापों में किसी न किसी रूप में संलग्न रही है। भारत की जनगणना 2011 में कुल श्रमिक संख्या 481.7 लाख है जिसमें 331.9 लाख पुरूष श्रमिक तथा 149.9 लाख महिला श्रमिक है। मुख्यतः श्रमिक महिला ग्रामीण क्षेत्र में निवास करती है तथा कुल श्रमिक जनसंख्या में एक तिहाई पर श्रमिक महिला है। श्रमिक महिला ने सभी क्षेत्रों में अपने दर्ज करायी है। महिला के श्रम करने से परिवार की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होने लगी तथा साथ ही समाज में महिलाओं को सम्मानजनक स्थान प्राप्त होने लगा हैं। अब महिलाएं ग्राहर्स्थिक कार्य के अतिरिक्त वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय विकास में भागीदार बन गई हैं।

संकेताक्षर : *प्राकृतिक असमानता, निम्न सामाजिक – आर्थिक स्थिति, परिवर्तित परिदृश्य*

श्रम का शास्त्रीय अर्थ है, मनुष्य द्वारा अपने किसी विशेष प्रयोजन के लिए प्रकृति में किया जा रहा सचेत परिवर्तन। श्रम एक ऐसी सक्रियता हैं, जिसका उद्देश्य निश्चित सामाजिक उपयोगी (अथवा समाज द्वारा उपयुक्त) उत्पादों को पैदा करना है, जो भौतिक और आत्मिक, दोनों तरह के हो सकते हैं। श्रम मनुष्य की सक्रियता का प्रमुख और बुनियादी रूप है। श्रम के बिना मानवजाति का अस्तित्व संभव नहीं है। इसलिए श्रम को लोगों के जैविक जातिगत व्यवहार का एक विशिष्ट रूप कहा जा सकता है, जो उनकी उत्तरजीविता, अन्य जैविक जातियों पर विजय और प्रकृति की शक्तियों व संसाधनों का विवेकसंगत उपयोग सुनिश्चित करता है। श्रम मनुष्य को रूपान्तरण तथा विकास की ओर ले जाता है। श्रम की उत्पत्ति और समाज के निर्माण के द्वारा ही मनुष्य के वानराभ पूर्वजों का मानवीकरण हुआ है।

श्रम का उपयोग माल व सेवाओं के निर्माण में प्रयोग किया जाता हैं। श्रम उत्पादन का एक प्रमुख कारक है, एक देश की श्रम शक्ति का आकार अपने व्यस्क आबादी के आकार के द्वारा निर्धारित किया जाता है सभी लोग मजदूरी के लिए अपने श्रम की पेशकश करने को तैयार है। दूसरे शब्दों में, श्रम मनुष्य की ऐसी उद्देश्यपूर्ण कार्यसाधक सक्रियता है जिसकी बदौलत वह प्रकृति की वस्तुओं को अपनी आवश्यकताओं की तुष्टि के योग्य बनाता है। हर तरह के श्रम में मनुष्य की शारीरिक, तंत्रकीय और बौद्धिक ऊर्जा खर्च होती है, और अपने श्रम से प्रकृति पर असर डालते हुये मनुष्य अपने आपको बदलता है, भौतिक तथा अस्तित्व संस्कृति को उत्पन्न करता है और अपने शारीरिक तथा आत्मिक क्षमताओं को बढ़ाता है। श्रम शब्द प्रायः दो

अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है। प्रथम व्यापक अर्थ में सभी प्रकार के कार्य स्तरीय भेदभाव के बिना श्रमिकों के पारिश्रमिक प्रतिफल की प्राप्तियों से है। द्वितीय संकुचित अर्थ में, वह उन व्यक्तियों तक सीमित है जो किसी आदेश के अधीन कार्य करते है और बदले में उन्हें अपने श्रम का प्रतिफल नहीं मिलता है।

सभी युगों और सभी प्रकार की संस्कृतियों में महिलाओं का स्तर सदैव इस जैवकीय तथ्य पर निर्भर रहा है कि वह बच्चों को जन्म देने की संभावना रखतीं हैं। सामाजिक संगठन समाज में अपनी भूमिका व श्रम विभाजन के लिए वंश एवं लिंग के भौतिक वातावरण पर निर्भर रहते है। मानवशास्त्रीय एवं ऐतिहासिक साक्ष्य यह दर्शाते हैं कि श्रम विभाजन के मापदण्ड लिंगों के अनुसार होते है। जिसमें महिलाओं का सम्पूर्ण योगदान होता है जो स्थानीय रीति–रिवाजों और परम्पराओं के अनुसार सुनिश्चित किया जाता है न कि महिलाओं की शारीरिक और मानसिक क्षमताओं के अनुसार, तथ्य यह है कि लैंगिक आधार पर श्रम विभाजन के पीछे कोई 'प्राकृतिक या जैविक' असमानताएं नहीं बल्कि इसकी जड़ में कुछ विचारधारात्मक मान्यताऐं होती है। इसलिए औरतों को शारीरिक रूप से कमजोर और भारी श्रम के लिए अनुपयुक्त माना जाता है। लेकिन किसी महिला की उसकी शारीरिक शक्ति एवं कोमलता उसे भारी कृषि सम्बन्धी कार्य या अन्य शारीरिक श्रम के कार्यों से मुक्ति नहीं देती। दूसरे शब्दों में, औरतों की मौजूदा अधीनता अपरिवर्तनीय जैविक असमानताओं से पैदा नहीं होती है बल्कि यह ऐसे सामाजिक – सांस्कृतिक मूल्यों, विचाराधाराओं और संस्थाओं की देन है जो महिलाओं की वैचारिक तथा भौतिक अधीनता को सुनिश्चित करती हैं।

श्रम एवं महिलाऐं

सदियों से महिलाऐं आर्थिक क्रियाकलापों में किसी न किसी रूप में संलग्न रही है। आखेट व्यवस्था में महिलाऐं शिकार करने नहीं जा सकती थी, तो घर के अनेक आर्थिक कार्य, यथा बाँस की चीजे बनाना, अनाज साफ करना इत्यादि कार्य महिलाऐं किया करती थी। पशुपालन युग में पशु की देखभाल, कपड़ा बुनना आदि कार्यों में महिलाऐं योगदान करती थी। कृषि युग में महिलाऐं मिट्टी के बर्तन बनाना, टोकरियाँ बनाना इत्यादि कार्य करती थी। तत्पश्चात् औद्योगिक क्रान्ति के प्रभाव से महिलाओं को घर से बाहर कार्य करने के अधिक अवसर मिलने तथा साथ ही मालिको को महिला श्रम सस्ते दर पर उपलब्ध होने के कारण महिला श्रमिकों की मांग बढ़ गई। उन्नीसवीं सदी की समाप्ति के बाद सभी देशों श्रमजीवी वर्ग में महिलाओं का महत्त्व बढ़ता गया। इस सदी में महिलाओं से पत्थर की खानों तथा चाय के बगीचों में काम करवाया जाता था। जैसे–जैसे आर्थिक विकास होता गया (वैसे–वैसे महिलाओं की व्यवसायिक क्रिया–कलापों में विस्तार होता गया। शिक्षा के प्रचार–प्रसार होने के कारण प्रशिक्षण युक्त व्यवसायों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ने लगी थी। जिसके फलस्वरूप 1920 के बाद व्यवसायिक क्षेत्र में महिलाऐं अपना स्थान बनाने लगी। द्वितीय विश्व युद्ध के कारण जीवन–यापन का खर्चा बढ़ा। केवल एक व्यक्ति की आय से सारे परिवार का भरण–पोषण नहीं हो पा रहा था। अतः मध्यमवर्गीय महिला श्रम–बाजार में आने लगी।[1]

भारत में ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत समाज सुधारकों के अनथक प्रयत्नों से स्त्री शिक्षा का भी प्रसार हुआ। भारतीय शिक्षित स्त्री को अनेक ऐसे (टीचर, नर्स, डॉक्टर आदि) कार्य क्षेत्र दिखाई दिए, जहाँ सम्मानपूर्वक कार्य करके वह अपनी शिक्षा का उपयोग भी कर सकती थी और अर्थोपार्जन भी कर सकती थी। सैंकड़ों ऐसे कार्य थे जिनमें शिक्षित व्यक्ति ही आवश्यक था। विज्ञान, तकनीकी, चिकित्सा आदि क्षेत्रों में हर दिन कर्मियों की आवश्यकता बढ़ रही थी। शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन के साथ परिवारों की परम्परागत सोच में भी परिवर्तन आ रहा था। पहले समाज में विधवा, परित्यक्ता या अकेली स्त्री को ही काम करने की स्वतन्त्रता या छूट थी, जिससे वे आत्मनिर्वाह कर सके और अपने समय का भी सदुपयोग कर पाऐं। लेकिन अब विवाहिता स्त्रियों के शिक्षित हो जाने पर और शिक्षिका, डॉक्टर, नर्स आदि पदो पर काम करने से परिवार वालों ने अपने सम्मान में वृद्धि होते देखी। अतः क्रमशः मध्यवर्गीय स्त्री के काम को स्वीकृति मिलने लगी। फिर भी लगभग अस्सी के दशक तक स्त्री के नौकरी करने पर अनेक परोक्ष अंकुश थे यथा, स्त्री जो काम करने जा रही हैं[2] –

- उस कार्य में सामाजिक स्वीकृति है या नहीं ? वह काम करने से परिवार का सम्मान तो अक्षुण्ण रहेगा।
- उस कार्य में हर समय पुरूषों के मध्य तो नहीं रहना पड़ेगा।
- वह कार्य विवाहिता स्त्री के पति की नौकरी के स्तर से बहुत ऊँचा तो नहीं है, अन्यथा पति हीन भावना से ग्रस्त हो सकता हैं।
- स्त्री काम भले ही कर लें, पर परिवार में गृहिणी के अपने सारे कर्त्तव्यों को निभाने–करने का तो उसे पर्याप्त समय मिल पाएगा आदि।

फिर भी, इन सारे कर्तव्यों और ऊहापोहों के साथ–साथ भारतीय मध्यवर्गीय स्त्री ने हर कार्यक्षेत्र में अपनी पहचान बनाई है। विशेषतः बीसवीं सदी के अन्तिम दशक (1990)

से स्त्रियों ने हर क्षेत्र में प्रगति की है। एक नए आत्मविश्वास के साथ भारतीय स्त्री ने हर काम को चुनौती के रूप में स्वीकार कर के अपनी असीमित क्षमता का परिचय दिया है। संस्थान प्रबन्धन, डॉक्टरी, इंजीनियरिंग, प्रशासन, वकालत, पुलिस, वायुसेना, सूचना प्रौद्योगिकी, ज्ञान–विज्ञान–साहित्य हर क्षेत्र में स्त्री बहुत सहजता से कार्य कर रही हैं। पुरूषों के अनुपात में स्त्री कर्मी कम है लेकिन उसकी उपस्थिति सर्वत्र अंकित है। विदेशों में भी अब भारतीय स्त्री की क्षमता और कार्य कुशलता स्वीकृत होने लगी है। बात केवल महिला उद्यमियों की नहीं है। जिस भी क्षेत्र में देखेगें हर ओर स्त्री एक से एक नयी भूमिका में अपने बल बूते पर नया सृजन कर रही है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में क्रान्तिकारी पहल के रूप में स्त्री घर से निकल कर बाहरी कार्य क्षेत्र में आ रही हैं। इसका कारण केवल परिवार की आर्थिक उन्नति करना मात्र नहीं था अपितु आर्थोपार्जन करके, अपनी क्षमता और सामर्थ्य को रचनात्मक और व्यावहारिक रूप देकर उन्हें असीमित सन्तोष भी मिलता है। जो उनके आत्मविश्वास को बढ़ाता है और स्त्री के व्यक्तित्व को एक स्वतंत्र पहचान भी प्रदान कर रहा हैं। समाज में आज भारतीय नारी शिक्षा और रोजगार की जिस राह पर आगे बढ़ रही है – उस राह को पीछे तो मोड़ा नहीं जा सकता। अतः पुरूष को स्त्री के साथ सहयोग देकर तालमेल बिठाना ही होगा। समाज और परिवार ने अपनी सुविधा के लिए स्त्री का नौकरी करना स्वीकार किया, तो अब स्त्री को पारस्परिक सहयोग मिलना ही चाहिए।[3]

वर्तमान समय में शिक्षा के प्रचार व वैश्वीकरण के प्रभाव के कारण निषेध क्षेत्रों में भी महिलाओं ने अपनी उपस्थिति दर्ज करायी हैं। श्रीमति पद्मनी सेन गुप्ता ने अपनी पुस्तक 'वीमेन वर्कर्स ऑफ इण्डिया' में करीब दस–बारह प्रकार के कार्यो की सूची का विवरण दिया हुआ है, जो निम्नांकित है[4]

- कारखाना – कारखाने में कार्यरत महिलाएं और विशेषकर कपड़े, तम्बाकू, चीनी मिल, आटा मिल, तेल के कारखाने तथा ऐसे अनेक कार्यों में बड़ी संख्या में महिलाएँ संलग्न हैं।
- बगीचे – चाय, कॉफी के बगीचों में महिलाऐं काम करती हैं।
- सार्वजनिक निर्माण विभाग – महिलाओं के श्रम का उपयोग नवीन रास्तों का निर्माण, नदी योजनाओं में बाँध के निर्माण में किया जाता है। गोद में नन्हा सा बच्चा और सिर पर रोटियों की पोटली लिए सौ रूपये – दौ सौ रूपये की मजदूरी प्राप्त करने के लिए जाती महिलाओं का दृश्य कही भी दिखाई पड़ जाता हैं।
- खान – अधिकांश महिलाऐं पत्थर, कोयला, मैंगनीज आदि की खानों में कार्य करती है।
- घरेलू कार्य – भारत में औद्योगिक विकास की गति धीमी होने के कारण तथा कृषि पर अधिक दबाव होने के कारण अन्य विकसित देशों की तुलना में हमारे देश में घरेलू नौकर मिलते हैं। घरेलू कार्यों जैसे – रसोई कार्य, बच्चों की देखभाल इत्यादि में अधिकांशतः महिलाएं संलग्न होतीं हैं।
- कृषि कार्य – कृषि सम्बन्धी कार्य यथा–जोताई, खाद डालना, पानी देना, पशुओं की सेवा–पानी, डेयरी कार्य आदि महिलाऐं करतीं हैं। मुख्यतः सब्जी तरकारी उगाने का कार्य महिलाओं का ही होता है।
- यातायात, संचार, शिक्षा, स्वास्थ्य क्षेत्र – इनसे सम्बन्धित क्षेत्रों में भी महिलाऐं कार्य करती है। यथा परिचालिका, एयर होस्टेस, टेलीफोन ऑपरेटर, शिक्षिका, अधिकारी, प्रोफेसर, आचार्य, दाई, स्वास्थ्य निरीक्षक, डॉक्टर इत्यादि पदों पर महिलाऐं संलग्न हैं।
- लघु उद्योगों – लघु उद्योगों में महिलाओं की विशेष भागीदारी है। यथा–बीडी बनाना, रंगाई व छपाई का कार्य, खिलौने बनाने का काम, पापड तथा अचार बनाना ऐसे अनेक छोटे–छोटे व्यवसाय है जो घर पर किये जाते है तथा इनमें मुख्यतः महिलाएं कार्य करतीं हैं।
- आधुनिक युग – वर्तमान समय में भारत में महिला वकील, बैरिस्टर या न्यायधीश भी दिखाई पड़तीं हैं। विदेश विभाग या भारतीय दूतावास में महिलाऐं काम करतीं हैं। राष्ट्रपति, राज्यपाल, राजदूत, मंत्री पद जैसे राजनीतिक पदो ंके लिए महिलाओं को योग्य माना गया हैं।

वस्तुतः सदियो से महिलाऐं पुरूष के विभिन्न कार्यों में सहयोग करती रही हैं। पहले घर की चार दिवारी के अन्दर घरेलू कार्य करती थी जबकि अब वो उसके व्यावसायिक कार्यों में भी समान रूप से संलग्न हैं। महिला के श्रम करने से परिवार की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होने लगी तथा साथ ही समाज में महिलाओं को सम्मानजनक स्थान प्राप्त होने लगा हैं। अब महिलाऐं ग्रार्हस्थिक कार्य के अतिरिक्त वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय विकास में भागीदार बन गई हैं।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर श्रमिक महिलाओं ने घरेलू कार्यों के साथ–साथ कामकाजी व्यवसायिक क्षेत्र में अपने

उपस्थिति को दर्शाया है। इन कार्यों में सभी वर्ग (निम्न मध्यम, उच्च) भी शिक्षित, अर्द्धशिक्षित, अशिक्षित तथा विवाहित व अविवाहित महिलाऐं सम्मिलित है। घरेलू कार्य में केवल शारीरिक श्रम होता है। लेकिन कामकाजी कार्यों में शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक विभिन्न प्रकार के कार्य होते है। प्रारम्भ में जहाँ कामकाजी नारी को परिवार के लोगों के असहयोग का सामना करना पड़ा, किन्तु कालांतर में उनके कार्य से प्राप्त आय एवं सम्मान के कारण परिवार के दृष्टिकोण में परिवर्तन आ रहा है।[5]

इसलिए महिलाओं के श्रम व उससे प्राप्त अर्थ से पुरुष के दृष्टिकोण में परिवर्तन आ रहा है। वो महिलाओं के घरेलू कार्यों के साथ-साथ बाहरी कार्यों में काम करने के लिए प्रोत्साहित कर रहे है। इसके पीछे मुख्यतः उनका आर्थिक लोभ ही क्यों ना हो, लेकिन महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन आ रहा है। अतः अपनी बौद्धिक अथवा शारीरिक क्षमता के उपयोग से कुशल या अकुशल श्रम के माध्यम से घर में रहकर या घर के बाहर जाकर कार्य करके आर्थोपार्जन करने वाली महिलाओं की सामाजिक व आर्थिक स्थिति निरन्तर सुदृढ़ होती जा रही है जो उनकी समाज में गरिमामय स्तर के संकेत है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *शर्मा, रमा एवं मिश्रा, एम. के., महिला विकास, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ 211*
2. *गुप्ता, कमलेश कुमार, भारतीय महिलाएं शोषण, उत्पीड़न एवं अधिकार, बुक एनक्लेव, जयपुर, 2005, पृष्ठ 35*
3. *गोयल, डॉ. प्रीति प्रभा, भारतीय नारी विकास की ओर, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2009, पृष्ठ 98*
4. *यथोक्त, पृष्ठ 103*
5. *अग्रवाल, डॉ. रोहणी, हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिलाऐं, पृष्ठ 56*

न्यायिक सक्रियता

कंचन चारण
व्याख्याता, राजकीय कन्या उच्च माध्यमिक विद्यालय,जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

हमारे देश में संसदीय लोकतन्त्रात्मक गणतन्त्रीय प्रणाली को अपनाया गया है। सरकार के तीनों अंगों को प्रतिसन्तुलित करते हुए शक्ति पृथक्करण – नियन्त्रण व सन्तुलन को अपनाते हुए संविधान को सर्वोच्च बनाया गया है। संविधान की व्याख्या व संरक्षण का काम न्यायपालिका की है। विधायिका विधि सम्मत कानून ही बनाये, कार्यपालिका अपने कार्य क्षेत्रा में ही काम करे यदि ऐसा न हो तो एक नवीन संकल्पना के रूप में न्यायपालिका न्यायिक सक्रियता के नाम पर सरकार के अंगों केअपने–अपने कार्य करने व दूसरे के कार्य क्षेत्र में हस्तक्षेप का काम करती है। न्यायिक सक्रियता संविधान की मूल भावना के जनकल्याणकारी, विधि सम्मत शासन सक्रिय, सजग सरकार के अंगों को प्रभावी करने का यंत्र है।

संकेताक्षरः *शक्ति पृथक्करण, संसदीय नियन्त्रण, एकीकृत न्याय व्यवस्था, लोकहित, जनहित याचिका, समान आचार संहिता, प्रतिबंध, सामाजिक न्याय, कोलिजियम व्यवस्था।*

भारतीय संविधान में अवरोध एवं संतुलन के सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप में स्वीकार किया गया है। यहां शक्तियों को पृथ्थकरण का सिद्धान्त अपनाया गया है ताकि शासन का कोई घटक शक्तियां एकत्र कर निरकुंश न बन सकें। वर्तमान लोकतांत्रिक व्यवस्था में तीन स्वतंत्र अभिकरण – कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका स्थापित किए गए हैं। संविधान में कार्यपालिका पर न्यायिक तथा संसदीय नियंत्रण स्थापित किया गया है। विधायिका पर न्यायपालिकीय नियंत्रण स्थापित होता है तो न्यायपालिका पर विधायिका द्वारा नियत्रंण की व्यवस्था की गई है।

लोकतंत्र की सफलता के लिए इन तीन अंगों में समुचित समन्वय आवश्यक था। भारत में एक स्वतंत्र तथा एकीकृत न्याय व्यवस्था की स्थापना की गई। न्यायपालिका को संविधान की संरक्षक बनाया गया है। न्यायपालिका, विधायिका द्वारा निर्मित विधियों को न्यायिक पुनर्विलोकन कर सकती है। इसके द्वारा यह सुनिश्चित किया जाता है कि विधायिका द्वारा निर्मित विधि संविधान सम्मत हो। किसी विधि को संविधान के प्रतिकूल पाये जाने पर न्यायालय उसे गैर–संवैधानिक तथा शून्य घोषित कर सकती है। इसी प्रकार अपने कर्त्तव्यों के निर्वाह में उपेक्षावन या अपनी शक्तियों का अतिक्रमण करने वाली कार्यपालिका, न्यायपालिका तथा विधायिका द्वारा नियंत्रित की जा सकती है। पुनः जब न्यायपालिका अपने सीमा के अधिक्य में कार्य करती है, तो विधायिका, विधि या संविधान के संशोधन करके न्यायपालिका के कार्य का परिसीमन कर सकती है।

न्यायिक सक्रियता का अर्थः न्यायिक सक्रियता की कोई वैधानिक परिभाषा उपलब्ध नहीं है। वस्तुतः इस शब्द का सृजन प्रेस द्वारा न्यायालय द्वारा लीक से हटकर लिए गए कुछ निर्णयों के आधार पर किया गया है। भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री ए.एम. अहमदी तथा न्यायमूर्ति श्री कुलदीप सिंह के अनुसार, न्यायिक सक्रियता एक भ्रामक शब्द है तथा इसे मान्यता नहीं दी जा सकती। फिर भी न्यायिक सक्रियता को निम्नतः निरूपित किया जा सकता है।

- 'यह लोकहित, विधि के शासन एवं संविधान की मूल भावना के संरक्षण का एक असामान्य, अपरम्परागत किन्तु प्रभावी सकारात्मक यंत्र है।'
- 'यह एक सक्रिय, सजग एवं कर्त्तव्य–परायण न्यायपालिका द्वारा कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के परिप्रेक्ष्य में संवैधानिक दायित्व के निर्वहन का एक व्यवहारिक किन्तु अपरम्परागत ढंग है।'
- 'यह निष्क्रिय, अकर्मण्य एवं दिग्भ्रमित कार्यपालिका की लोकहित के प्रति अवांछित एवं न्यूनतम संवेदनशीलता के विरूद्ध कठोर न्यायिक दृष्टिकोण का प्रदर्शन है।'
- 'यह विधि के अनुसार न्याय करने हेतु आबद्ध न्यायपालिका द्वारा अपनी परम्परागत विधिक सीमाओं का एक ऐसा अतिलंघन है जो लोकहित के संरक्षण के प्रति निर्दिष्ट होने मात्र के आधार पर ही मान्य एवं औचित्यपूर्ण हो सकता है।'

भारत का संविधान, कल्याणकारी राज्य की वृहतर अवधारणा को अंगीकृत करता है। भारत में एक कल्याणकारी राज्य की स्थापना की गई है न कि एक पुलिस राज्य की। कल्याणकारी राज्य जनता के जीवन के प्रत्येक पक्ष के प्रति संवदेनशीलता होता है तथा जन कल्याण की भावना से प्रेरित होकर अपनी नीतियों का निर्माण और क्रियान्वयन करता है। कल्याणकारी राज्य में न्यायपालिका की भूमिका एक सजग शहरी की होती है। फलस्वरूप, न्यायपालिका अनावश्यक तकनीकियों तथा परम्पराओं की उपेक्षा करते हुए अपेक्षाकृत अधिक प्रभावी भूमिका के प्रति समर्पित हो जाता है। इस न्यायिक प्रवृत्ति या व्यवहार को प्रायः न्यायिक सक्रियता का नाम दिया जाता है।

न्यायिक सक्रियता का विकास : भारत में न्यायिक सक्रियता का विकास अचानक न होकर क्रमिक रहा है। न्यायमूर्ति कृष्णा अययर के अनुसार, न्यायपालिका का सक्रिय होना यह दर्शाता है कि कार्यपालिका अपने प्रशासनिक कार्यो को करने में असफल रही है।

भारत में न्यायिक सक्रियता का मुख्य साधन जनहित याचिका रही है। कानून की सामान्य प्रक्रिया में कोई व्यक्ति तभी अदालत जा सकता है, जब उसका कोई व्यक्तिगत नुकसान हुआ हो। पर 1980 के दशक में इस अवधारणा में बदलाव आया,जब मुख्य न्यायाधीश श्री वाई.वी. चन्द्रचूड़ ने लोकहित वादों को मान्यता दी न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि न्यायालय के दरवाजे केवल धनी और समृद्ध लोगों के लिए ही खुले नही है, बल्कि भारत के संपूर्ण लोगों का न्याय पर समान अधिकार है। इस कारण जनहित के मामलों में अधिकारों के प्रवर्तन या नैसर्गिक न्याय उपलब्ध कराने के लिए वाद ला सकती है इसके लिए न्यायालय ने अदालती औपचारिकताओं को भी दरकिनार करने का निर्णय दिया। कई बार न्यायालय ने अखबार में छपी खबरों उन पर विचार किया तथा जनहित में निर्णय दिये। इस प्रकार न्यायालय की यह नई भूमिका न्यायिक सक्रियता के रूप में लोकप्रिय हुई।

लोकहितवाद या जनहित याचिका: लोकहित वाद की अवधारणा का विकास 1980 के दशक में हुआ जब उच्चतम न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि लोकहित से प्रेरित कोई व्यक्ति या संस्था स्वयं एक पक्षकार न होते हुए भी जनहित में अधिकारों के प्रवर्तन के लिए वाद ला सकती है। लोकहित वाद के विकास में न्यायाधीश कृष्णा अययर व पी.एन. भगवती का विशेष योगदान रहा है।

लोकहित वाद ने लोकतांत्रिक अधिकारों को सबल बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह न्यायिक सक्रियता का एक प्रमुख साधन रहा है। इसके आधार पर न्यायालय ने मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन तथा पर्यावरण संबंधी अनेक महत्त्वपूर्ण निर्णय दिये हैं। उच्चतम न्यायालय ने प्रतिपादित किया है कि लोकहित वाद की नवीन अवधारणा के अधीन मूल अधिकारों के उल्लंघन पर यदि कोई अन्य व्यक्ति या संस्था उसकी ओर से याचिका दाखिल कर सकती है या पत्र द्वारा भी प्रार्थना पत्र भेज सकती है। पिछले कुछ वर्षो में लोकहित वाद की अवधारणा का राजनीतिक दुरूपयोग भी किया गया है। इस – स्थिति को देखते हुए उच्चतम न्यायालय ने शपथ–पत्र को महत्वपूर्ण बना दिया है तथा गलत सूचनाओं और गलत आधारों पर वाद दाखिल करने पर अर्थदंड की भी व्यवस्था की है जो उचित भी है।

भ्रष्टाचार की विभिन्न घटनाओं तथा लोककल्याण के प्रति कार्यपालिका की बढ़ती निष्क्रियता में लोग सामाजिक समस्याओं का निदान न्यायपालिका के निर्णयों में ढूढ़नें लगे। ऐसे में पीड़ित व्यक्तियों का उपचार हेतु न्यायपालिका की ओर भागना स्वाभाविक है। जनहित वाद की बढ़ती संख्या ने कार्यपालिका प्रशासन की दुर्बलता तथा उसमें व्याप्त भ्रष्टाचार को ही उजगार किया है। कार्यपालिका की इस निष्क्रियता से पैदा हुए शून्य को भरने के लिए न्यायपालिका को अपनी सक्रियता में वृद्धि करनी पड़ी। पिछले दो दशकों में न्यायालय ने राजनीतिक और सामाजिक महत्त्व के कई ऐसे निर्णय दिये जिससे न्यायालय के प्रति यह धारण समाप्त हो गई कि न्यायालय कानूनी तथा तकनीकी विधियों की व्याख्या करने के लिए अतिरिक्त कोई अन्य कार्य नही कर सकता। न्यायालय ने भ्रष्टाचार और पर्यावरण आदि के मामलों में कई ऐसे

महत्वपूर्ण निर्णय दिए जिनके दूरगामी परिणाम परिलक्षित हुए। जैसें समान आचार संहिता लागू करना, शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार घोषित करना, आरक्षण की अधिकतम सीमा 50% निर्धारित करना, भ्रष्टाचारियों के विरूद्ध कार्यवाही की रिपोर्ट न्यायालय को देना, वातावरण को प्रदुषित करने वाले वाहनों पर प्रतिबंध लगाना चुनाव सुधार आदि

न्यायिक सक्रियता पद कार्यपालिका का दृष्टिकोण : न्यायिक सक्रियता एक विवादास्पद संकल्पना है, जिसके संबंध ने न्यायपालिका और कार्यपालिका के अलग–अलग तर्क है। कार्यपालिका के अनुसार न्यायपालिका, कार्यपालिका और विधायिका के कार्यो में हस्तक्षेप कर रही है। वर्तमान परिस्थितियों में न्यायपालिका पर भी नियन्त्रण स्थापित करने के लिए किसी संस्था की आवश्यकता है, क्योंकि अनेक न्यायाधीशों के विरूद्ध भी दुराचरण और भ्रष्टाचार के मामलें पाठ गए है। लोकतन्त्र में सरकार के किसी भी अंग को अनियन्त्रित शक्ति प्रदान नहीं की जा सकती है। संविधान में ही शासन के प्रत्येक अंगो पर प्रतिबंध है। कार्यपालिका या विधायिका के अनुसार वस्तुतः न्यायाधीश जनता द्वारा निर्वाचित नहीं होते, इसलिए सामाजिक न्याय का मूल दायित्त्व संसद का है न्यायापालिका का नहीं न्यायपालिका तो विवादों के समाधान की एक संस्था है, जिसका कार्य द्वितीयक है, प्राथमिक नहीं। संविधान में शासन के प्रत्येक अंगों के कार्य निर्धारित हैं। इसलिए न्यायपालिका विधायिका या कार्यपालिका को कार्यो का आदेश नहीं दे सकती है। वस्तुतः इनका यह भी तर्क है कि वित्तीय एवं प्रशासनिक विषयों का ज्ञान, न्यायपालिका के पास नहीं होता। ऐसे मामलों में न्यायपालिका सरकार को निर्देश नहीं दे सकती।

न्यायपालिका का दृष्टिकोणः न्यायालय केवल विवादों के समाधान की संस्था नहीं है, इसका कार्य सामाजिक न्याय का संपादन भी है। न्यायपालिका के अनुसार संविधान की व्याख्या इसका मूल कार्य है परन्तु संविधान की व्याख्या परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार होनी चाहिए। 'यह सत्य है, कि भारत में संसदीय शासन प्रणाली स्वीकार की गयी है। संविधान निर्माताओं ने संसद को प्राथमिक बनाने का प्रयत्न भी किया है' लेकिन जन प्रतिनिधि के नाम पद भ्रष्टाचार और गैर–संवैधानिक कार्य करने की अनुमति किसी को भी नही हो सकती। भारतीय राजनीति में जिस प्रकार अपराधीकरण बढ़ा है, उस परिस्थिति में संसदीय शासन के नाम पर न्यायिक पुरावतलोकन पर प्रतिबंध नही लगाया जा सकता इसलिए यदि न्यायिक सर्वोच्चता की संकल्पना स्वीकार नहीं की जा सकती तो संसदीय सर्वोच्चता की मान्यता भी स्वीकार करना कठिन है। इसलिए व्यवहार में न्यायपालिका की स्वतन्त्रता और स्वायत्तता आवश्यक है, जबकि जनप्रतिनिधियों को संविधान निर्माताओं के आदेश को ध्यान में रखना होगा।

न्यायिक अतिसक्रियता : संविधान में न्यायपालिका को संविधान की व्याख्या का अधिकार है और न्यायपालिका संविधान की व्याख्या के लिए नवीन दृष्टिकोण अपना सकती है परन्तु नीति निर्माण का कार्य पूर्णतः कार्यपालिका के क्षेत्राधिकार का विषय है जिस पर न्यायपालिका हस्तक्षेप नही कर सकती। वर्तमान में न्यायपालिका द्वारा कार्यपालिका को नीति निर्माण संबंधी आदेश दिए गए है। यही न्यायिक अतिसक्रियता है। हाल ही में न्यायपालिका ने बी.सी.सी.आई. के प्रमुख के रूप में सुनिल गावस्कर की नियुक्ति की, गेहूँ को गरीबों में मुक्त बांटने का आदेश दिया, केन्द्रीय सतर्कता आयुक्त की नियुक्ति को रद्द कर दिया, काले धन हेतु सरकार द्वारा गठित विशेष जाँच टीम के सदस्यों पद न्यायपालिका ने आपत्ति उठायी। 2G स्पेक्ट्रम मामले की जाँच उच्चतम न्यायालय द्वारा स्वयं की जा रही है और कोलिजियम व्यवस्था के माध्यम से न्यायाधीशों का नियुक्ति स्वयं न्यायाधीश कर रहे है। अतः न्यायाधीशों की नियुक्ति में राष्ट्रपति की प्राथमिकता समाप्त हो गयी है।

संविधान में न्यायपालिका और विधायिका के मध्य सामजंस्य स्थापित किया गया है। व्यावहारिक रूप में यदि सरकार के तीनों अंगों के मध्य सांमजस्य नहीं होगा, तो प्रशासन का कार्य प्रभावी नही हो सकता, क्योंकि न्यायपालिका द्वारा दिए गए निर्णय को लागू करने का दायित्व कार्यपालिका का है। यदि कार्यपालिका उन निर्णयों को लागू न करे, तो व्यवहार में वे निरर्थक हो जाऐगें। इसलिए अवश्यकता सामंजस्य की है। संघर्ष की नही। यद्यपि न्यायपालिका ने बालको (BALCO) विनिवेश केस में स्पष्ट रूप से कहा कि आर्थिक नीतियों के निर्धारण का अधिकार सरकार को है, न्यायपालिका का नहीं। NCERT केस में न्यायपालिका ने पुनः यह दोहराया कि शैक्षिक पाठ्यक्रमों को निर्धारित करने का अधिकार सरकार का है, न्यायपालिका का नहीं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *भारत का संविधान – डी.डी. बसु*
2. *भारत का संविधान एवं राजव्यवस्था–विनय कुमार ओझा (परीक्षा मंथन)*
3. *भारतीय राज व्यवस्था – राजेश मिश्रा*
4. *पत्रिकाएँ– वर्ल्ड फोकस, इण्डिया टुडे*
5. *भारतीय संविधान – बी.के.शर्मा, बोवल, जयनारायण पाण्डे*
6. *भारतीय संविधान – ए.डी.शर्मा।*

पाटन दुर्ग : शेखावाटी में तंवरवंश

पूनम लूनीवाल
शोध छात्रा, वनस्थली विद्यापीठ,टोंक

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

किसी भी दुर्ग के अध्ययन के लिए दुर्ग के स्थापत्य से पूर्व उस स्थल की भौगोलिक स्थिति, दुर्ग से संबंधित इतिहास, दुर्ग के निर्माणकाल एवं निर्माता का ज्ञान होना अतिआवश्यक है। इसलिए प्रस्तुत लेख में राजस्थान के सीकर जिले में स्थित पाटन के दुर्ग के स्थापत्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। स्थापत्य की दृष्टि से सैनिक स्थापत्य एवं नागरिक स्थापत्य का वर्णन प्रस्तुत लेख में किया गया है। शेखावाटी में तंवर वंश के प्रादुर्भाव, मुगलों के साथ संबंध एवं अनेक आक्रमणों का साक्षी पाटन का प्राचीन दुर्ग आज भी शान से खड़ा है।

संकेताक्षर : *राजस्थान, सीकर, पाटन, दुर्ग, इतिहास, स्थापत्य।*

राजस्थान के सीकर जिले में स्थित पाटन कस्बा, नीमकाथाना तहसील में 27.49° उत्तरी अक्षांश तथा 75.58° पूर्व पर अवस्थित है। यह जिला मुख्यालय से 95 किलोमीटर पूर्व की ओर तथा नीमकाथाना से 21 किलोमीटर की दूरी पर बसा हुआ है। यह राजस्थान–हरियाणा की सीमा पर स्थित हैं। रियासतकाल से ही पाटन–नीमकाथाना–कोटपूतली क्षेत्र को तोरावाटी (तंवरावाटी) के नाम से जाना जाता है। तोरावाटी क्षेत्र प्रतिहारकाल से ही तोमरवंशी (तंवर वंश) राजपूतों का राज्य रहा है, किन्तु समय–समय पर यहां चौहान शासकों का भी शासन रहा है।[1]

वीर धनुर्धर अर्जुन के वंशज अनंगपाल तोमर (प्रथम) ने 9वीं शताब्दी में दिल्ली को अपनी राजधानी बनाया था। बाद में अनंगपाल द्वितीय ने सन् 1050 में दिल्ली के शासन की बागडोर अपने हाथों में लेकर शेखावाटी तक अपने राज्य का विस्तार किया।[2] तंवर शासकों का ध्वज चिन्ह महावीर (हनुमान) है तथा ये श्रीकृष्ण के उपासक है। इनकी अधिष्ठात्री देवी योगमाया या सारंग है।[3] दिल्ली में तुर्कों एवं गौर शासकों के आगमन के पश्चात् अनंगपाल द्वितीय के पौत्र ने सांखला राजपूतों को युद्ध में हराकर तोरावाटी में प्रवेश किया तथा पाटन को अपनी राजधानी बनाया था।[4]

अजमेर–दिल्ली के चौहान वंश के अन्तिम स्वतंत्र शासक महाराज पृथ्वीराज तृतीय जो अनंगपाल द्वितीय के भान्जे थे (सन् 1179–1193) के समय तोरावाटी प्रदेश पर तंवर उनके अधीन सामंतों के रूप में शासन करते थे।[5]

सन् 1601 में मुंगेर (बिहार प्रदेश) के युद्ध में बादशाह अकबर की ओर से पाटन के राव बलभद्रसिंह ने अपने तंवर साथियों के साथ युद्ध में भाग लिया था। मुंगेर दुर्ग को फतह कर पाना अति दुष्कर कार्य था, राव बलभद्रसिंह ने अपने साहस का परिचय देते हुए दुर्ग के द्वार को तोड़कर इस अजेय दुर्ग को अपने अधीन तो कर लिया, परन्तु उसी समय वीरगति को प्राप्त हो गये। इनके साथ इनकी एक रानी भी सती हुई थी, जिनकी छतरीं मुंगेर में आज भी विद्यमान है। अग्निस्नान करने वाली उस सती की याद में आज भी उनकी समाधि पर प्रतिवर्ष मेला लगता है। राव बलभद्रसिंह की स्मृति में भी एक छतरीं का निर्माण किया गया जो आज भी उस रणबांकुरे की वीरता और साहस की अमर कहानी का प्रतीक बनकर खड़ी है।[6]

सन् 1767 में भरतपुर के जाट शासक जवाहरसिंह एवं जयपुर के महाराजा माधवसिंह के मध्य पाटन रियासत के मावण्डा नामक स्थान पर घमासान युद्ध हुआ। इस यद्ध में जवाहरसिंह मात खाकर भाग खड़ा हुआ। चुंकि पाटन एक स्वतंत्र रियासत

थी इसलिए पाटन के राव सम्पतसिंह ने इस युद्ध में तटस्थ रहना ही उचित समझा।[7]सन् 1789 में मराठों व राठौड़ राजपूतों के बीच युद्ध भी पाटन के पास ही हुआ था। तंवरों की राजधानी पाटन के पास मराठों की तोपें आग उगलने लगी थी और राजपूत सेना पीठ दिखाकर भाग खड़ी हुई। यद्यपि युद्ध कला की दृष्टि से पाटन एक अजेय दुर्ग था, किन्तु मराठा सेना का नेतृत्व कर रहे जनरल द बॉय की रणनीति के कारण राठौड़ो को करारी हार का सामना करना पड़ा था। मराठों ने उनके 1300 ऊँट, 21 हाथी, 300 घोड़े तथा 105 तोपें लूट ली तथा बचे हुए सैनिकों को आत्मसमर्पण करना पड़ा। मराठों की इस विजय के कारण किसी चारण ने कहा–

घोड़ा, जोड़ा, पावड़ा, मूठवाली ए मरोड़
पाटन मं पधरायगा, रकम पांच राठौड़।[8]

पाटन के राव सम्पतसिंह ने मराठा महादजी सिंधिया के आगे आत्मसमर्पण कर दिया और मराठों के करद बन गये थे। यह प्रथम बार हुआ था कि इस अजेय दुर्ग को किसी ने फतेह किया था। युद्ध के पश्चात् की विभीषिका ने पाटन के जन–जीवन को अस्त–व्यस्त कर दिया था तथा आर्थिक दृष्टि से पाटन टूट चुका था।सन् 1792 से सन् 1803 तक यह मराठा शासकों का करद रहा। इस समय राजा जवाहरसिंह पाटन के शासक थे।[9]

राव जवाहरसिंह की दोनों रानियों से उनके पुत्र लक्ष्मणसिंह एवं बिशनसिंह हुए। सौतेले भाई बिशनसिंह के प्रति अपने पिता के अतिरिक्त प्रेम को देखकर लक्ष्मणसिंह ने बादलगढ़ के महल में अपने पिता की हत्या कर दी तथा सौतेले भाई व मां को बंदीगृह में डाल दिया। लक्ष्मणसिंह द्वारा किये गये इस कुकृत्य की कहानी आज भी 'बादलगढ़ महल' की ऊपरी मंजिल का प्रकोष्ठ कह रहा है। जवाहरसिंह को अपनी प्राण रक्षा हेतु कितना संघर्ष करना पड़ा होगा, इस बात का आकलन प्रकोष्ठ में स्थित स्तम्भ, जिसकी आड़ में वे बचने का प्रयास कर रहे थे, पर पड़े तलवार के अनेक निशानों से लगाया जा सकता है।[10]

राव उदयसिंह के समय जयपुर व जोधपुर रियासत के सीमा विवाद में उदयसिंह ने ही मध्यस्थता करवा कर विवाद का निपटारा करवाया था। इस बात से सिद्ध होता है कि पाटन रियासत का कद कितना ऊँचा था। नेपाल राजघराने की राजकुमारी का विवाह उदयसिंह के साथ हुआ था।[11]

निर्माणकाल एवं निर्माता: तंवर वंश की 186 वीं पीढ़ी के राव बलभद्रसिंह ने सन् 1564 में आगरा के लाल किले की नकल पर पाटन में दुर्ग का निर्माण करवाया था।[12] राव केसरीसिंह ने सन् 1639 में पाटन के महलों का 'बादलगढ़ महल' नाम से निर्माण करवाया था। राव केसरीसिंह का समय पाटन के इतिहास में स्वर्णयुग कहा जा सकता है। इनके समय में पाटन के महलों का विस्तार हुआ तथा मूर्तिकला व चित्रकला का भी विस्तार हुआ। पाटन दुर्ग व प्राचीन महल (मध्य) के अलावा भी एक अन्य नवीन महल भी बना हुआ है, जिसे बादलगढ़ के नाम से जाना जाता है। यह लगभग 150–200 वर्ष पुराना है तथा ये महल पाटन नगर की नयी आबादी में स्थित है।[13]

सैन्य स्थापत्य: लगभग 1500 मीटर ऊँचे पहाड़ पर बनवाये गये ऐतिहासिक दुर्ग का रकबा लगभग 300 बीघा है। इस किले पर छः विशाल बुर्जो का निर्माण किया गया है, जिसमें तीन अग्र भाग तथा तीन पश्च भाग में बनवायी गई है। अग्र भाग की बाँयी बुर्ज के समीप ही दुर्ग का प्रवेश द्वार है, जिसमें एक के बाद एक तीन अन्य द्वार निर्मित किये गये है।

मध्य महल में प्रवेश से पहले एक के बाद दो बड़े दरवाजे बने हुए है जिनके ऊपर की छत पर प्रहरी हमेशा चौकस रहते थे। इनमें बन्दूक की नलियों के लिए बनाये गये छिद्र इस तरह बनाये गये है कि वहां स्थित व्यक्ति बाहर का पूरा नजारा ले सकता था परन्तु बाहरी व्यक्ति ऊपर बैठे व्यक्ति को देख नही सकता था। महल के चारों कोनों पर चार छोटे बुर्ज बनाये गये है, जिनमें अग्र भाग के दोनों बुर्जो की ऊँचाई

पश्च भाग के बुर्जों की ऊँचाई से कम है। आगे के बुर्ज एक मंजिला तथा पीछे के दोनों बुर्ज दो मंजिला है, इनमें बहुत सारे खिड़कीनुमा झरोखें बने हुए है।

प्रांगण में दोनों ओर बहुत सारे कक्षों का निर्माण किया गया है, लेकिन वर्तमान मे इन कक्षों की छत टूटी हुई है। इस महल के नीचे एक गुप्त महल भी बना हुआ है, जिसमें जाने के लिए सीढियां बनी हुई है। शौचालय तथा स्नानागार का भी किले में निर्माण करवाया गया है।

इस खण्डहररूपी दुर्ग से निकलकर पहाड़ से नीचे उतरने पर तलहटी में प्राचीन महल (मध्य महल, यह किले तथा नीचे समतल पर निर्मित बादलमहल के मध्य निर्मित होने के कारण, मध्य महल भी कहलाता है) बना हुआ है। पुराना महल जो कि भूमि के समतल से तीन मंजिल नीचे व चार मंजिल ऊपर अर्थात् कुल 7 मंजिला बना हुआ है, स्थापत्य कला की दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण स्थल है। यह महल पाटन की पुरानी आबादी में स्थित था। इस महल का प्रांगण बहुत बड़ा है, इस प्रांगण में राजा का विशाल दरबारनुमा कक्ष बना हुआ है, जहां विराजमान होकर शासक अपनी प्रजा की समस्याएं सुनते थे। इसके ऊपरी भाग पर भव्य छतरीनुमा कक्ष का निर्माण किया गया है। महल में बने कक्षों की आंतरिक एवं बाह्य संरचना महाभारत काल के महलों की याद को पुनर्जीवित करती है।

जवाहरसिंह के शासनकाल में पाटन में स्थापत्य कला का अधिक विकास हुआ। अनेक छतरियों का निर्माण हुआ जिनमें बने चित्र, भित्ति चित्रकला, के अदभुत् नमूने कहे जा सकते है। वर्तमान में इस महल का जीर्णोद्धार चल रहा है। इसके चारों तरफ का बगीचा अभी नवीन पेड़-पौधों से सुसज्जित है। महल में बहुत सारे झरोखें बनाये बये है। इसकी बाहरी दीवारों पर सुन्दर माण्डणे उकेरे गये है। महल के अन्दर आकर्षक चित्रकारी की गई है, इनमे पशु-पक्षियों तथा युद्ध स्थल के चित्र यहां आने वाले पर्यटकों का ध्यान स्वतः ही अपनी और आकर्षित करते है। यहां के बादलगढ़ महल की बनावट, जयपुर के हवामहल से मेल खाती है। महल के अन्दर चांदी के पुराने बर्तन, तलवारें इत्यादि सहेज कर रखे गये है।[14]

पाटन दुर्ग में अन्न एवं जल व्यवस्थाः सन् 1699 में महाराव बक्सीराम के राज्य के दीवान प्रेमसिंह चौहान ने केसर की बावड़ी एवं कुंए का निर्माण दिल्ली के बादशाह औरंगजेब के समय में करवाया था।[15] दुर्ग की पहली मंजिल पर ही रसोईघर का निर्माण करवाया गया है, जिसकी दीवारों पर अब भी कालिख जमी हुई है। पाटन की बावड़ी और कुंओं में अधिकांश राव केसरीसिंह के नाम की स्मृति को संजोये हुए है। मध्य महल के नीचे राव केसरीसिंह द्वारा निर्माण करवाया हुआ एक विशाल पानी का टांका है जिसका क्षेत्रफल लगभग 12,500 वर्गफुट है। इस टांके में अभी भी पानी भरा हुआ रहता है। इसमें प्राकृतिक धाराओं से पानी आता है, जो कभी नही सूखता है। बादलगढ़ महल में प्राचीन समय में एक बावड़ी तथा 3 कुंए बने हुए थे, अब ये बावड़ी तरणताल का रूप ले चुकी है।[16]

वर्तमान में राव दिग्विजयसिंह ने बादलगढ़ महल को हैरिटेज होटल का रूप दे दिया है और मध्य महल का जीर्णोधार चल रहा है परन्तु महाराज परीक्षित की गद्दी वाले ऐतिहासिक पाटन के प्राचीन दुर्ग को अभी तक संरक्षण नहीं मिला है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *शर्मा, महावीर प्रसाद, तोरावाटी का इतिहास, कोटपूतलीः प्रकाशन समिति, 1980, पृ. 67*
2. *भण्डारी, चन्द्रराज, विश्व इतिहास कोश, प्रथम खण्ड, मध्यप्रदेशः ज्ञानमंदिर प्रकाशन, 1962, पृ. 61*
3. *बहादुर, के. पी., हिस्ट्री, कास्ट एण्ड कल्चर ऑफ राजपूत्स, नई दिल्लीः इएसएस इएसएस पब्लिकेशन, 1973, पृ. 142*
4. *साक्षात्कार- कमलसिंह तंवर (इंजीनियर, आयु 48 वर्ष)*
5. *शर्मा, दशरथ, चौहान सम्राट पृथ्वीराज तृतीय और उनका युग, जयपुरः राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, 2003, पृ. 26*
6. *शर्मा, महावीर प्रसाद, पूर्वोक्त, पृ. 80*
7. *श्यामलदास, वीर विनोद, भाग-2, नई दिल्लीः मोतीलाल बनारसी लाल, 1986, पृ. 1305*
8. *भाटी विक्रमसिंह, मध्यकालीन राजस्थान में ठिकाना व्यवस्था,जोधपुरःराजस्थानी ग्रंथागार,2004, पृ. 675*
9. *गहलोत,जगदीशसिंह, राजपूताने का इतिहास, भाग-3, जोधपुरः हिन्दी साहित्य मन्दिर 1966, पृ. 123*
10. *शर्मा, महावीर प्रसाद, पूर्वोक्त, पृ. 89-90*
11. *साक्षात्कार- भोमसिंह तंवर (दुर्ग के वंशजो के रिश्तेदार, आयु 86 वर्ष)*
12. *अकबरनामा (अनु.) मूलपाठ, जिल्द 3, पृ. 195*
13. *शर्मा, महावीर प्रसाद, पूर्वोक्त, पृ. 82*
14. *पाटन दुर्ग, स्वयं सर्वेक्षण के आधार पर - 09.05. 2014, 09.07.2016*
15. *शर्मा, महावीर प्रसाद, पूर्वोक्त, पृ. 67*
16. *(क) साक्षात्कार- भोमसिंह, उम्र 86 वर्ष (ख) पाटन दुर्ग, स्वयं सर्वेक्षण के आधार पर - 09.05.2014, 09.07.2016*

महिला सशक्तीकरण : सरकारी योजनाओं के विशेष संदर्भ में

डॉ. यशमाया राजोरा
दौसा

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

महिलाऐं हमारे देश की आबादी का लगभग आधा हिस्सा हैं इसलिए राष्ट्र विकास के महान कार्य में महिलाओं की भूमिका तथा योगदान को पूरी तरह सही परिप्रेक्ष्य में रखकर ही राष्ट्र निर्माण के कार्य को समझा जा सकता है। महिलाओं को विकास की मुख्यधारा से जोड़े बिना किसी समाज, राज्य एवं देश के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जब हम महिला सशक्तिकरण की बात करते हैं तो हमारा तात्पर्य पुरुषों की बराबरी करना न होकर महिलाओं को सशक्त करने से है। आर्थिक–सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में प्रत्येक स्तर पर कार्य करने में महिलाओं की सशक्त भागीदारी से है। सरकारी योजनाओं के साथ–साथ महिलाएं स्वयं भी आज काफी जागरूक हो रही हैं।

संकेताक्षर : *महिला सशक्तीकरण ,मानव अधिकार ,महिला विकास ,सामाजिक परिवर्तन ,महिला उत्पीड़न।*

महिला सशक्तीकरण एवं महिला विकास एक अवधारणा, एक विचार, एक सिद्धान्त, एक आवश्यकता और एक व्यवहार के रूप में बहुआयामी, बहुपक्षीय, प्रक्रिया है जो सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों पर अपना ध्यान केन्द्रित करके महिला की स्थिति, उसकी भूमिका, उसके संघर्षों एवं उसकी अन्तर्दृष्टि को प्रकट करते है। समाज के महिला विषयक सोच अथवा समाज में महिला की स्थिति के ये दो परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाले पक्ष है। जो मूलतः सशक्त है। लेकिन जिसे अशक्तको सशक्त बना दिया गया, समाज के संतुलित और स्वास्थ्य विकास के लिए उसे पुनः सबल बनाना होगा। शक्तिशाली को शक्तिहीन बनाने की अपेक्षा अशक्तको सशक्तबनाना अधिक चुनौतिपूर्ण और कठिन है। इसलिए महिला– सशक्तीकरण को एक सामाजिक अभियान के रूप में स्वीकार करने की आवश्यकता है।

महिला–सशक्तीकरण का यह अभियान इस आकांक्षा से संचालित है कि समाज के सभी क्षेत्रों में महिला के अस्तित्व को मनुष्य के रूप में स्वीकृति प्राप्त है। महिला और पुरुष की यह समानता की व्यावहारिक प्रतिष्ठा आवश्यक है जिसमें महिला अन्या, द्वितीयक, गौण, उपेक्षिता, अनुगामिनी या अनुचर नहीं, अनिवार्य और सहचरी की भूमिका में हो। अर्द्धनारीश्वर, वाक् और अर्थ तथा द्यावापृथिवी जैसे मिथकों के माध्यम से भारतीय संस्कृति ने सभ्यता के आरंभ से ही महिला–पुरूष की इस समानता को स्वीकृति प्रदान की है। इसी युग्म–भाव और पारस्परिकता को आधुनिक संदर्भ में प्रतिष्ठित करने का अभियान हैं। वे अपनी सशक्तता को निर्विवाद रूप से प्रमाणित करने में सक्षम हैं। लेकिन महिला के अबला रूप की पोषक शक्तियों ने उनकी इस तेजस्विता की उपेक्षा करके उन्हें पति–परमेश्वर की अनुचरी मात्र बनाकर रख दिया। अतः उन्हें पुनः फिर से परमेश्वरी नहीं बनाया जाता, तब तक महिला–पुरूष–समता का दावा नहीं किया जा सकता। परमेश्वरी बनाने का अर्थ महिला के मानवी रूप की पूर्ण स्वीकृति मात्र है, देवी बनाकर पूजना नहीं। महिला–सशक्तीकरण तात्पर्य है कि स्त्रियों को उनकी हरण की गई अबाध स्वतंत्रता और निर्णय क्षमता लौटाना। जब तक ऐसा नहीं किया जाता तब तक अथर्वसंहिता के हवाले से अपने घर में पुत्र और शत्रु के घर में कन्या के जन्म की प्रार्थनाएँ की जाती रहेंगी अथवा ऐतरेय ब्राह्मण के हवाले से कन्या के जन्म को शोक का विषय माना जाता रहेगा। भारतीय इतिहास साक्षी है आज तक सशक्त स्त्रियों के सम्मान में

अनेक उदाहरण प्राप्त हैं, विश्व के अनेक देशों ने दार्शनिक चिंतन और बौद्धिक विमर्श से स्त्रियों को सदा दूर रखने के प्रयास किए हैं तथा उन्हें गुलाम मानकर पुरूष के अधीन रहने को विवश किया है। शिक्षा और रोजगार के अवसरों से किसी मानव–जीव को मात्र महिला होने के कारण वंचित न किया जाना चाहिए। इस स्वतंत्रता का अर्थ सौंदर्य प्रतियोगिताओं और विज्ञापनों की उपभोक्तावादी दुनिया की अंधी दौड़ में शामिल होना मात्र् नहीं समझा जाना चाहिए। महिला–सशक्तीकरण पर विचार विमर्श करते ही कुछ रूढ़ीवादी एवं पुरूष प्रधानता वाली विचारधारा में लोगों को घर, परिवार और विवाह के टूटने की चिंता सताने लगती है। किसी संस्था के जीवित रहने के लिए उसके समस्त अंगों का सशक्त रहना जरूरी है तथा इन संस्थाओं के लिए महिला का सशक्तहोना ही श्रेयस्कर है। इन्हीं संस्थाओं के बीच महिला ने सभ्यता और संस्कृति का आविष्कार, संरक्षण और संवर्द्धन किया है। रसोई और घर बनाने से लेकर शिल्प और पशु पालन तक के क्षेत्रो में महिला ने ही पहल करके विकास का मार्ग प्रशस्त किया है। वह महिला आत्मनिर्भर और स्वायत्त थी। कालातंर में उसे भूमि और संपत्ति का पर्याय बना दिया गया था, जिससे उसकी सृजनशीलता कुंठित हुई। अपनी सृजन–शक्तिको महिलाओं ने लोकगीतों के माध्यम से भी प्रमाणित किया है। सृजन महिला का स्वभाव है, घर उसका अपना आविष्कार हैं।

मानव अधिकार की अवधारणा के अनुसार सम्मानपूर्ण एवं गरिमापूर्ण जीवन जीना प्रत्येक मानव का प्राकृतिक एवम् जन्मजात अधिकार है। गरिमापूर्ण जीवन के अभाव में व्यक्ति का सर्वागींण विकास असम्भव है। मानव होने के नाते ये अधिकार महिला को भी समान रूप से प्राप्त है। धर्म ग्रन्थं एवं आचार संहिता साक्षी है कि महिलाओं की स्थिति प्राचीन काल से ही सम्मान जनक एवं गरिमापूर्ण थी। महिलाऐं आज हर क्षेत्र में सफलता प्राप्त कर रही हैं। जिससे इनकी भूमिका एक सशक्त महिला के रूप में उभरकर सामने आ रही है। इसका कारण शिक्षा, राजनीतिक जागरूकता, आत्मनिर्भरता की भावना के साथ–साथ पुरूषों का सहयोग भी रहा है। आज लड़कों के साथ लड़कियों के विकास पर भी पर्याप्त ध्यान दिया जा रहा है। विभिन्न तरह की महिला विकास योजनाओं के साथ–साथ महिला संरक्षण कानूनों तथा महिलाओं के मानवाधिकारों का सहयोग रहा है। इसके साथ ही विश्व एवं राष्ट्रीय स्तर पर संघर्षरत महिला मानवाधिकार संगठनों का भी पूर्ण सहयोग रहा है।

वर्तमान समय में महिला सशक्तीकरण पर विचार –विमर्श जोर–शोर से चल रहा है। पुरुषों का एक बड़ा वर्ग भी महिला सशक्तीकरण की आवाज को आगे बढ़ाने में सहयोगी रहा है जिसके परिणामतः महिलाएँ आज हर क्षेत्र में पुरुषों के साथ कार्य कर देश के विकास में अपना बहुमुल्य योगदान दे रही है। महिलाओं का सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं आर्थिक पक्ष मजबूत हुआ है। पारिवारिक रहन–सहन में भी महिलाओं की भूमिका पथ–प्रदर्शक की हो रही है। आर्थिक मामलों में तो आज यह स्थिति है कि पुरुषों के बराबर सम्पत्ति और उसके विस्तार में महिलाओं की भूमिका अहम पक्ष बन गयी है।

महिला सशक्तीकरण का यथार्थः वर्तमान में हालात् यह कि महिलाओं के साथ बलात्कार छेडछाड़, उत्पीड़न, प्राणघातक हमलों और हत्याओं के मामले पूरे देश में ही चरम सीमा पर हैं। महानगरों के अलावा छोटे शहरों,कस्बों,गावों में भी इस तरह की घटनाएँ दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं तथा किसी भी उम्र की महिलाएँ आज सुरक्षित नहीं हैं। अबोध बालिकाओं के साथ बलात्कार और हत्याओं के मामले रोज सामने आ रहे है।यहाँ तक कि बुजुर्ग महिलाऐं भी सुरक्षित नहीं हैं। घर से बाहर ऑटों, बसों, रेलों, कार्यालयों, पार्को और सड़कों पर तो उनके साथ दुर्व्यवहार होता हैं। घर की छत के नीचे भी वे उत्पीड़त हो रही हैं जहाँ परिजन,परिचित और बीमार मानसिकता वाले लोग उन्हें चैन से जीने नहीं दे रहे हैं। माँ की कोख में भी वे सुरक्षित नहीं हैं। सरक्षंण देने के लिए बने कानूनों के बावजूद भी वह इलाकों में अकेली स्त्रियाँ भी सुरक्षित नही हैं। कस्बे देहातों में तरह– तरह के बहाने बनाकर निरीह महिला को पीटना,बलात्कार करना,निर्वस्त्र घुमाना, जला देना या सरेआम गोली मारना आज आम बातें हो गई हैं। महिलाओं के अधिकारों के प्रति असहिष्णुता इस कदर बढ़ती जा रही हैं।

महिला विकास से तात्पर्यः परिवर्तन प्रकृति का अटल और शाश्वत नियम है। परिवर्तन की प्रक्रिया कभी धीमी होती है, तो कभी तेज। यदि समाज में परिवर्तन न हो तो उसमें जड़ता आ जाती है। समाज में नई–नई विचारधाराएँ आती है। पुरानी परम्पराएँ एवं रूढ़ियाँ क्षीण होती है, उनमें बदलाव आता है। सामाजिक ढाँचे में होने वाले परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन कहा जाता है। सामाजिक परिवर्तन एक स्वभाविक ओर अवश्यम्भावी घटना है। इसका संबंध एक व्यक्ति अथवा कुछ व्यक्तियों के व्यवहारों, विश्वासों व मूल्यों परिवर्तन न होकर समाज के सभी अथवा अधिकांश लोगों की जीवन विधि में परिवर्तन से है तथा मानव सामाजिक संबंध में परिवर्तन से हैं सामाजिक परिवर्तन में परम्पराओं की शक्तियाँ, जाति व्यवस्था, निरपेक्षता, अज्ञानता तथा जनसंख्या विस्फोट प्रतिरोधक का कार्य करते है। शासकीय अभिजन की सामाजिक परिवर्तन में बाधक हो सकते है। यदि वे समुदाय के कल्याण अथवा समाज के विकास के लिए प्रतिबद्ध नहीं होते। सरकार द्वारा

सामाजिक–आर्थिक, नियोजन, वैज्ञानिक उपाय तथा सुधारात्मक उपाय, नगरीकरण, औद्योगिकरण, सामाजिक एवं धार्मिक सुधार आन्दोलन प्रौद्योगिकी विकास, शिक्षा, पश्चिमीकरण, संस्कृतिकरण, भूमण्डलीकरण, आर्थिक उदारीकरण, सांस्कृतिक, आर्थिक, जैविकीय, भौगोलिक पर्यावरण संबंधी तथा मनोवैज्ञानिक आदि सामाजिक परिवर्तन के रूप सामाजिक जीवन के सभी पक्षों में मापक परिवर्तन का आह्वान करते है।

महिला विकास में आने वाली बाधाएँ :

भारतीय महिलाएँ संविधान में वर्णित राजनीतिक सामाजिक एवं आर्थिक अधिकारों का प्रयोग कर पा रही हैं या नहीं कर पा रही हैं ? अतः जो कारण उन्हें समाज से अलग करके पराधिनता की ओर धकेलते हैं वे कारण इस प्रकार हैः–

- भारतीय सामाजिक संरचना
- महिलाओं में अशिक्षा
- महिलाओं में संकोच
- परिवार में निर्धनता
- बालक और बालिकाओं में भेदभाव
- नैतिकता का दोहरा मापदण्ड
- महिलाओं की आर्थिक पराधीनता
- महिलाओं में असुरक्षा का भय
- विभिन्न राजनीतिक दलों में सत्ता प्राप्ति एवं स्वार्थ की दूषित प्रवृति
- समाज में नैतिकता का अभाव
- खर्चीली चुनाव प्रणाली एवं
- महिलाओं में राजनीतिक जागरूकता का अभाव।

कानूनी प्रावधानों और उनके प्रभावी क्रियान्वन द्वारा ही महिलाओं पर होने वाले अपराध और अत्याचारियों की मानसिकता को ही बदला जा सकता है। आज आवश्यकता इस बात की है कि जब तक समाज अपना दृष्टिकोण महिलाओं के प्रति सकारात्मक, व्यावहारिक और सम्मानजक नहीं बनाएगा तब तक महिलाओ की वर्तमान स्थिति सन्तोषजनक नहीं हो पाएगी। मात्र महिलाओं को अधिकार देने से क्रान्तिकारी परिवर्तन संभव नहीं है। आज महिलाओं को समाज में सम्मान से ज्यादा सुरक्षा की आवश्यकता है और यह तभी ही संभव है जब समाज स्वयं परिवर्तन करने के लिए सुदृढ़ निर्णय लेने में सक्षम हैं।

महिला सशक्तीरण एवं महिला विकास हेतु उपाय एवं सुझाव : महिला सशक्तीकरण एवं महिला विकास विषय इसलिए अति आवश्यक समझा गया है क्योंकि महिलायें अनेक प्रकार की समस्याओं से जूझ रही है, जो उनके विकास के मार्ग को अवरूद्ध कर रही हैं। इन समस्याओं के निराकरण, निदान और उपचार हेतु किसी व्यवसायिक एवं वैज्ञानिक ज्ञान की आवश्यकता अपरिहार्य हो गई है। महिलाओं के साथ लिंग असमानता, घरेलू हिंसा, मानसिक हिंसा, शारीरिक हिंसा, यौन उत्पीड़न, महिलाओं का शोषण, बलात्कार आदि सभी समस्याओं को दूर करने के लिए महिलाओं को सबल बनाने की आवश्यकता है। इन समस्याओं से दूर करने के लिए पुरुष वर्ग भी महिला सशक्तीकरण की आवाज को आगे बढ़ाने में सहयोगी बन रहा हैं।

नारी को समर्थ बनाने के लिए सबसे पहले उसे सुशिक्षित बनाना होगा। लड़कियों की शिक्षा तो स्कूलों में भी चल सकती है, लेकिन बड़ी उम्र की जो महिलायें अशिक्षित और अविकसित स्थिति में गुजर कर रही हैं उनके लिए प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था की जाना चाहिए। गृहस्थ और प्रौढ़ महिलाओं की शिक्षा की समय अनुकूल रहते हुए इस कार्य को पूर्ण करना होगा। जिससे लड़कियाँ बड़ी होकर समाज को विकास के मार्ग पर अग्रसर करने की स्थिति में जा पहुँचीं, नारी की प्रौढ शिक्षा का प्रबन्ध आज ही करना होगा, ताकि कुछ ही समय में उसके सत्परिणाम सामने आ सकें। यह कार्य समस्त जनस्तर को साथ लेकर करना होगा।

महिला संगठन बनाने और उसकी प्रारम्भिक कक्षाएँ चलाने का क्रम चलाया जाना चाहिए। अधिक से अधिक संख्या में योग्य महिलाओं को सम्मिलित होकर महिला जागरण अभियान में अपनी भूमिका निभानी होगी। प्रौढ़ शिक्षा के साथ साथ गृहउद्योगों का प्रशिक्षण भी चलाया जाना चाहिए। इससे आर्थिक प्रगति के साथ–साथ और भी लाभ होगे। जिससे महिलाओं में बुद्धि और विवेक में कुशाग्रता पनपती है। रचनात्मक प्रवृतियाँ बढ़ाने में भी बहुत सहायता मिलती है।

अपने देश में कुटीर उद्योगों के विकास की अत्यधिक आवश्यकता प्रतीत होती है। इस दिशा में आवश्यक प्रशिक्षण के लिए प्रौढ़ पाठशालाओं का अंग अवश्य रहना चाहिए। सिलाई, बुनाई, खिलौने, टूट–फूट की मरम्मत शाक–वाटिका तथा स्थानीय स्थिति के अनुरूप हर क्षेत्र में अनेकों उद्योग का प्रशिक्षण देना चाहिए। जिससे महिलाओं का सर्वागीण विकास हो सकें और वह हर क्षेत्र में अपनी भूमिका निभाने हेतु सक्षम नारी का रूप धारण कर सकें।

महिला विकास के लिए आवश्यक रचनात्मक एवं सुधारात्मक कार्यक्रम किये जाने चाहिए। जो इस प्रकार हैः

स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना एवं महिलाः विकास भारत सरकार ने देश में चल रही पूर्ववर्ती योजनाओं यथा समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आई.आर.डी.पी.) ट्राइसैम (स्वरोजगार हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम), ग्रामीण महिला एवं शिशु विकास कार्यक्रम (डी.डब्ल्यू.सी.आर.ए.), टूलकिट्स–ग्रामीण कारीगरों को उन्नत किस्म के औजार किट की आपूर्त्ति (एस.आई.टी.आर.ए.), गंगा कल्याण योजना (जी.के.वाई) आदि विभिन्न योजनाओं को समाहित करते हुए 'स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना' एक अप्रैल, 2000 से प्रारम्भ की गई है। स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना केन्द्र समर्थित योजना है तथा केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा इसका खर्च 75:25 के अनुपात में वहन सुनिश्चित की गई है।

भारतीय महिलाएँ और कानूनी संरक्षण : महिलाओं की जिन्दगी को बेहतर बनाने के लिए कानून बने हैं। इनकी जानकारी से महिलाएँ सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से सशक्त बन सकती हैं। प्रायः महिलाएँ कानूनों से अपरिचित होती हैं, इसीलिए वे कमजोर बनी हुई हैं। कानूनों का लाभ नहीं उठा पाती हैं।

महिला आरक्षण और राजनीतिक सहभागिताः महिलाओं को पुरूष के समान–समान राजनीतिक अधिकार एवं राजनीतिक सहभागिता का मुद्धें, आज के विश्व का और आधुनिक विकसित सभ्यता का एक लोकप्रिय, चर्चित एवं महत्त्वपूर्ण मद्धें है। यद्यपि महिलाओं को सत्ता के स्वरूप–निर्धारण तथा उसमें भाग लेने के लिए कानूनी एवं संवैधानिक समानता तथा स्वतंत्रता प्राप्त है।

भारत में महिलाओं का राजनीतिक विकास : भारत के संविधान में भारत की महिलाओं को भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में समानता के अधिकार प्रदान किये गये हैं, परन्तु दुःख इस बात का है कि उन्हें अब तक भी समाज में समानता के अधिकार नहीं मिले हैं। भारत की राजनीति में महिलाओं की भागीदारी और देश के महत्त्वपूर्ण पदों पर उनकी उपस्थिति नहीं के बराबर है।

भारत सरकार और महिला विकास कार्यक्रम : भारत का महिला और बाल विकास विभाग प्रारम्भ से ही महिलाओं के सामाजिक व आर्थिक स्तर में सुधार लाने के लिए विशेष प्रकार के कार्यक्रम बनाता रहा है। महिला और बाल विकास विभाग द्वारा स्वास्थ्य, शिक्षा, ग्रामीण व शहरी विकास आदि जैसे लागू अन्य विकासोन्मुख कार्यक्रम और महिलाओं को अधिकार–सम्पन्न बनाने की दिशा में कई प्रकार के प्रयास किये गये है।

राजस्थान में महिला विकास योजनाएँ :

1. **केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड :** 1953 में महिलाओ, बच्चों तथा विकलांगों के कल्याण कार्यक्रमों को स्वंय सेवी संगठनों के माध्यम से लागू करने के उद्देश्य से केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड गठित किया गया। इसके अन्तर्गत अनेक कार्यक्रम चल रहे है जैसे–बेसहारा तथा विकलांग महिलाओं को पूर्ण आशिंक रोजगार के अवसर प्रदान करना, आंगनबाड़ी, शिशु सदन, बच्चों के अवकाश शिविर, कामकाजी महिलाओं के हॉस्टल, शार्ट स्टे होम्स आदि।

2. **राष्ट्रीय महिला नीति :** 20 मार्च, 2001 को पारित राष्ट्रीय महिला नीति का उद्देश्य महिलाओं की अधिकारिता प्रगति और विकास लाना तथा महिलाओं के खिलाफ सभी तरह के भेदभाव को दूर करना और जीवन तथा कार्यकलापों से सभी क्षेत्रों में उनकी सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करना है।

3. **महिलाओं और बच्चों के यौन उत्पीड़न के विरुद्ध कार्यवाही की योजना :** महिलाओं तथा बच्चों के अवैध व्यापार और पेशेवर यौन उत्पीड़न का सामना करने के लिए केन्द्र सरकार ने एक समिति गठित की है। जिसने सम्बन्धित विभागों को कार्यवाही की योजना बनाकर भेज दी है जिससे कि केन्द्र व राज्य सरकारें इस सम्बन्ध में निर्देशानुसार कार्य करें।

4. **जननी सुरक्षा योजनाः** निर्धनता–रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाली महिलाओं हेतु 12 अप्रैल 2005 से प्रारम्भ इस योजना ने राष्ट्रीय प्रसूति लाभ योजना का स्थान लिया है तथा 'राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन' का घटक है। मातृत्व मृत्यु दर तथा शिशु मृत्यु दर पर अंकुश लगाकर गर्भवती महिलाओं के हितार्थ लागू इस योजना का लाभ 19 वर्ष से अधिक आयु की महिलाओं को पहले दो जीवित प्रसवों के समय प्राप्त होगा। योजनान्तर्गत प्रसव कराने वाली स्वास्थ्य सेविका को भी 200 रुपये और 800 रुपये तक की धनराशि प्रदान की जाएगी।

5. **महिलाशक्ति पुरस्कार :** वर्ष 1999 में शुरु किये गये ये पुरस्कार प्रतिवर्ष भारत के इतिहास में पांच प्रसिद्ध महिलाओं कन्नगी, माता जीजाबाई, देवी अहिल्याबाई होलकर, रानी लक्ष्मीबाई तथा रानी मैन्डिलिपू के नाम पर दिये जाते है ये पुरस्कार उन अलग–अलग महिलाओं के सम्मान तथा उनकी उपलब्धियों के अभिज्ञान में दिये जाते है। जिन्होंने

कठिन परिस्थितियों में सफलता हासिल की है और महिलाओं के अधिकारों हेतु लड़ी है ये पुरस्कार प्रति वर्ष 8 मार्च को अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस के अवसरपर दिये जाते है पुरस्कारस्वरुप 1 लाख रुपये नगद प्रशस्ति पत्र दिया जाता है।

6. **प्रशिक्षण और रोजगार** : महिलाओं के प्रशिक्षण और रोजगार देने का कार्यक्रम 1987 में शुरु किया गया है इसका उद्देश्य कृषि, पशुपालन हथकरधा हस्तशिल्प, कुटीर और रेशम उद्योग आदि में लगी गरीबी रेखा से नीचे जीवन–यापन करने वाली महिला को रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना है।

7. **स्वंयसिद्धा योजना** : पूर्व में संचालित इंदिरा महिला योजना तथा महिला समृद्धि योजना के स्थान पर स्वंय सिद्धा योजना संचालित की जा रही है। जिसका लक्ष्य महिलाओं को स्वंय स्वावलम्बन प्रदान करना है।

8. **राष्ट्रीय महिला कोष** : गरीब तथा परिसम्पत्तिहीन महिलाओं की ऋण की आवश्यकता को पूरा करने के लिए 1993 में इस कोष की स्थापना की गई।

9. **दूरस्थ शिक्षा** : महिलाओं के विकास तथा सशक्तीकरण हेतु शुरु की गई इस योजना के अन्तर्गत इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय (इग्नू) द्वारा एक प्रमाण–पत्र पाठ्यक्रम की व्यवस्था है जिसमें परियाजनाओं के ग्राम स्तर पर कार्यान्वित करने वाले प्रतिक्षुओं उनके पर्यवेक्षकों तथा जिला स्तर के कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित किया जाता है। परियोजना का कार्यावन महिला तथा बाल विकास विभाग, इग्नू तथा भारतीय अन्तरिक्ष अनुसंधान केन्द्र के द्वारा संयुक्त रुप से किया जा रहा है।

10. **राष्ट्रीय पोषण मिशन** : इस योजना का उद्देश्य गर्भवती महिलाओं को निःशुल्क खाद्य सामग्री उपलबध कराकर कुपोषण से मुक्ति दिलाना है।

11. **डॉ. दुर्गाबाई देशमुख पुरस्कार योजनाः** महिला विकास से सम्बद्ध यह पुरस्कार (5 लाख रुपये, एक प्रशस्ति प्रत्र तथा शॉल) प्रतिवर्ष ऐसे संगठन को दिया जाता है। जिसने महिला अधिकारित तथा महिलाओं के कल्याण हेतु उत्कृष्ट व अभिनव योगदान दिया है।

12. **कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालया योजना** : अगस्त 2004 से प्रारम्भ इस योजना का उद्देश्य आर्थिक रुप से पिछड़े ब्लाको के अनुसूचित, अनुसूचित जन जाति, अन्य पिछड़े वर्गी तथा अल्पसंख्यकों की बहुलता वाले क्षेत्रों में बालिकाओं के लिए आवासीय विद्यालयों की स्थापना करना है।

13. **पैतृक सम्पति में बेटियों को समान अधिकार का कानून** : पैतृक सम्पति में बेटे के समान ही बेटी को अधिकतर देने वाला कानून 9 सितम्बर 2005 से प्रभावी हो गया है।

14. **वन्देमातरम् योजना** : 9 फरवरी 2004 से प्रारम्भ इस योजना का उद्देश्य गर्भवती महिलाओं को निःशुल्क उपचार उपलब्ध कराना है।

15. **स्वावलम्बन कार्यक्रम** : वर्ष 1982–83 से प्रारम्भ इस कार्यक्रम का उद्देश्य महिलाओं को स्थायी आधार पर रोजगार अथवा स्वरोजगार प्राप्त करने में सहायता देने की दृष्टि से उन्हें प्रशिक्षण और कौशल उपलब्ध कराकर स्वावलम्बन प्रदान करना हैं।

16. **मौलाना आजाद राष्ट्रीय छात्रवृत्ति योजना** : 1 अगस्त, 2003 से प्रारम्भ इस योजना का उद्देश्य अल्पसंख्यक समुदाय की निर्धन प्रतिभाशाली लड़कियों को विशेष छात्रवृत्ति प्रदान कर उच्च शिक्षा के लिए प्रोत्साहित करना है।

17. **महिला शिक्षा हेतु कन्डेस्ड पाठ्यक्रम** : इस कार्यक्रम का उद्देश्य 15 वर्ष से अधिक आयु की महिलाओं को शिक्षा तथा उचित साज (हुनर) उपलब्ध कराकर सामाजिक तथा आर्थिक अधिकारिता उपलब्ध कराना है।

राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर लागू योजनाओं के माध्यम से आज महिलाएँ अपने अधिकारों के प्रति सजग होकर विकास के मार्ग पर अग्रसर होने में सबल हो पाई है। जो महिला अब तक अनेक प्रकार के अत्याचारों से पीड़ित थी, आज वह समस्त क्षेत्रों में अपनी उपस्थिति दे रही है।

निष्कर्षतः राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर कई महिला विकास योजनाएं लागू की गई हैं लेकिन रुढ़िवादी जंजीरों से कुछ हद तक शरीर से ही मुक्त हो पाई है, परन्तु पूर्णरूप से आज भी वह इन रुढ़िवादी विचारों से स्वतंत्र नहीं हो पाई है। महिला सशक्तीकरण एवं महिला विकास पूर्ण रूप से सक्षम बनाने तथा महिलाओं को अपने अधिकारों से परिचित करवाने हेतु आवश्यक है कि उनकी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हो व समस्याओं का समाधान हो। देश के विकास में महिलाओं को अपनी पूर्ण तथा व्यावहारिक भागीदारी निभाने का एक अवसर दिलाना अतिआवश्यक है। अतः महिला वर्ग में चेतना जाग्रति के लिए महिला सशक्तीकरण एवं महिला विकास अपरिहार्य विषय बन गया है। महिला अशिक्षा पर आर्थिक निर्भरता,

जागरूकता का अभाव रूढ़िवादी विचारधारा एवं पुरूष प्रधानता वाली मानसिकता इत्यादि ऐसे प्रमुख कारण हैं जो महिला विकास में बाधा उत्पन करते हैं तथा सरकार द्वारा संचालित योजनाओं का लाभ उठाने से वंचित कर देते हैं। महिलाओं को वास्तविक अधिकार दिलाने तथा उनकी स्थिति को हर क्षेत्र यथाः– सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में प्रभावी बनाने हेतु प्रबल प्रयासों की आवश्यकता है। महिला सशक्तीकरण एवं महिला विकास की दिशा में कुछ करने के लिए सबसे ज्यादा जरूरी है जमीनी स्तर पर उनकी समस्याओं को समझना तथा उनके निवारणार्थ सबल एवं निरन्तर प्रयास जारी रखना अपरिहार्य हो रही है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *पांड्या, रामेश्वरी, ''वूमन वेलफेयर एण्ड एम्पावरमेन्ट इन इण्डियाःविजन फॉर द ट्वन्टी फर्स्ट सेन्चूरी'', न्यू सेन्चूरी पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2008, पृ. 78*
2. *मौर्य, शैलेन्द्र, ''राजस्थान में महिला विकास, प्रारम्भ से आज तक'', राजस्थान साहित्य, जोधपुर, 2007, पृ. 51*
3. *सिंह, मनोज कुमार, ''भारतीय महिलाएँ–अधिकार एवं चुनौतियाँ'', अंकित पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2010, पृ. 15*
4. *शर्मा, संगीता एवं शर्मा, राजेश कुमार, ''महिला विकास एवं राजकीय योजना'', रितु, जयपुर, 2005, पृ. 27*
5. *कौशिक, आशा, ''महिला सशक्तीकरण : विमर्श एवं यथार्थ'', पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2011, पृ. 98*
6. *कुमार विपिन, ''वैश्वीकरण एवं महिला सशक्तीकरण, विविध आयाम'', रीगल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2009, पृ. 65*
7. *त्यागी शालिनी, ''पंचायती राज व्यवस्था में सत्ता का विकेन्द्रीकरण'', नवजीवन प्रकाशन, 2006, पृ. 67*
8. *प्रशासनिक प्रतिवेदन (2015–16), महिला एवं बाल विकास विभाग, राजस्थान, जयपुर, पृ. 46*
9. *वोहरा, डॉ. आशा रानी, ''महिला विकास कार्यक्रम'', इनाश्री पब्लिशर्स, जयपुर, 2008, पृ. 28*
10. *वार्षिक प्रतिवेदन, (2015–16), राज्य महिला आयोग, राजस्थान, जयपुर*

भारत में महिला मानवाधिकार : वैधानिक परिपेक्ष्य

भवशेखर
व्याख्याता,राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय,उदयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

मानवाधिकार व्यक्ति के जीवन की वे अनिवार्य परिस्थितियाँ है, जिनके अभाव में मानव का स्वतंत्र और गरिमापूर्ण विकास सम्भव नहीं है। संयुक्त राष्ट्र द्वारा मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के द्वारा यह नवीन विचार महिला मानवाधिकार के रूप में भी उभरा। भारतीय सन्दर्भ में भी महिला मानवाधिकारों के विकास का दीर्घ एवं संघर्षपूर्ण इतिहास रहा है। महिलाओं के अधिकारों के संरक्षण हेतु देश में अनेक संवैधानिक प्रावधान उपलब्ध हैं। भारतीय संविधान में महिलाओं के लिए सामाजिक एवं कानूनी रूप से अनेक प्रावधान किये गये हैं। इसके अलावा महिलाओं के मानवाधिकारों के लोकरक्षक के रूप में कार्य करने के लिए एक राष्ट्रीय महिला आयोग के साथ-साथ अन्य राज्यों में राज्य महिला आयोग स्थापित किया गया है।

संकेताक्षरः *मानवाधिकार, गरिमापूर्ण विकास, संवैधानिक प्रावधान, संस्थागत संरचनाएँ, लोकरक्षक, प्रतिबद्धता।*

मानव अधिकार वे अधिकार है जो हमारी प्रकृति या स्वभाव में निहित हैं। इनके अभाव में हम मानव के रूप में अपना जीवन व्यतीत नहीं कर सकते हैं। मानवाधिकार और मौलिक स्वतंत्रताएँ हमको पूर्णरूप से विकसित होने के लिए अवसर प्रदान करती हैं। साथ ही इनके द्वारा मानवीय गुणों, प्रतिभाओं तथा चेतना का सदुपयोग किया जाता है। यह अधिकार मानवता पर आधारित है। मानवाधिकारों की सर्जना नहीं की जाती है वरन् इनकी स्थिति स्वाभाविक होती है।[1] मानव की प्रसन्नता एवं खुशहाली के साथ ही मानव की पूर्णता संबंधित है। मानवाधिकार का लक्ष्य समूची मानवता का हित करना है। 'मानवता की सेवा' मानवता का धर्म है। 'शान्ति' इसका संकल्प है और युद्ध का घोर शत्रु है। यह धरती पर शान्ति एवं खुशहाली की स्थापना की आवश्यकता तथा सम्भावना पर बल देता है।

अधिकार हमारे सामाजिक जीवन की अनिवार्य आवश्यकताएँ हैं, जिनके बिना न तो व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है और न ही समाज के लिए उपयोग कार्य कर सकता है। वस्तुतः अधिकारों के बिना मानव जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती है।[2] किसी भी सभ्य समाज की स्थिति उस समाज में स्त्रियों की दशा देखकर ज्ञात की जा सकती है। स्त्रियों की स्थिति ही वह सपना है जो समाज की दशा और दिशा को स्पष्ट कर देता है। महिला कल्याण महिला विकास से महिला सशक्तिकरण का पड़ाव अत्यन्त महत्वपूर्ण है। महिला सशक्तिकरण का अभिप्राय महिलाओं को पुरूषों के बराबर वैधानिक, राजनीतिक, मानसिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में उनके परिवार, समुदाय, समाज एवं राष्ट्र की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में निर्णय लेने की स्वतंत्रता से है। एक न्यायपूर्ण एवं सम समाज की स्थापना हेतु महिलाओं का सशक्तिकरण आवश्यक है, जिसके लिए उनमें आर्थिक सशक्तिकरण को प्रमुख आधार एवं आवश्यक शर्त माना है।

महिलाओं के अधिकारों की प्राप्ति के क्षेत्र में भारत की लम्बे संघर्ष की कहानी है। सदियों से भारत में महिलाओं के सन्दर्भ में अधिकार विहीनता रूढ़िवादी भारतीय समाज में प्रायः दिखाई पड़ती है। किन्तु 1 9वीं शताब्दी में पश्चिमी शिक्षा के आगमन के फलस्वरूप महिला अधिकारों की बात प्रमुखता से की जाने लगी। तदोपरान्त स्वतंत्र भारत के संविधान की प्रस्तावना में

'हम भारत के लोग' शब्द प्रयुक्त है, जिसका अर्थ है स्त्री व पुरूष को समानता का दर्जा दिया है। भारतीय संविधान में महिलाओं के लिए महत्वपूर्ण प्रावधान किये है। संवैधानिक प्रावधानों के साथ–साथ विभिन्न सरकारी योजनाओं के माध्यम से महिलाओं में सशक्तिकरण के माध्यम से समाज में उनकी स्थिति को सुदृढ़ करने का प्रयास किया।

जिस राष्ट्र में महिलाएँ जितनी अधिक शिक्षित होती है, वह राष्ट्र उतना ही प्रगतिशील होता है। राष्ट्र विकास में महिलाओं का योगदान मूल्यवान होता है। एक सशक्त एवं समद्ध राष्ट्र मजबूत एवं सुरक्षित महिलाओं के बिना नहीं स्थापित हो सकता है। भारत में महिला सशक्तिकरण हेतु अनेक संवैधानिक और विधिक प्रयास किये गये हैं। वर्तमान में महिला सशक्तिकरण से तात्पर्य महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक सुरक्षा, सहभागिता से है। भारत में भारतीय कानूनी प्रावधान इस ओर स्पष्ट इशारा करते हैं। भारत में महिला सशक्तिकरण से अभिप्राय यह है कि सामाजिक सुविधा की उपलब्धता, आर्थिक नीति निर्धारण में भागीदारी, समान कार्य के लिए समान वेतन आदि अधिकारों का सुनिश्चित होना है। भारतीय संविधान ने महिलाओं को निम्न अधिकार दिये हैंः–

- समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14–18)
- महिला–पुरूष को समान रूप से आजीविका का अधिकार (अनुच्छेद 39ए)
- जीवन का अधिकार (अनुच्छेद 21)
- विधि के समक्ष समानता और संरक्षण का अधिकार(अनुच्छेद 15)
- महिलाओं की बेहतरी के लिए विशेष प्रावधान बनाने के लिए राज्य को अधिकार अनुच्छेद 15(3),
- काम की न्याय संगत व मानवोचित दशाओं का तथा प्रसूति सहायता का उपबन्ध (अनुच्छेद 42)
- मूल कर्तव्य में ऐसा प्रावधान है कि ऐसी प्रथाओं का त्याग किया जाये जो स्त्रियों के सम्मान के विरूद्ध है।

  अनुच्छेद 51ए;(ई),

भारतीय संस्कृति और जीवन पद्धति में मानव अधिकारों की प्रतिष्ठा प्राचीन काल से ही स्थापित रही है। महाभारतकालीन साहित्य तथा कौटिल्य आदि के समय में नारियों पर प्रहार करना, निरपराधों को सताना, राजपूत या राज्य प्रतिनिधि को अपमानित करना वर्जित माना गया था। समाज और परिवार में मानव अधिकारों का आदर करना भारतीय परम्पराओं और आस्था का एक स्वाभाविक अंग रहा है। आज के वर्तमान भारतीय परिवेश में महिलाओं को कानूनी अधिकार दिये हैं,जैसे–दहेज निषेध अधिनियम, 1961,विदेशी विवाह अधिनियम, 1961,विशेष विवाह अधिनियम, 1969,भारतीय तलाक अधिनियम, 1969,हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955,धर्मान्तरण विवाह विच्छेद अधिनियम, 1866,बाल विवाह निषेध अधिनियम, 2006,कन्वर्ट्स मैरिज डिसॉल्यूशन एक्ट।

अत्यन्त प्राचीन काल में महिलाएँ समाज का एक अभिन्न अंग थी। उच्च शिक्षा प्राप्ति के अवसर, पुरूषों से बराबरी की स्थिति, फैसला लेने में पुरूषों के समान हिस्सेदारी तथा पर्दा प्रथा का रिवाज न होने आदि के कारण महिलाओं का समाज में सर्वोच्च स्थान था। "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता" हमारा आदर्श माना जाता था। "भारत हमेशा से महिलाओं के निमित्त अन्तर्राष्ट्रीय व राष्ट्रीय मंच पर हिमायती रहा है। स्वतंत्रता की प्राप्ति से ही भारत ने लिंग पर आधारित पूर्वाग्रहों को मिटाने के लिए संगठित प्रयास किये हैं ताकि महिलाएँ सही अर्थों में पुरूषों के आमने–सामने होकर हैसियत का उपयोग कर सकें"।[3] आज के परिवेश में महिलाएँ घर के बाहर जाकर कामकाज करती है इसलिए महिलाओं को संरक्षण प्रदान करने के लिए विधिक व्यवस्था के अन्तर्गत उनके संरक्षण के लिए अनेक एक्ट बनाये गये है।

आज हमें समाज में एक ऐसी स्वस्थ मानसिक सोच की आवश्यकता है जो ईश्वर निर्मित सृष्टि की सुन्दर कृति स्त्री–पुरूष के मध्य समान आदर एवं सम्मान का भाव जागृत करा सके। महिलाएँ महिलाओं के प्रति संवेदनशील हों। महिला सशक्तिकरण मात्र एक नारा नहीं बने अपितु एक ऐसी स्वस्थ मानसिक सोच बने, जिससे स्त्री–पुरूष के मध्य एक–दूसरे के प्रति सम्मान एवं स्त्री और स्त्री का जातिगत वर्गीय भेद भी मिट सके।[4] महिलाओं को समानता का अधिकार मिले इसलिए उसे सम्पत्ति में अधिकार प्राप्त हो। इसी क्रम में भारतीय कानून ने निम्न अधिनियम बनायेः–

- भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925
- विवाहित महिला सम्पत्ति अधिनियम, 1874
- हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956
- मुस्लिम पर्सनल लॉ (शरियत) एप्लीकेशन एक्ट, 1936

भारतीय सरकार द्वारा स्त्रियों के सशक्तिकरण के लिए एवं उनको सामाजिक संरक्षण प्रदान करने के हेतु भारतीय अपराध विधि में महिलाओं से संबंधित प्रमुख अपराधों में सजा का अधिकतम प्रावधान किया गया है। भारतीय दण्ड

संहिता,1860 की निम्न धाराएँ महिलाओं को सामाजिक सुरक्षा एवं अपराध से सुरक्षा प्रदान करती है–

- धारा 304(ख) के अन्तर्गत विवाह से सात वर्ष के अन्दर प्रताड़ित करते हुए दहेज हत्या होने की स्थिति में कम से कम सात वर्ष के लिए कारावास किन्तु बढ़कर आजीवन कारावास का प्रावधान करती है।
- धारा 316 से 321 तक की धाराओं के अन्तर्गत स्त्री की सम्मति/सहमति के बिना गर्भपात कराने का शिशु की मृत्यु होने पर दस वर्ष की सजा का आजीवन कारावास एवं जुर्माना का प्रावधान करती है।
- धारा 323 के अन्तर्गत स्त्री के साथ मारपीट करने तथा गम्भीर चोटें पहुँचाने पर एक वर्ष का कारावास या 1000 रूपये का जुर्माना या दोनों का प्रावधान करती है।
- धारा 342 के अन्तर्गत साधारण रूप से नजरबन्द रखने पर एक वर्ष का कारावास या 1000 रूपये से जुर्माना या दोनों का प्रावधान करती है।
- धारा 344 के अन्तर्गत दस या दस दिन से अधिक नजरबन्द रखने पर तीन वर्ष का कारावास या जुर्माना का प्रावधान करती है।
- धारा 354 के अन्तर्गत स्त्री का लज्जा भंग करने के आशय से उस पर हमला या आपराधिक बल का प्रयोग की स्थिति में दो वर्ष के लिए कारावास या जुर्माना या दोनों का प्रावधान करती है।
- धारा 363 के अन्तर्गत व्यवहारण जिसके लिए सात वर्ष के लिए कारावास और जुर्माना का प्रावधान करती है।
- धारा 363–क अप्राप्यव्य व्यय इसलिए व्यवपहरण या अप्राप्यव्य की अभिरक्षा इसलिए अभिप्राप्त करना कि ऐसा अप्राप्तय भीख मांगने के प्रयोजन के लिए नियोजित किया प्रयुक्त किया जाये। अप्राप्यव्य को इसलिए विकलांग करना कि ऐसा अप्राप्यव्य भीख मांगने के प्रयोजनों के लिए नियोजित या प्रयुक्त किया जाये। ऐसा घृणित कार्य करने के लिए दस वर्ष के लिए कारावास या आजीवन कारावाय या जुर्माना या दोनों से दण्डित किया जायेगा।
- धारा 364 के अन्तर्गत हत्या के उद्देश्य से अपहरण या व्यपहरण की स्थिति में आजीवन कारावास या दस वर्ष के लिए कठिन कारावास या आजीवन कारावास प्रावधान है।
- धारा 366 के अन्तर्गत किसी स्त्री को विवाह करने के लिए विवश करने या भ्रष्ट करने आदि के लिए उसे व्यवहृत करने के उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए दस वर्ष का कारावास और जुर्माना का प्रावधान किया गया।
- धारा 366–क के अन्तर्गत अप्राप्तवय लड़की का उपापन यानि अवयस्क लड़की का अपहरण करना और उसकी सम्भोग के लिए विवश करने के लिए दस वर्ष का कारावास और जुर्माने का प्रावधान है।
- धारा 366–ख के अन्तर्गत विदेश से लड़कियों को आयात करने के लिए दस वर्ष का कारावास और जुर्माने का प्रावधान है।
- धारा 372, 373 वैश्यावृत्ति आदि के प्रयोजन के लिए अप्राप्तव्य (अवयस्क) को बेचना या भाड़े पर देना उन्हीं प्रयोजन के लिए अप्राप्तव्य को खरीदना या उसका कब्जा अभिप्राप्त होना, इस अपराध के लिए दस वर्ष का कारावास और जुर्माने का प्रावधान है।
- धारा 376 के अन्तर्गत किसी स्त्री के साथ बलात्कार करने पर आजीवन कारावास या दस वर्ष का कारावास और जुर्माने का प्रावधान है। किसी पुरूष द्वारा अपनी पत्नी के साथ सम्भोग जिसकी आयु 12 वर्ष से कम है, ऐसे अपराध के लिए दो वर्ष के लिए कारावास या जुर्माना या दोनों का प्रावधान किया गया है।
- धारा 376–क के अन्तर्गत पृथक रहने के दौरान किसी पुरूष द्वारा अपनी पत्नी के साथ सम्भोग करने की स्थिति में दो वर्ष का कारावास और जुर्माने का प्रावधान है।
- धारा 376–ख के अन्तर्गत लोक सेवक द्वारा अपनी अभिरक्षा में किसी स्त्री के साथ सम्भोग जैसे अपराध करने के लिए पाँच वर्ष का कारावास और जुर्माने का प्रावधान है। धारा 376–ग के अन्तर्गज जेल, प्रतिप्रेषण गृह आदि के अधीक्षक द्वारा सम्भोग करने के लिए पाँच वर्ष का कारावास और जुर्माने का प्रावधान है।
- धारा 376–घ के अन्तर्गत किसी अस्पताल के प्रबन्धक आदि द्वारा उस अस्पताल में किसी स्त्री के साथ सम्भोग करने की स्थिति में पाँच वर्ष का कारावास और जुर्माने का प्रावधान है।
- धारा 377 के अन्तर्गत अप्राकृतिक सम्भोग (प्रकृति के विरूद्ध अपराध) करने के लिए आजीवन कारावास या दस वर्ष का कारावास और जुर्माने का प्रावधान है।

- धारा 494 के अन्तर्गत पति या पत्नी के जीवनकाल में पुनः विवाह करने के लिए सात वर्ष का कारावास और जुर्माने का प्रावधान है।
- धारा 495 के अन्तर्गत वही अपराध पूर्ववर्ती विवाह को उस व्यक्ति से छिपाकर जिसके साथ पच्छ्यावर्ती विवाह करने के लिए दस वर्ष का कारावास और जुर्माने का प्रावधान है।
- धारा 497 के अन्तर्गत जारकर्म जैसे अपराध के लिए पाँच वर्ष का कारावास या जुर्माने या दोनों का प्रावधान किया गया है।
- धारा 498 के अन्तर्गत विवाहिता स्त्री को आपराधिक आशय से फुसला कर ले जाना या निरूद्ध रखना जैसे अपराध के लिए दो वर्ष का कारावास या जुर्माने या दोनों का प्रावधान किया गया है।
- धारा 498–ए के अन्तर्गत किसी विवाहित स्त्री के प्रति क्रूरता करने की स्थिति में एवं दहेज सम्बन्धी उत्पीड़न करने की स्थिति में तीन वर्ष कारावास या जुर्माने का प्रावधान किया गया है।
- धारा 499 के अन्तर्गत किसी स्त्री की बेइज्जतकरना तथा उस पर झूठे आरोप लगाकर समाज में उसकी प्रतिष्ठाको धूमिल करने जैसे अपराध के लिए दो वर्ष का कारावास या जुर्माने या दोनों का प्रावधान किया गया है।
- धारा 509 के अन्तर्गत स्त्री की लज्जा का अनादर करने के आशय से कोई शब्द कहना या कोई अंग विक्षेप करने जैसे अपराध के लिए एक वर्ष का सादा कारावास या जुर्माने या दोनों का प्रावधान किया गया है।[5]

किसी भी समाज में शक्ति का महत्व स्पष्ट देखा जा सकता है। स्त्री और पुरूष प्रकृति से ही एक–दूसरे के पूरक रहे हैं। किन्तु शारीरिक रूप से कमजोर होने के कारण स्त्री को सदैव पुरूष की अनुगामी होना पड़ा है। शिक्षा के विकास के साथ ही विभिन्न समाजों में स्त्रियों को पुरूषों के बराबर अधिकार दिये जाने लगे। भारत भी पाश्चात्य देशों की उन्नति की अनदेखी नहीं कर सका और 1947 के बाद से ही संवैधानिक प्रावधान द्वारा महिलाओं को पुरूषों के समान अधिकार दिये गये हैं। भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा की तृतीय समिति के समक्ष मानव अधिकारों के अभिवृद्धि एवं संरक्षण के लिए एक राष्ट्र संस्था को स्थापित करने अथवा मजबूत करने के सम्बन्ध में अपनी उत्सुकता पूर्ण रूचि प्रदर्शित की थी।[6]

उपरोक्त प्रावधान यह प्रदर्शित करते है कि भारत में महिला मानवाधिकार के संवैधानिक प्रावधान अत्यन्त सशक्त है। महिला मानवाधिकार को और बेहतरी से लागू करने के लिए कार्यरत संस्थाओं को अधिक जागरूकता से कार्य करने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *यादव, डी.एस. (2012), भारत में मानवाधिकार, जयपुर : आस्था प्रकाशन।*
2. *शर्मा, अर्चना (2015), महिला एवं मानवाधिकार, जयपुर : रितु पब्लिकेशन।*
3. *सक्सेना, प्रवीण (2012), भारत में महिला सशक्तिकरण और यौन शोषण व घरेलु हिंसा के विविध परिदृश्य (लघु शोध प्रबन्ध), भोपाल : मध्यप्रदेश भोज विश्वविद्यालय।*
4. *सक्सेना, प्रवीण कुमार (2010), शोधायन भाग एक, लखनऊ : पवनपुत्र पब्लिकेशन।*
5. *मिश्र, सूर्यनारायण, भारतीय दण्ड संहिता।*
6. *चतुर्वेदी, सतीश (2002), मानवाधिकार और संयुक्त राष्ट्र संघ।*

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण : एक अध्ययन

सोनिया राठी
शोद्यार्थी, जैन विश्वविद्यालय, बेंगलोर (कर्नाटक)

shodhshree@gmail.com

शोध सांराश

हिन्दी नवजागरण से अभिप्राय प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के बाद भारत के हिन्दी प्रदेशों में आये राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक जागरण से है। हिन्दी–नवजागरण की सबसे प्रमुख विशेषता हिन्दी–प्रदेश की जनता में स्वातंर्त्य–चेतना का जागृत होना है। इसका पहला चरण स्वयं 1857 का विद्रोह था। इसका दूसरा चरण भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से शुरू हुआ और तीसरा चरण महावीर प्रसाद द्विवेदी से शुरू हुआ। भारतेंदु हरिश्चंद्र के उदय के साथ हिंदी में एक नए युग का आरंभ हुआ, यह मान्यता तो बहुत पहले से प्रचलित रही है। किंतु इस नए युग को 'नवजागरण' नाम देने का श्रेय हिंदी में डॉ. रामविलास शर्मा को है। 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण' नामक पुस्तक के द्वारा उन्होंने 'नवजागरण' की नहीं बल्कि 'हिंदी नवजागरण' की संकल्पना प्रस्तुत की।

संकेताक्षरः नवजागरण, महावीर प्रसाद द्विवेदी, हिंदी नवजागरण, बंगाल नवजागरण।

महावीर प्रसाद द्विवेदी हिंदी के पहले लेखक थे, जिन्हें जनता ने आचार्य की उपाधि दी। वे शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य आदि की तरह न तो किसी मत के प्रवर्तक थे और न किसी महाविद्यालय के प्रधान अध्यापक। उन्होंने आचार्य की कोई परीक्षा भी पास नहीं की थी। फिर जनता ने उन्हें इस आचार्य विशेषण से क्यों नवाजा ? गुरु, मत–प्रवर्तक आदि कोषगत अर्थो के साथ उसका अर्थ असाधारण पंडित भी होता है और पूज्य पुरुष भी। इसी के साथ आचार्य का एक अर्थ आचरणीय भी होता है– ऐसा व्यक्तिजिसका अनुसरण किया जाए। लगता है कि जनता ने इसी अर्थ में उन्हें आचार्य की उपाधि दी। वे असाधारण विद्वान और पूज्य पुरुष तो थे ही, ऐसे आचरणीय भी थे, जिनका लोगों ने अनुसरण किया। उनके बहुआयामी व्यक्तित्व में आचार्यत्व की जो आभा है, उसका गहरा सम्बन्ध हिंदी नवजागरण से है। हिंदी नवजागरण की जो चेतना उन्हें विरासत में भारतेंदु युग से मिली थी, उसे उन्होंने स्वाधीनता और स्वदेशी का मजबूत आधार देकर और प्रखर बना दिया। आचार्य उनके इसी ऐतिहासिक कार्य का जनता द्वारा किया गया लोक सम्मान था। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अनेक विधाओं में रचना की। कविता, कहानी, आलोचना, पुस्तक समीक्षा, अनुवाद, जीवनी आदि विधाओं के साथ उन्होंने अर्थशास्त्र, विज्ञान, इतिहास आदि अन्य अनुशासनों में न सिर्फ विपुल मात्रा में महत्त्वपूर्ण लिखा, बल्कि अन्य लेखकों को भी इस दिशा में काम करने के लिए प्रोत्साहित किया। महावीर प्रसाद द्विवेदी सिर्फ कविता, कहानी, आलोचना आदि को ही साहित्य मानने के विरुद्ध थे। वे अर्थशास्त्र, इतिहास, पुरातत्व, समाजशास्त्र आदि विषयों को भी साहित्य के ही दायरे में रखते थे। असल में स्वाधीनता, स्वदेशी और स्वावलंबन को गति देने वाले ज्ञान–विज्ञान के तमाम आधारों को वे आंदोलित करना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने सिर्फ उपदेश नहीं दिया, बल्कि मनसा, वाचा, कर्मणा स्वयं लिखकर दिखा दिया। इसलिए उनके लिखे हुए को स्थायी और शाश्वत साहित्य के अपने तराजू से तौलने वाले आलोचक भूल गए कि द्विवेदी जी किसी एक विधा के लेखक नहीं हैं। उनका युगांतरकारी व्यक्तित्व अनेक प्रकारों से बना था। हिंदी नवजागरण की एक बड़ी चिंता हिंदी परिसर को साहित्य के साथ अन्य ज्ञानानुशासनों के मौलिक लेखन से समृद्ध करने की थी। इस अर्थ में हिंदी नवजागरण के सबसे बड़े योद्धा महावीर प्रसाद द्विवेदी थे। उनके इस रूप का सबसे बड़ा प्रमाण उनकी विख्यात पुस्तक 'सम्पतिशास्त्र' है। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने माधव राव सप्रे, महामहोपाध्याय

रामावतार शर्मा और चंद्रधर शर्मा गुलेरी जैसे अपने समकालीन विद्वान लेखकों को याद किया है। इसलिए कि ये सभी द्विवेदी जी की तरह बहुभाषाविद्, बहुज्ञ और विज्ञान एवं वैज्ञानिक दृष्टि को महत्त्व देने वाले लेखक थे। इन्हीं के प्रयासों से हिंदी में नवजागरण संभव हो सका। द्विवेदी युग के बाद हिंदी में साहित्यिक विधाओं का तो विकास हुआ किन्तु हिंदी में ज्ञान–विज्ञान का अंतरानुशासनिक परिसर वैसा नहीं बन सका जैसा सपना द्विवेदी जी ने देखा था। उनकी परंपरा में जिन लेखकों को याद किया जा सकता है, उनकी संख्या बहुत अधिक नहीं है। राहुल सांकृत्यायन, हजारी प्रसाद द्विवेदी, भगवतशरण उपाध्याय और डॉ. रामविलास शर्मा जैसे थोड़े नाम हैं, जिनके लेखन की दुनिया द्विवेदी जी की तरह विस्तृत है।

हिन्दी नवजागरण की अवधारणा ज्ञान के विशेष पैराडाइम के अन्तर्गत, जिसे सुविधा के लिए औपनिवेशिक आधुनिकता का पैराडाइम कह सकते हैं, गढ़ी गयी थी। आधुनिकता की ज्ञानमीमांसा के निष्कर्ष पर ही समस्याएँ चिन्हित की गयीं और उसी के अनुरूप समाधान सुझाए गए। इक्कीसवीं सदी तक आते–आते ज्ञान का यह पैराडाइम बदल गया। पैराडाइम बदलते ही समस्याओं की पहचान और उनके समाधान के स्वरूप में भी बदलाव आ गया। उन्नीसवीं सदी में जन्मी विचारधाराओं को यथावत दुहराकर न तो आज की समस्याओं की सम्यक् पहचान संभव है और न ही उनका समाधान। इसलिए हिन्दी नवजागरण की परिकल्पना और उसके द्वारा सुझाए गए विकल्पों पर नये सिरे से विचार करने की जरूरत है। क्योंकि पुराने पैराडाइम के तहत दिये गये जो उत्तर पहले सही लगते थे, वे अब कारगर नहीं लगते। इसी परिप्रेक्ष्य में हिन्दी नवजागरण की अवधारणा और उससे जुड़ी समस्याओं को नये सिरे से समझने की शुरूआती कोशिश इस लेख में की गयी है। रामविलास शर्मा ने लिखा है कि हिन्दी नवजागरण में अंग्रेजी शिक्षा और पश्चिमी ज्ञान की कोई उल्लेखनीय भूमिका नहीं रही। थोड़ी रियायत देते हुए उन्होंने ये जरूर जोड़ दिया है कि अंग्रेजी साहित्य की मानवतावादी और प्रगतिशील परम्परा भी रही है और उससे सीखने में कोई हर्ज नहीं। लेकिन आधुनिक हिन्दी साहित्य की गम्भीरता से पड़ताल करने पर ये बात स्पष्ट हो जाती है कि उसकी मूल प्रेरणा और आदर्श अंग्रेजी साहित्य ही रहा है। ज्यादातर आधुनिक हिन्दी साहित्य पश्चिम से प्रेरणा लेते हुए और उसी के मानदण्ड पर लिखा गया है। कहने वाले चाहें तो कह सकते हैं कि ये अंग्रेजी साहित्य की नकल है। 19वीं सदी के हिन्दी नवजागरण का सबसे ज्यादा लोकप्रिय और सर्वप्रिय अभियान उर्दू के मुकाबले नागरी लिपि में लिखी नई चाल की हिंदी (जिसे भारतेंदु मंडल के लेखकों ने 'आर्य हिन्दी' कहा है) की प्रतिष्ठा से सम्बन्धित था। किसी हद तक शिक्षा प्रसार के कार्यक्रम के अलावा शायद हिन्दी नवजागरण का यह अकेला कार्यक्रम था जिस में आन्दोलन की ऊर्जा थी।

भारतेन्दु युगीन हिन्दी नवजागरण की एक बड़ी समस्या यह है कि इसमें कथित उर्दू परम्परा में लिखे गये साहित्य की चर्चा ही सिरे से गायब है। हिन्दी नवजागरण की शुरूआत ही भारतेन्दु के इस कथन से मानी गयी है कि 1873 में हिन्दी नये चाल में ढली। उर्दू को आप हिन्दी की शैली मानें या उसकी परिकल्पना को ही अस्वीकार करें, लेकिन सच्चाई है कि हिन्दी के नये चाल में ढलने से पहले उर्दू में साहित्य लिखने का सिलसिला शुरू हो चुका था। इसलिए फारसी लिपि या उर्दू में फारसी–अरबी के शब्दों को जबर्दस्ती ठुँसने की आलोचना करने के बावजूद हिन्दी जाति के नवजागरण की चर्चा से उर्दू में लिखे गये साहित्य को आप बाहर नहीं कर सकते। ऐसा करने से उसकी साम्प्रदायिक परिणति की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं और अन्ततः वही हुआ भी। मुख्य बात यह है हिन्दी क्षेत्र की व्यापकता और भाषायी जटिलता के कारण यहाँ ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न हुईं कि तेलगू, बांग्ला या मराठी की तरह हिन्दी का कोई एक रूप सुनिश्चित करना और बाकी रूपों को बाहर कर देना सभी को स्वीकार्य निर्णय नहीं बन पाया। फारसी और फिर उर्दू की परम्परा के विकास के कारण हिन्दी के ही कई रजिस्टर बन गये। कई बार तो एक ही समय में अलग–अलग परम्परा से जुड़े लोग इन रजिस्टरों का अलग–अलग ढंग से उपयोग करते दिखायी पड़ते हैं। समस्या तब उत्पन्न होती है जब हम इनमें से किसी एक रूप के आधार पर हिन्दी का स्वरूप स्थिर करने की कोशिश करते हैं। हिन्दी, हिन्दुस्तानी और उर्दू के बीच खींचतान के समूचे इतिहास को इसी परिप्रेक्ष्य में समझना चाहिए। भारतेन्दु युगीन हिन्दी नवजागरण की समस्या यह है कि उसने हिन्दी का एक सही रूप तय कर बाकी रूपों को प्रकारान्तर से अवैध घोषित कर दिया और उनके बारे में किसी भी प्रकार के चिन्तन–अध्ययन का ही निषेध कर दिया। उर्दू परम्परा में लिखे गये साहित्य को हिन्दी नवजागरण के दायरे से बाहर कर देने के बावजूद भारतेन्दु को इस बात का एहसास था कि उर्दू शायरी की परम्परा से भिन्न खड़ी बोली हिन्दी में कविता लिख पाना आसान नहीं होगा। विद्वानों को इस बात पर विचार करना चाहिए कि हिन्दी को उर्दू से अलगाने के बावजूद स्वयं भारतेन्दु उर्दू में रसा नाम से कविता क्यों लिखते थे। यही नहीं, इस बात पर भी नये सिरे से विचार किया जाना चाहिए कि नयी चाल की हिन्दी के समर्थक भारतेन्दु अपनी ज्यादातर कविताएँ ब्रज भाषा में क्यों लिखते हैं। खड़ी बोली में तो उन्होंने अमीर

खुसरों के वजन पर सिर्फ मुकरिया ही लिखी। एक खास तरह की हिन्दी की वकालत करने के बावजूद भारतेन्दु के लेखन में उर्दू और ब्रज भाषा की उपस्थिति बहुत ही महत्वपूर्ण है। यदि गम्भीरता से विचार किया जाये तो इससे हिन्दी क्षेत्र के भाषायी मानचित्र की जटिलता को समझने में मदद मिल सकती है।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल की शुरूआत में पहले-पहल भारतेंदु हरिश्चंद्र ने साहित्य के माध्यम से जन-जागरण और हिन्दी भाषा के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। भारतेंदु के समय में हिन्दी गद्य की भाषा लगभग बन चुकी थी, पद्य में भी उसका थोड़ा-बहुत प्रयोग किया जाने लगा था। भारतेंदु के प्रोत्साहन और प्रेरणा से कई साहित्यकारों ने अपने-अपने ढंग से हिन्दी भाषा के निर्माण कार्य में योगदान दिया। प्रतापनारायण मिश्र, बद्री नारायण चौधरी प्रेमघन, बालकृष्ण भट्ट जैसे साहित्यकार हिन्दी का विभिन्न शैलियों में लगातार प्रयोग कर रहे थे लेकिन इसके बावजूद भी हिन्दी व्याकरण-सम्मत और मानक भाषा नहीं बन पा रही थी। ऐसी स्थिति में सन् 1903 ईस्वी में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादक का पद संभालते हैं और हिन्दी भाषा के निर्माण का दायित्व बखूबी निभाते हैं। द्विवेदी जी का दौर नवजागरण का था। उस समय अखिल भारतीय स्तर पर अनेक सुधारवादी और पुनरुत्थानवादी आन्दोलन चल रहे थे। इन आन्दोलनों में एक ओर भारतीय इतिहास और संस्कृति की महिमा का गान था तो दूसरी ओर साम्राज्यवादी चंगुल से मुक्तहोने की कामना भी। नवजागरण के उस दौर में शिक्षा का महत्त्व बहुत अधिक था। द्विवेदी जी इस बात को भली-भाँति समझते थे, अतः भारत की सामाजिक दशा सुधारने के लिए उन्होंने आधुनिक शिक्षा पर जोर दिया और 'सरस्वती' में लगातार ऐसे लेखों को प्रकाशित करने की मुहिम चलाई जिनमें भारत में अशिक्षा की स्थिति और उसके कारण, उनसे जुड़ी समस्याओं, विद्यालयों की कमी इत्यादि का विश्लेषण होता था। इसी सिलसिले में उन्होंने अंग्रेजों द्वारा अपनाई गई शिक्षा नीति और भेद-नीति की पोल खोलते हुए जनता को जागरूक किया। द्विवेदी जी का लक्ष्य अपने पाठकों का ज्ञानवर्धन करना था। उन्होंने 'सरस्वती' में निरंतर ऐसी सामग्री प्रकाशित की जो पाठकों को समाज और इतिहास की नई दृष्टि और दिशा प्रदान करती थी। उन्होंने 'सरस्वती' के माध्यम से हिन्दी में ऐसा सजग और सचेत पाठक वर्ग तैयार करने का संकल्प लिया जो विचार-प्रधान गद्य भी कथा और कविता जैसा रस ले सके, जो तत्कालीन भारत की परिस्थिति को अच्छी तरह समझकर अपनी एक सुचिंतित समझ बना सके। महावीर प्रसाद द्विवेदी एक ऐसे साहित्यकार थे, जो बहुभाषाविद् होने के साथ ही साहित्य के इतर विषयों में भी समान रुचि रखते थे। उन्होंने 'सरस्वती' का अठारह वर्षों तक संपादन कर हिन्दी पत्रकारिता में एक महान कीर्तिमान स्थापित किया था। वे हिन्दी के पहले व्यवस्थित समालोचक थे, जिन्होंने समालोचना की कई पुस्तकें लिखी थीं। वे खड़ी बोली हिन्दी की कविता के प्रारंभिक और महत्त्वपूर्ण कवि थे। आधुनिक हिन्दी कहानी उन्हीं के प्रयत्नों से एक साहित्यिक विधा के रूप में मान्यता प्राप्त कर सकी थी। वे भाषाशास्त्री थे, अनुवादक थे, वैयाकरणिक थे, इतिहासज्ञ थे, अर्थशास्त्री थे तथा विज्ञान में भी गहरी रुचि रखने वाले थे। अन्ततः वे युगान्तर लाने वाले साहित्यकार थे या दूसरे शब्दों में कहें, युग निर्माता थे। वे अपने चिंतन और लेखन के द्वारा हिन्दी प्रदेश में नव-जागरण पैदा करने वाले साहित्यकार थे। द्विवेदी जी ने लगन, निष्ठा और मनोयोग से इस दिशा में कार्य किया और सफलता भी पाई। मात्र लेखों के स्तर पर ही नहीं बल्कि एक सम्पादक के रूप में द्विवेदी जी विज्ञापन सहित कोई भी ऐसी सामग्री 'सरस्वती' में प्रकाशित नहीं होने देते थे जो पाठकों को दिग्भ्रमित करती हो। उन्नीसवीं शताब्दी के भारतीय नवजागरण को 'रिनेसांस' कहने में एक कठिनाई तो यही है कि इस युग के भारतीय विचारकों और साहित्यकारों के प्रेरणा-स्त्रोत यूरोप के पंद्रहवीं शताब्दी के चिंतक और साहित्यकार न थे। बल्कि इसके विपरीत प्रेरणा-स्त्रोत के रूप में अधिकांश विचारक उस काल के थे जिसे यूरोप में 'एनलाइटेनमेंट' का काल तथा उसके बाद का काल कहा जाता है। स्वयं बंकिम की सहानुभूति रूसो और प्रूधों के साथ थी और वे कोन्थ, जान स्टुअर्ट मिल तथा हर्बर्ट स्पें सर से प्रभावित दिखाई पड़ते हैं। कमोबेश यही स्थिति बंगाल में राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, देरोजियो आदि की दिखती है और हिंदी में महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा रामचंद्र शुक्ल की भी। उल्लेखनीय है कि महावीर प्रसाद द्विवेदी की 'सरस्वती' ज्ञान की पत्रिका कही गई है और उनका गद्य हिंदी साहित्य का ज्ञानकांड। इस प्रकार भारत का उन्नीसवीं शताब्दी का नवजागरण यूरोप के 'एनलाइटेनमेंट' अथवा 'ज्ञानोदय' की चेतना के अधिक निकट प्रतीत होता है और पंद्रहवीं शताब्दी का नवजागरण 'रिनेसांस' के तुल्य। भाषा के क्षेत्र में भारतीय नवजागरण के स्वत्व के लिए जो संघर्ष किया उसका सबसे शानदार पहलू है प्रत्येक जातीय भाषा के विकास के साथ आपसी आदान-प्रदान के लिए एक अखिल भारतीय भाषा का विकास। बंगला नवजागरण के उन्नायकों ने, चाहे वे ब्रह्म हो या गैर-ब्रह्म सनातनी, बंगला के साथ ही हिंदी को भी बढ़ावा दिया यहाँ तक कि संस्कृत के पंडित और गुजराती दयानंद सरस्वती को संस्कृति छोड़

हिंदी में बोलने और लिखने की नेक सलाह कलकत्ते में केशवचंद्र सेन से ही मिली।

द्विवेदी जी समेत उस समय के बुद्धिजीवियों को ये बात सालने लगी कि राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्रवाद की परिकल्पना कैसे संभव होगी। भारत पश्चिमी राष्ट्रों से इस मायने में भिन्न था कि यहाँ कई भाषाएँ बोली जाती थीं। किन्तु सबसे ज्यादा लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा के रूप में हिन्दी को खड़ा कर राष्ट्रभाषा बनने के उसके दावे को मजबूत करने के लिए ऐसी हिन्दी की परिकल्पना की गयी, जिसमें हिन्दी के विविध रूपों और तथाकथित जनपदीय भाषाओं बोलियों के लिए कोई जगह नहीं बची। इसका परिणाम ये हुआ कि भारतीय सभ्यता में भाषाओं के विकास और उनके पारस्परिक सम्बन्ध को या तो नजरअन्दाज कर दिया गया या उसको समझने का विवेक ही नहीं उत्पन्न हो पाया। यदि समूचे भारत के भाषायी मानचित्र की चर्चा न भी की जाय तो भी इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि हिन्दी प्रदेश में एक ही समय में अलग-अलग कार्यों के लिए और कभी-कभी एक ही कार्य के लिए हिन्दी के भिन्न-भिन्न 'रजिस्टर' का इस्तेमाल होता रहा है। हिन्दी प्रदेश का भाषायी स्वरूप हमेशा बहुभाषी रहा है। भाषायी स्वरूप को लेकर असहमतियाँ हो सकती हैं और होनी भी चाहिए, लेकिन उनके अस्तित्व को ही दरकिनार कर गढ़ी गई हिन्दी नवजागरण की कोई भी परिकल्पना, नेक इरादों के बावजूद, आत्मघाती और अन्ततः साम्प्रदायिक होने के लिए अभिशप्त है।

यदि भारतेन्दु युग में उर्दू की परम्परा से नई हिन्दी का सम्बन्ध-विच्छेद हुआ तो द्विवेदी युग की उपलब्धि ये है कि इस दौर में ब्रजभाषा की परम्परा से भी उसे काट दिया गया। रीति विरोधी अभियान चलाकर ये सिद्ध करने का प्रयास किया गया कि ब्रजभाषा में आधुनिक युग की संवेदना वहन करने की सामर्थ्य नहीं है। ब्रजभाषा में तो पतनशील सामंती मानसिकता की कामुक श्रृगांरिक कविताएँ ही लिखी जा सकती हैं। रीतिकालीन श्रृगांरिक कविताओं को ही नहीं, स्त्री लोकगीतों को भी विक्टोरियन नैतिकता के प्रभाव में अश्लील घोषित कर दिया गया जबकि इतिहास यह है कि आधुनिक योरोपीय भाषाओं में भी अपनी क्लासिक साहित्य और ज्ञान को आत्मसात कर कुछ-कुछ वैसा ही साहित्य लिखा गया था जैसा रीतिकालीन कविताओं में दिखाई पड़ता है इस बात को पूरी तरह नजरअंदाज कर दिया गया कि सूर, मीरा से लेकर न जाने कितने भक्तकवियों ने इसी भाषा में कविताएँ लिखी हैं। रीतिकालीन दौर में भी श्रृगांरिक कविताएँ लिखने वाले कवियों से ज्यादा ऐसे कवियों की संख्या है, जिन्होंने भक्ति-प्रधान कविताएँ लिखी हैं। यही नहीं, कथित रीतिकाल के दौर में ही 60 से भी अधिक संख्या में वीरकाव्य-लिखे गए हैं। दिनोदिन जीवन से सम्बन्धित समस्याओं पर लिखी गई कविताओं के साथ-साथ नीतिपरक कविताएँ भी इस दौर में कम नहीं लिखी गईं। स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, नरोत्तमदास और जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' जैसे आधुनिक दौर के कवियों के यहाँ भी वैसी कविताएँ नहीं मिलतीं, जिनका रीति-विरोधी अभियान के नाम पर विरोध किया गया। असल में उर्दू के दावे को खारिज करना तो आसान था, लेकिन उर्दू के दावे को खारिज करने के बाद ब्रजभाषा के दावे को खारिज करना बहुत मुश्किल था। साहित्यिक उपलब्धि की दृष्टि से तो खड़ी बोली कहीं से ब्रज भाषा के सामने खड़ी ही नहीं होती। उर्दू को दरकिनार करने के बाद साहित्य की भाषा के रूप में व्यापकता और विस्तार की दृष्टि से भी ब्रजभाषा का दायरा खड़ी बोली के मुकाबले बहुत विस्तृत था। गुजरात से लेकर बंगाल तक ब्रजभाषा में साहित्य लिखने की परम्परा दिखायी पड़ती है। खड़ी बोली के पक्ष में दूसरा तर्क ये दिया गया कि ब्रजभाषा में गद्य का पर्याप्त विकास नहीं हुआ, लेकिन यदि उर्दू परम्परा के विकास को हिन्दी से अलग कर दें, तो उस समय तक हिन्दी में ही गद्य का कौन सा विकास दिखाया जा सकता था। ये सही है कि फोर्ट विलियम कॉलेज, ईसाई मिशनरियों और अन्य लोगों के सहयोग से उन्नीसवीं शताब्दी में हिन्दी गद्य का तेजी से विकास हुआ। जो शोध हुए हैं, उनके आधार पर ये कहना भी पूरी तरह सही नहीं है कि ब्रजभाषा में गद्य का विकास ही नहीं हुआ। सबसे पुराने व्याकरण और शब्दकोश ब्रजभाषा के ही बनाये गये और अनेक संस्कृत ग्रन्थों का ब्रजभाषा-गद्य में अनुवाद किया गया। इन सारे तथ्यों पर ध्यान देने के बाद ये बात समझ में आती हैं कि रीतिविरोधी अभियान के नाम पर वास्तव में ब्रजभाषा के साहित्यिक-वैचारिक अवदान का निषेध किया जा रहा था।

हिंदी नवजागरण को जैसे भारतेंदु हरिश्चंद्र ने बंगाल नवजागरण से जोड़ा था, वैसे ही महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिंदी नवजागरण को महाराष्ट्र के नवजागरण से जोड़ा। द्विवेदी जी ने सरस्वती में मराठी के प्रसिद्ध लेखक विष्णु शास्त्री चिपलूनकर, संस्कृतज्ञ वामन शिवराम आपटे, प्रसिद्ध मूर्तिकार म्हातरे, गायनाचार्य विष्णु दिगम्बर, रायबहादुर रंगनाथ नृसिंह मुधोलकर, लोकमान्य बालगंगाधर तिलक और इतिहासवेत्ता विश्वनाथ काशीनाथ राजवाड़े आदि के साथ ताराबाई, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, कुमारी गोदावरी बाई, सौभाग्यवती रखमाबाई जैसी स्त्रियों पर लेख लिखकर उनके विचार, व्यवहार, कला-साधना और संघर्ष से हिंदी पाठकों को परिचित कराया. इन प्रक्रिया में उन्होंने हिंदी नवजागरण को अधिक व्यापक और समावेशी बनाया। महावीर प्रसाद द्विवेदी भारतीय स्त्रियों

की शिक्षा के पक्षधर थे। सन् 1914 ईस्वी में स्त्री शिक्षा के समर्थन में उनका एक लेख छपा था, जिसका शीर्षक था 'स्त्री–शिक्षा के विरोधी कुतर्को का खंडन'। यह लेख उस समय की पत्रिकाओं में प्रकाशित स्त्री–शिक्षा विरोधी लेखकों का जवाब था। इस लेख का आरंभ इस तरह होता है, ''बड़े शोक की बात है, आजकल भी ऐसे लोग विद्यमान हैं जो स्त्रियों को पढ़ाना उनके और गृह–सुख के नाश का कारण समझते हैं। और, लोग भी ऐसे वैसे नहीं, सुशिक्षित लोग–ऐसे लोग जिन्होंने बड़े–बड़े स्कूलों और शायद कालेजों में भी शिक्षा पाई है, जो धर्मशास्त्र और संस्कृत के ग्रंथ साहित्य से परिचय रखते हैं, और जिनका पेशा कुशिक्षितों को शिक्षित करना, कुमार्गगामियों को सुमार्गगामी बनाना और अधार्म्मिकों को धर्मतत्त्व समझाना है।'' महावीर प्रसाद द्विवेदी हिन्दी के पहले साहित्यकार थे, जिनको 'आचार्य' की उपाधि मिली थी। इसके पूर्व संस्कृत में आचार्यो की एक परम्परा थी। मई, 1933 ई. में नागरी प्रचारिणी सभा ने उनकी सत्तरवीं वर्षगांठ पर बनारस में एक बड़ा साहित्यिक आयोजन कर द्विवेदी का अभिनन्दन किया था एवं उनके सम्मान में 'द्विवेदी अभिनन्दन ग्रंथ' का प्रकाशन कर, उन्हें समर्पित किया था। हिंदी साहित्य की सेवा करने वालों में द्विवेदी जी का विशेष स्थान है। द्विवेदी जी की अनुपम साहित्य–सेवाओं के कारण ही उनके समय को द्विवेदी युग के नाम से पुकारा जाता है। द्विवेदी जी ने खड़ी बोली को कविता के लिए विकास का कार्य किया। उन्होंने स्वयं भी खड़ी बोली में कविताएं लिखीं और अन्य कवियों को भी उत्साहित किया। श्री मैथिली शरण गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय जैसे खड़ी बोली के श्रेष्ठ कवि उन्हीं के प्रयत्नों के परिणाम हैं। नवजागरण काल में हिंदी को जनमानस में स्थापित करने के जो प्रयास किए गए उन्हें आजादी के बाद एक तरह से उलट दिए गए। इस संदर्भ में आर्य समाज की सुधारवादी लहर, किसानों और मजदूरों के आंदोलन, आदि के माध्यम से राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन में तेजी आई। दयानंद सरस्वती और बाल गंगाधर तिलक और महात्मा गांधी आदि ने हिंदी को प्रमुखता दिलाने के लिए, उसे भविष्य में स्वतंत्र भारत की राष्ट्रीय अस्मिता का प्रतीक बनाने के लिए, स्वयं हिंदी सीखकर उसे अपनाया और देश भर में उसे प्रचारित किया। दयानंद सरस्वती ने 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना हिंदी में कि न की गुजराती अथवा अंग्रेजी में। मद्रास के सी वी राजगोपालाचारी ने हिंदी को मातृभाषा संदृश अपनाया और मद्रास में प्रथम हिंदी माध्यम का विद्यालय खोला, जिसे गांधीजी ने सराहा और इसे समस्त देशवासियों के सम्मुख प्रेरणा स्रोत के रूप में प्रस्तुत किया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी आधुनिक युग के हिंदी नवजागरण के पुरोधा माने जाते हैं।

उपसहांर

भारतीय नवजागरण आंदोलन का सूत्रपात बंगाल में हुआ और इसके सूत्रधार थे राजा राममोहन राय। इस आंदोलन ने भारत की वहुभाषिक, संस्कृति–बहुल भौगोलिकता और सामाजिकता में भावनात्मक स्तर पर समूचे उपमहाद्वीप को एकता के सूत्र में बांधने का प्रयास किया। प्राचीन काल से भारत एक बहुसांस्कृतिक देश रहा है। यहाँ एक ही महान परंपरा न होकर कई महान परंपराएँ विकसित हुई, इनके बीच टकराहट, अंतःक्रिया और आदान–प्रदान का इतिहास उतना ही पुराना है, जितनी पुरानी स्वयं भारतीय संस्कृतियाँ हैं। भारतीय संस्कृति एक विराट समष्टिगत संस्कृतियों के मेल से निर्मित समुच्चय है। उसमें अखंडता है, पर एकरूपता नहीं है। भारतीय भाषाओं का पुनरुत्थान और उनको अपनी जमीन पर पुनःप्रतिष्ठित करने का संघर्ष भी नवजागरण आंदोलन का महत्त्वपूर्ण उपक्रम रहा है। नवजागरण आंदोलन के अंतर्गत हिंदी को स्वाधीन भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में स्थापित करने के उद्देश्य भी प्रमुख रूप से परिलक्षित होता है। हिंदी एवं इतर भारतीय भाषाओं के प्राचीन वैभव एवं महानता को पुनर्जीवित करने के उद्यम को ही हिंदी नवजागरण की संज्ञा दी गई। स्वाधीनता से पूर्व ही हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में सशक्तएवं सक्षम बनाने के लिए महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अथक प्रयास किए। हिंदी के सशक्तिकरण के लिए उन्होंने 'सरस्वती' पत्रिका को माध्यम बनाया। राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रचारक महावीर प्रसाद द्विवेदी अन्य भारतीय भाषाओं से देशवासियों को प्रेम करना सिखाते हैं। भारतीय नवजागरण अथवा पुनर्जागरण आंदोलन के लक्ष्य व्यापक सामाजिक सुधार के थे।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग–डॉ.उदयभानु सिंह।*
2. *आचार्य द्विवेदी–बी.आर.धर्मेन्द्र।*
3. *हिन्दी साहित्य कोश–धीरेन्द्र वर्मा।*
4. *हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास–रामा शंकर।*
5. *महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण–डॉ. रामविलास शर्मा।*

भारत–नेपाल संबंध : नए क्षितिज की ओर

डॉ. भूपेन्द्र सिंह
पोस्ट डॉक्टर फेलो,राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

भारत–नेपाल पड़ौसी देश है जिनके सम्बन्धों की प्रगाढ़ता की मिसाल अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलती है। भौगोलिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक सम्बन्धों की घनिष्ठता के कारण दोनों सम्प्रभु देश परस्पर जुड़े हुए हैं दोनों के बीच खुली सीमा से सम्बन्धों की आत्मनिर्भरता ने व्यक्ति के व्यक्ति के साथ सम्बन्धों की स्थापना की है। इसलिए बहुधा यह माना जाता है कि भारत–नेपाल सम्बन्धों का केवल औपचारिक पक्ष ही महत्वपूर्ण नहीं है अपितु अनौपचारिक पक्ष भी महत्वपूर्ण है। 3 अगस्त 2014 को 17 वर्ष के लम्बे इतंजार के पश्चात भारतीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने नेपाल यात्रा के माध्यम से नेपाल से संबंध बेहतर बनाने की दिशा में बेहतरीन प्रयास किया।

संकेताक्षरः *अन्तराराष्ट्रीय सम्बध, शिक्षा, सेना सयुंक्त आयोग, विद्युत परियोजना।*

भारत की विदेश नीति अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के साथ सार्थक संबंध पर बल देती है ताकि राष्ट्रीय आर्थिक बदलाव, राष्ट्रीय सुरक्षा, संप्रभुता और भौगोलिक एकता सहित अपने मुख्य लक्ष्यों को सुनिश्चित करने के साथ–साथ हम अपनी मुख्य क्षेत्रीय एवं वैश्विक चिताओं का समाधान कर सकें। भारत ने अपने सभी पड़ोसी और सार्क देशों के साथ अपने संपर्क को गहन बनाया है। हमने अपने विस्तारित पड़ोस, आसियान, पश्चिमी एशिया और खाड़ी देशों के साथ सहभागिता बनाए रखा है। भारत ने विकास भागीदारी कार्यक्रमों के माध्यम से अफ्रीका के साथ संबंधों को बेहतर बनाने के लिए नए मंचों को सुदृढ़ किया है। हमने अंतर्राष्ट्रीय संगठनों में सक्रिय रूप से आवाज उठाई और अंतर्राष्ट्रीय लोक नीति के उभरते क्षेत्रों में स्वतंत्र स्थिति बनाए रखी। प्रधान मंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा 27 मई, 2014 को शपथ ग्रहण समारोह में शामिल होने के लिए दक्षिण एशियाई देशों के नेताओं को अप्रत्याशित रूप से न्यौता भेजा जाना दक्षिण एशियाई देशों के साथ सौहार्दपूर्ण, मैत्रीपूर्ण तथा सर्वसमावेशी संबंध स्थापित करने की हमारी मंशा एवं प्रतिबद्धता दर्शाती है। प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने भारत पहुंचे सभी मेहमान नेताओं के साथ महत्वपूर्ण बैठकें कीं। विदेश मंत्री श्रीमती सुषमा स्वराज ने बाद में कहा कि यह न्यौता प्रत्येक सार्क देश के साथ मैत्रीपूर्ण सहयोग के लिए प्रधान मंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के सपने को साकार करने की दिशा में पहला कदमा था। विदेश मंत्री के रूप में अपना कार्यभार ग्रहण करते हुए श्रीमती सुषमा स्वराज ने कहा कि भारत की विदेश नीति का मूल इसकी सभ्यता तथा विरासत में है तथा यह हमारे राष्ट्रीय हितों के प्रति एक सैद्धांतिक दृष्टिकोण पर आधारित है। विदेश मंत्री ने यह भी कहा कि वे इन अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों तथा चुनौतियों, जिनका हम सभी सामूहिक रूप से सामना कर रहे हैं, से निपटने के लिए विश्वभर में अपने रणनीतिक साझेदारों के साथ मिलकर कार्य करना चाहती हूँ।

भारत की नेपाल के साथ 1700 कि.मी. की सीमा है। दोनों देशों हैं। पारस्परिक मैत्री बनाए रखने हेतु इनके मध्य 1950 में मैत्री संधि अखंडता, स्वतंत्रता एवं सम्मान को अक्षुण्ण बनाए रखने का उल्लेख है। जुलाई–अगस्त 2000 में नेपाल के प्रधानमंत्री गिरिजा प्रसाद कोइराला भारत की यात्रा पर आये। विमान अपहरण कांड तथा ऋत्कि रोशन प्रकरण के कारण दोनों देशों के मध्य थोड़ी–सी दूरी दिखाई दी किंतु सीमा प्रबंधन, सीमावर्ती क्षेत्रों के विकास तथा जल संसाधनों के दोहन के क्षेत्र में परस्पर सहयोग को और अधिक मजबूत बनाया गया है। भारत व नेपाल के मध्य सुरक्षा से संबंधित सहयोग को

प्रभावी बनाने हेतु द्विपक्षीय संस्थागत तंत्रों का एक नेटवर्क भी तैयार किया गया है।

नेपाल के प्रधानमंत्री की भारत यात्रा के दौरान द्विपक्षीय मसलों की व्यापक समीक्षा की गई। इसके अलावा, कई महत्वपूर्ण द्विपक्षीय बैठकें हुई, जिनमें गृह–सचिव स्तर की वार्ता (19–20 जनवरी, 2005), सुरक्षा मसलों से सम्बद्ध भारत–नेपाल द्विपक्षीय परामर्मीय समूह की बैठक, जल संसाधनों से सम्बद्ध संयुक्त समिति (7–8 अक्टूबर, 2004), पंचेश्वर परियोजना से सम्बद्ध विशेषज्ञों के संयुक्त दल की बैठक (6 अक्टूबर, 2004), सचिव स्तर की दूरसंचार समन्वय बैठक (1–2 नवम्बर, 2004) और संयुक्त सचिव स्तर की व्यापार बातचीत (1–2 नवम्बर, 2004) शामिल है। फलस्वरूप कई द्विपक्षीय मसलों पर उल्लेखनीय प्रगति प्राप्त की गई।

वर्ष 2007 में राजशाही की समाप्ति एवं 2008 में संविधान सभा के चुनावों के पश्चात् नेपाल में गणतंत्र स्थापित हुआ जिसके परिणामस्वरूप भारत–नेपाल संबंधों में नए आयाम परिलक्षित हुए। श्री पुष्प कुमार दहल प्रचंड के नेतृत्व में माओवादियों की सरकार बनने से भारत–नेपाल संबंधों में मिठास कुछ कम होने लगी। प्रधानमंत्री प्रचंड द्वारा 1950 की मैत्री संधि की पुनर्समीक्षा की घोषणा एवं चीन की तरफ उसके बढ़ते झुकाव ने इस बात को पुख्ता किया। उल्लेखनीय है कि सेनाध्यक्ष की बर्खास्तगी के मुद्दे पर प्रचंड को इस्तीफा देना पड़ा। तत्पश्चात् उन्होंने नेपाल की आंतरिक अस्थिरता के लिए भारत की जिम्मेदार ठहराया। गौरतलब है कि माओवादियों के सत्ता में आने के पश्चात नेपाल में चीन का प्रभाव असामान्य रूप से फैला है। नेपाल को तिब्बत से जोड़ने के लिए आंतरिक सड़कों एवं रेल की व्यवस्था की गई है। चाइना रेडियो इंटरनेशनल ने काठमांडू में स्थानीय एफ. एम. रेडियो स्टेशन भी खोला है। यहां से पूरे नेपाल में कार्यक्रम प्रसारित किए जाते है। नेपाल के पूर्व प्रधानमंत्री ने 4 मई, 2009 को इस्तीफा दे दिया एवं उनके स्थान पर माधव कुमार नेपाल ने प्रधानमंत्री का पद संभाला। वर्तमान में नेपाल के राष्ट्रपति पद पर भारतीय मूल के व्यक्ति हैं। 20–23 अक्टूबर, 2011 के दौरान नेपाल के प्रधानमंत्री डॉ. बाबूराम भट्टराई ने एक उच्च स्तरीय प्रतिनिधि मंडल के साथ भारत की यात्रा की। यात्रा के दौरान भारत एक एमीनेन्ट पर्सन्स ग्रुप स्थापित करने पर सहमत हुआ जो भारत–नेपाल संबंधों को पूर्णता में देखेगा तथा इन देशों के मध्य सम्बंधों को मजबूत एवं और विस्तारित करने के उपाय सुझाएगा। दोनों प्रधानमंत्रियों की उपस्थिति में एक भारत–नेपाल द्वितीय निवेश प्रोटेक्शन एवं संवर्द्धन समझौता (बीआईपीपीए) पर हस्ताक्षर किए गए। इस समझौते के तहत् नेपाल सरकार एवं भारतीय आयात निर्यात बैंक के मध्य 250 मिलियन अमेरिकी डालर की साख उपलब्ध कराया गया। साथ ही नेपाल में घेंघा नियंत्रण कार्यक्रम के लिए 1.875 करोड़ रुपए की भारतीय सहायता के सम्बन्ध में समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किये गये।

भारत–नेपाल मित्रता और सहयोग खुली सीमा, लोगों के व्यापक आपसी सबंध और बहुमुखी सामाजिक आर्थिक आदान–प्रदान जैसी विशेषताऐं है। भारत, एक स्थिर दलीय लोकतांत्रिक गणराज्य के रूप में नेपाल के राजनैतिक बदलाव और सामाजिक आर्थिक विकास के उद्देश्य के लिए नेपाल सरकार और नेपाल के लोगो के प्रयासों को समर्थन देन हेतु नेपाल सरकार और मुख्य राजनैतिक पार्टियों के साथ निरंतर काम कर रहा है। नेपाल के राष्ट्रपति डॉ. राम बरन यादव 22–29 दिसंबर, 2012 तक भारत के सरकारी दूरे पर आए। उन्होंने भारतीय नेताओं से मुलाकात की। डॉ. राम बरन यादव ने महामाननीय पंडित मदन मोहन मालवीय की 150वीं जयंती पर बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के विशेष दीक्षांत समारोह में भी भाग लिया। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा उन्हें एल.एल.डी (मानद) उपाधि से सम्मानित किया गया। 10–13 जुलाई, 2012 तक थल सेना अध्यक्ष (सी.ओ.ए.एस) जनरल बिक्रम सिंह के नेपाल दौरे के दौरान नेपाल के राष्ट्रपति ने उन्हें नेपाली आर्मी के मानद जनरल की उपाधि से सम्मानित किया। नेपाली आर्मी के आर्मी स्टाफ चीफ जनरल गौरव एस.जे.बी राणा ने 6–15 जनवरी, 2013 तक भारत की यात्रा की और 08 जनवरी, 2013 कौ भारत के राष्ट्रपति ने उन्हें भारतीय सेना के मानद जनरल की उपाधि से सम्मानित किया। सुरक्षा मुद्दों पर भारत–नेपाल द्विपक्षीय परामर्शदात्री समूह की 9वीं बैठक 26 अप्रैल, 2012 को पोखरा में संपन्न हुई। भारत और नेपाल के बीच सप्तकेसी उच्च बांध बहुउद्देश्यी परियोजना और सनकोशी भंडारण सह विचलन योजना पर संयुक्त विशेषज्ञ दल की 13वीं बैठक 23–24 दिसंबर, 2012 को नेपाल में आयोजित की गई। दोनों पक्षों ने मौजूदा कोसी परियोजना के परिचालन, रखरखाव और प्रशासनिक मुद्दों से संबंधित चर्चा की।

नेपाल सरकार को भारतीय सीमा शुल्क लूटाने के संबंध में महानिदेशक स्तर की 8वीं वार्ता 18–20 अप्रैल, 2012 को काठमांडू में आयोजित की गई। पत्रकारों विद्वानों, व्यापारियों, अधिकारियों और राजनैतिक नेताओं के सम्मलित करते हुए वर्ष के दौरान नियमित रूप से यात्राओं दर का आदान–प्रदान हुआ। नेपाल को भारत द्वारा विकास सहायता के रूप में लघु विकास परियोजना (एस.डी.पी) को 2012 के दौरान और सुदृढ़ किया गया, जोकि नेपाल के

साथ भारत द्वारा विकास सहयोग का एक मुख्य आधार है, जनवरी–नवंबर, 2012 के दौरान 65.88 करोड़ रुपए की लागत वाली 29 नए परियोजनाओं के लिए समझौता ज्ञापनों पर हस्ताक्षर किए गए। स्वास्थ्य केन्द्रों और शैक्षणिक संस्थानों को40 एम्बूलेंस और 8 स्कूल बस भेंट किए गए।

200 करोड़ रुपए की लागत से बीरगंज तथा बिराटनगर में दो एकीकृत जाँच चौकियों (आई.सी.पी.) और 680 करोड़ रुपए की लागत से जयनगर (भारत) से बरदीबास (नेपाल) तथा जुगवानी (भारत) से बिराटनगर (नेपाल) तक भारत सीमा पर दो सीमा पार रेलवे संपर्कों के निर्माण कार्यों में तेजी लाने हेतु प्रयास किए गए। नेपाल को मानव संसाधन विकास सहयोग के भाग के रूप में भारत सरकार ने वर्ष के दौरान विभिन्न योजनाओं के तहत नेपाली छात्रों को भारत और नेपाल दोनों में ही लगभग 1800 छात्रवृत्तियां प्रदान की। इन छात्रवृत्तियों में नेपाल में महात्मा गांधी छात्रवृत्ति योजना के तहत 10+2 के विद्यार्थियों के लिए 1,000 और स्वर्ण जयंती छात्रवृत्ति युजना के तहत 100 एम.बी. बी.एम/बी.ई /बी.ए/बी. एस.सी शामिल है। भारत नेपाल का सबसे बड़ा व्यापारी भागीदार तथा एफ.डी.आई. का स्रोत बना हुआ है।

प्रधानमंत्री का 3–4 अगस्त, 2014 को नेपाल के सरकारी दौरे को नेपाल सरकार और वहां की जनता की अच्छी प्रतिक्रिया मिली। प्रधान मंत्री ने राष्ट्रपति श्री राम बरन यादव और प्रधान मंत्री श्री सुशील कुमार कोइराला से मुलाकात की और नेपाल के सांविधिक एसेंबली सह संसद को संबोधित किया, और ऐसा करने वाले वे पहले बाहरी विशिष्ट व्यक्तिथे। प्रधान मंत्री ने द्विपक्षीय वार्ता के लिए एक बार फिर 25–27 नवंबर, 2014 को नेपाल की यात्रा की और 18वें सार्क शिखर सम्मेलन में भाग लिया। इस यात्रा के दौरान, प्रधानमंत्री ने उन्नत लाईट हेलिकाप्टर ध्रुव को सौंपा और काठमांडू में आपात ट्रॉमा सेंटर का उद्घाटन किया। प्रथम काठमांडू–दिल्ली बस सेवा को झंडी दिखाकर रवाना किया गया। प्रधान मंत्री ने लुंबनी में माया देवी मंदिर परिसर में बोधि वृक्ष का पौधा लगाने की भी घोषणा की। दोनों पक्षों ने सुरक्षा,व्यापार, सीमा अवसंरचना, संपर्क, पर्यटन, तथा भारत के पड़ोसी देश संस्कृति के क्षेत्र में दोनों प्रधानमंत्री स्तरीय दौरों के दौरान निम्नलिखित महत्वपूर्ण समझौता ज्ञापनों तथा करारों को अंतिम रूप दिया।

पनाउती में राष्ट्रीय पुलिस अकादमी की स्थापना पर समझौता ज्ञापन ''पैसेंजर ट्रैफिक के रेग्यूलेशन'' हेतु मोटर व्हिकल्स करार पर्यटन में सहयोग पर समझौता ज्ञापन नेपाल सरकार को 1 बिलियन अमरीकी डॉलर की ऋण श्रृंखला पर करार औषधि की पारंपरिक प्रणाली के क्षेत्र में सहयोग पर समझौता ज्ञापन युवा मामलों में सहयोग पर समझौता ज्ञापन 900 गेगावाट अरुण–III जलविद्युत परियोजना के लिए परियोजना विकास करार अयोध्या–जनकपुर के बीच ट्विन सिटी व्यवस्था काठमांडू–वाराणसी के बीच ट्विन सिटी व्यवस्था लुम्बिनी–बोध गया के बीच ट्विन सिटी व्यवस्था 23 वर्षों के अंतराल के बाद 25–27 जुलाई, 2015 को संबंधित विदेश मंत्रियों की साझी अध्यक्षता में आयोजित भारत–नेपाल संयुक्तआयोग की बैठक में समग्र द्विपक्षीय संबंधों की समीक्षा की गई।

संयुक्त आयोग अन्य बातों के साथ–साथ इस बात पर सहमत या कि 1950 की शांति और मित्रता की संधि की समीक्षा, समायोजन तथा उसे अद्यतन करने की आवश्यकता थी जिसके लिए नेपाल एक विशिष्ट प्रस्ताव देगा। नेपाल–भारत संबंधों पर एक विशिष्ट व्यक्ति समूह (ईपीजी–एनआईआर) की स्थापना के लिए विचारार्थ विषयों को अंतिम रूप दिया गया। नेपाल के 9 जिलों में 2700 उथले नलकूपों कें संस्थापना के लिए नेपान–भारत मैत्री सिचाई परियोजना के लिए भारतीय अनुदान सहायता संबंधी समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए गए। संयुक्तआयोग के स्वीकृत कार्यवृत के अनुसरण में, संबंधित सर्वेक्षण विभागों के नेतृत्व में भारत–नेपाल सीमा कार्यकारी समूह (बीडब्ल्यूजी) की पहली बैठक 17–19 सितम्बर, 2014 के दौरान काठमांडू में आयोजित की गई। बीडब्ल्यू जी का यह आदेश है कि वे क्षतिग्रस्त/ध्वस्त हो गए सीमा स्तंमों का रखरखाव/निर्माण आरंभ में तैयार नक्शों के अनुसार करें। तत्पश्चात् भारत–नेपाल सीमा सर्वेक्षण पदाधिकारी समिति (एसओसी) की पहली बैठक 30–31 दिसम्बर, 2014 को देहरादून में आयोजित की गई।

खाद्य प्रबंधन और नियंत्रण के लिए दोनों देश निकट सहयोग करते रहे। लालबकिया, बागमती और कमला नदियों के तटबंधों के निर्माण के लिए 2014 में भारत सरकार ने 22.92 करोड रूपये की सहायता प्रदान की। अभीतक वितरित कुल अनुदान सहायता 205 करोड़ रूपये है। नेपाल के सधुपाल चौक जिले में सन् कोसी नदी के ऊपरी भाग में भूस्खलन के परिणामस्वरूप दोनों देशों के सामयिक सहयोग से अगस्त, 2014 के आरंभ में बिहार में बाढ़ को टाला जा सका।

दोनों देशों की सेनाओं के बीच प्रगाढ संबंध बराबर चलते रहे। सुरक्षा मद्दों पर भारत–नेपाल द्विपक्षीय परामर्शी समूह (बीसीजी) की ग्यारहवीं बैठक 05–07 जुलाई, 2014 के

दौरान हुई। सेना प्रमुखों के पारस्परिक दौरों से मिलिट्री संबंध और मजबूत हुए। श्रद्धापूर्ण परम्पराओं के अनुसरण में सेनाध्यक्ष जनरल दलबीर सिंह सुहाग द्वारा 12–15 नवम्बर, 2014 के दौरान नेपाल का दौरा उनके शुरूआती दौरों में शामिल था जहाँ उन्हें नेपाली सेना के मानद जनरल की उपाधि से सम्मानित किया गया। सशत्र सीमा बल (एसएसबी) तथा नेपाल की सशस्त्र पुलिसबल के महानिरीक्षक के बीच दूसरी भारत–नेपाल समन्वय बैठक 06 दिसम्बर, 2014 को काठमांडू में हुई। भारत सरकार नेपाली छात्रों को नेपाल तथा भारत में अध्ययन करने के लिए प्रतिवर्ष 3000 छात्रवृत्तियां प्रदान करती है। भारत के प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों में स्नातक/स्नातकोत्तर नेपाली छात्रों के अल्पावधिक पाठ्यकमों हेतु भारत नेपाल शिक्षा कार्यक्रम के प्रचालन द्वारा इन्हें और भी बढ़ा दिया गया है जैसा कि अगस्त, 2014 में प्रधानमंत्री के नेपाल दौरे में घोषणा की गई थी।

खुली सीमाऐं लोगों का लोगों से व्यापक संबंध तथा बहुमुखी सामाजिक–आर्थिक संपर्क भारत–नेपाल मित्रता तथा सहयोग की विशेषता रही है। विदेश सचिव ने अपनी सार्क यात्रा के भाग के रूप में 2–3 अप्रैल, 2015 तक नेपाल का दौरा किया और नेपाल के राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री तथा नेपाल के विदेश सचिव से मुलाकात की। 16 अप्रैल, 2015 को, भारत सरकार की ओर से, राजदूत ने कमीशन फॉर दी इन्वेस्टिगेशन ऑफ एब्युज ऑफ अथोरिटी (सी आई ए ए) के मुख्य आयुक्तको रु. 33.12 मिलियन के 35 वाहनों का उपहार सौंपा। 25 अप्रैल, 2015 के विध्वंसकारी भूकंप और 12 मई 2015 के जबरदस्त झटके के बाद भारत सरकार द्वारा प्रथम भूकंप के छः घंटे के अंदर विशेष वायुयानों से बचाव और राहत सामग्री भेजी गई। राहत चरण के दौरान केन्द्र और राज्य सरकारों के साथ–साथ गैर–सरकारी संगठनों से लगभग रु. 400 करोड़ रुपये की बड़ी सहायता की गई थी। नेपाल में भारत द्वारा सबसे अधिक राहत प्रयास किए गए।

विदेश मंत्री ने भूकंप संबंधी पुर्ननिर्माण प्रयासों के मकसद से नेपाल सरकार द्वारा आयोजित अंतर्राष्ट्रीय दानकर्ता सम्मेलन में भाग लेने के लिए 24–25 जून, 2015 तक नेपाल का दौरा किया। विदेश मंत्री द्वारा भारत की ओर से 1 बिलियन अमेरिकी डॉलर (जिसका एक चौथाई अनुदान है) की सहायता राशि की घोषणा की गई। यह अगले पांच वर्षों में 1 बिलियन अमेरिकी डालर की हमारी मौजूदा सहायता के अतिरिक्तथी। नेपाल के नेता पुष्प कमल दहल यूसीपीएन के 'प्रचण्ड' और एन सी के शेर बहादुर देउबा ने क्रमशः 14–20 जुलाई, 2015 तथा 19 जुलाई–3 अगस्त, 2015 तक भारत का दौरा किया। उन्होंने राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, विदेश मंत्री तथा विदेश सचिव से मुलाकात की। एक्सिस बैंक ऑफ इंडिया के माध्यम से भारत सरकार द्वारा दी गई 100 मिलियन अमेरिकी डॉलर, 250 मिलियन अमेरिकी डॉलर तथा 1 बिलियन अमेरिकी डॉलर की ऋण श्रृंखला के तहत विभिन्न परियोजनाओं की प्रगति की समीक्षा हेतु 03 अगस्त, 2015 को काठमांडू में भारत सरकार और नेपाल सरकार के बीच तृतीय द्विपक्षीय ऋण श्रृंखला (एल ओ सी) समीक्षा बैठक हुई थी।

भूकंप के पश्चात् नेपाल के पुर्ननिर्माण के लिए भारत सरकार द्वारा प्रतिबद्ध 750 मिलियन अमेरिकी डॉलर की ऋण श्रृंखला के कार्यान्वयन हेतु तौर–तरीकों के बारे में चर्चा हुई। नेपाल के वाणिज्य तथा आपूर्ति मंत्री सुनील बहादुर थापा ने 17–19 अगस्त, 2015 तक भारत का दौरा किया। उन्होंने विदेश सचिव से मुलाकात की जिन्होंने नेपाल का संविधान बनाने हेतु आम सहमति के आधार पर भारत की स्थिति को दोहराया। श्री मधु सूदन अधिकारी, महानिदेशक, सर्वेक्षण विभाग, नेपाल सरकार के नेतृत्व में एक 15–सदस्यीय नेपाली प्रतिनिधिमंडल ने भारत–नेपाल सीमा कार्य समूह (बी डब्ल्यू जी) की द्वितीय बैठक में भाग लेने के लिए 23–28 अगस्त, 2015 तक देहरादून का दौरा किया। सीमा खम्भों के लिए जी पी एस प्रौद्योगिकी का प्रयोग करने संबंधी करार पर सहमति बनी।

24 अगस्त, 2015 को काठमांडू में पेट्रोलियम व प्राकृतिक गैस राज्य मंत्री श्री धर्मेन्द्र प्रधान और नेपाल सरकार के वाणिज्य व आपूर्ति मंत्री श्री सुनील बहादुर थापा द्वारा एक समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए गए। विदेश सचिव ने प्रधानमंत्री के एक विशेष दूत के रूप में 18–19 सितंबर, 2015 तक नेपाल का दौरा किया। उन्होंने राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री तथा नेपाल के प्रमुख राजनीतिक पार्टियों के नेताओं से मुलाकात की। यात्रा के दौरान इस बात को दोहराया गया कि भारत नेपाल में संविधान बनाने का पुरजोर समर्थन करता रहा है और नेपाल के राजनीतिक नेताओं और सभी पक्षों को हमारी सलाह है कि व्यापक स्वीकृति के आधार पर संविधान का निर्माण हो जिसमें आवश्यक लचीलापन तथा परिपक्वता हो। 11 अक्टूबर, 2015 को प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने नवनिर्वाचित प्रधानमंत्री श्री के. पी. एस. ओली को बधाई दी। कार्यभार ग्रहण करने के एक सप्ताह के अंदर ही नेपाल के उप प्रधानमंत्री व विदेश मंत्री श्री कमल थापा ने 17–19 अक्टूबर, 2015 तक भारत का दौरा किया। अगस्त 2014 में प्रधानमंत्री के नेपाल दौरे के दौरान घोषित ''भारत नेपाल मैत्री शिक्षा कार्यक्रम'' के तहत नेपाल तथा भारत में अध्ययन करने के लिए 2015 में लगभग 3000 नेपाली छात्रों को छात्रवृत्तियां प्रदान की गई थीं।

नेपाल के उप प्रधानमंत्री व विदेश मंत्री श्री कमल थापा ने 2–3 दिसंबर, 2015 तक भारत का पुनः दौरा किया। उन्होंने नेपाल सरकार द्वारा मधेसी मुद्दों को निपटाने के लिए उठाए जा रहे कदमों के बारे में विदेश मंत्री को अवगत कराया। मुख्य मधेसी नेता श्री महंता ठाकुर, श्री उपेन्द्र यादव, श्री राजेन्द्र महतो और श्री महेन्द्र राय यादव ने 5–9 दिसंबर, 2015 तक भारत का दौरा किया। इस प्रतिननिधिमंडल ने विदेश मंत्री तथा अन्य राजनीतकि नेताओं से मुलाकात की।

आप्लावन और बाढ़ प्रबंधन संबंधी संयुक्तसमिति की 10वीं बैठक नेपाल में 6–10 दिसंबर, 2015 तक आयोजित की गई थी। 21 दिसंबर, 2015 को नेपाल के उप–प्रधानमंत्री और विदेश मंत्री कमल थापा द्वारा विदेश मंत्री को अवगत कराया गया कि आंदोलनकारी मधेस–आधारित पार्टियों द्वारा संविधान के संबंध में उठाई गई मांगों को निपटाने और हल करने के लिए नेपाल के मंत्रिमंडल ने कुछ महत्वपूर्ण निर्णय लिए हैं। नेपाल के प्रधानमंत्री के. पी. एस. ओली ने 31 दिसंबर, 2015 को प्रधानमंत्री को फोन किया और उन्हें नेपाल के राजनीतिक घटनाक्रमों की जानकारी दी। प्रधानमंत्री ने नेपाल की राजनीतिक समस्या का आम सहमति के आधार पर स्थायी हल निकालने के महत्व पर बल दिया। 06 जनवरी, 2016 को नेपाली कांग्रेस के उपाध्यक्ष रामचंद्र पॉडेल ने भारत का दौरा किया और विदेश मंत्री से मुलाकात की। 08 जनवरी, 2016 को सद्भावना पार्टी के अध्यक्ष, राजेन्द्र महतो ने विदेश मंत्री से मुलाकात की। नेपाल की संसद द्वारा 23 जनवरी, 2016 को संसदीय क्षेत्र के सीमांकन तथा आनुपातिक समावेश के मुद्दो से संबंधित दो संवैधानिक संशोधन पारित किए गए थे। भारत ने इसे सकारात्मक घटना बताया और आशा की कि इसी प्रकार के रचनात्मक भावना से अन्य बकाया मुद्दों का भी समाधान होगा।

नेपाल के प्रधानमंत्री श्री के. पी. शर्मा ओली ने कार्यभार ग्रहण करने के पश्चात अपने प्रथम विदेश दौरे में, 19–24 फरवरी, 2016 तक भारत का दौरा किया। इससे पूर्व प्रारंभिक दौरे के रूप में नेपाल के वित्त मंत्री श्री विष्णु पौडेल ने 7–8 फरवरी, 2016 तक भारत का दौरा किया। प्रधानमंत्री ओली की भारत यात्रा के दौरान भारत–नेपाल संबंधों पर चर्चा हुई जिनमें नेपाल में विकास और साथ ही पुनर्निर्माण, ऊर्जा तथा संस्कृति जैसे क्षेत्रों में सहयोग शामिल है। नेपाल की राष्ट्रीय पुलिस अकादमी की संयुक्त परियोजना निगरानी समिति की बैठक 28–29 जनवरी, 2016 को काठमांडू में हुई। नेपाल के सेना प्रमुख ने 2–5 फरवरी, 2016 तक भारत का दौरा किया जब माननीय राष्ट्रपति ने 'भारतीय सेना के जनरल' के मानद रैंक से उन्हें सम्मानित किया। कोसी तथा गंडक से संबंधित संयुक्त समिति की 8वीं बैठक 8–9 फरवरी, 2016 को पटना में हुई। भारत और नेपाल के बीच विद्युत से संबंधित संयुक्त स्थायी समिति तथा संयुक्तकार्य समूह की बैठक 28–29 जनवरी, 2016 को काठमांडू में हुई थी। 17 से 21 अप्रैल 2017 तक नेपाल की राष्ट्रपति विद्या देवी भंडारी की पांच दिन की भारत यात्रा कई मायने में ऐतिहासिक थी. राष्ट्रपति बनने के बाद भंडारी की भारत की यह पहली आधिकारिक यात्रा थी। राष्ट्रपति भंडारी 2016 में ही भारत की यात्रा पर आनेवाली थीं, परंतु नेपाल के प्रधानमंत्री केपी शर्मा ओली से टकराव के कारण उनकी यात्रा रद हो गयी थी। राष्ट्रपति भंडारी ने भारत के राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी तथा प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी से मुलाकात की और दोनों देशों के रिश्तों को मजबूत करने संबंधी कई महत्वपूर्ण मुद्दों पर चर्चा की। मोदी सरकार ने पिछले साढ़े तीन साल में नेपाल सहित अन्य सभी सार्क देशों के साथ रिश्ते मजबूत करने के लिए कई महत्वपूर्ण प्रयास किये हैं। अगस्त 2014 में प्रधानमंत्री मोदी दो बार नेपाल भी गये थे। जब अप्रैल 2015 में नेपाल के लोगो को भूकंप का भयानक तांडव झेलना पड़ा, तो भारत सबसे पहला देश था, जिसने सहायता सामग्री एवं सैनिकों को नेपाल सरकार के साथ बचाव अभियान में सहयोग करने के लिए भेजा। दुर्भाग्यवश, इस भीषण त्रासदी से निपटने में भारत के सहयोगात्मक व्यवहार को नेपाल ने विपरीत संदर्भ में देखा। इसका अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि ओली सरकार ने नेपाल में भारतीय मीडिया की उपस्थिति पर सवाल उठाते हुए भारत पर नेपाल के लोगों के सामने अपनी छवि को सुधारने का आरोप लगाया तथा भारतीय मीडिया के लोगों को नेपाल से चले जाने के लिए कहा। इतना ही नहीं, प्रधानमंत्री ओली ने इस मुद्दे को संयुक्तराज्य के महासचिव बान की मून के समक्ष भी उठाया और भारत के प्रति कड़ा रुख अपनाते हुए चीन के साथ संबंधों की मजबूती पर विशेष ध्यान दिया। नेपाल की विदेश नीति में इस विशेष बदलाव का पता उस समय स्पष्ट हो गया, जब फरवरी 2016 में भारत की यात्रा के तुरंत बाद ओली मार्च में चीन गये तथा काठमांडू एवं बीजिंग के बीच 'वन बेल्ट वन रोड' के अंतर्गत कई महत्वपूर्ण समझौतों पर हस्ताक्षर हुए। इससे पहले कि नयी दिल्ली तथा काठमांडू के बीच और दूरी बढ़ती, 601 सदस्यीय संसद में ओली सरकार अल्पमत में आ गयी और नेपाल पर एक बार फिर राजनीतिक अस्थिरता का साया मंडराने लगा। हालांकि, ओली सरकार का सत्ता से बाहर चले जाना भारत के लिए सुखद समाचार था, पर भारतीय राजनयिकों तथा विश्लेषकों ने इस पर चिंता प्रकट की कि नये प्रधानमंत्री पुष्प कमल दहल प्रचंड

के नेतृत्व में भारत–नेपाल संबंधों में शायद ही सुधार होगा. कारण, अपने पहले प्रधानमंत्री कार्यकाल में प्रचंड ने भारत के बजाय चीन के साथ संबंधों को सुधारने पर बल दिया था।

पिछले साल भारत के राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी की नेपाल यात्रा दोनों देशों के संबंधों को मजबूत बनाने में एक अति महत्वपूर्ण पहल थी। राष्ट्रपति मुखर्जी ने अपनी यात्रा को मिशन ऑफ फ्रेंडशिपज् कहा. दोनों देशों के लोगों के बीच नजदीकियां बढ़े इसके लिए उन्होंने घोषणा की कि नेपाली छात्र आइआइटी में 2017 से ग्रेजुएशन एवं पोस्ट–ग्रेजुएशन कर सकते हैं। भारत का नेपाल के साथ अच्छे रिश्ते बनाने का दूसरा कारण चीन का नेपाल की सड़क, बिजली जैसी अन्य मूलभूत संरचना में बढ़ती भागीदारी को रोकना है। पाकिस्तान का नेपाल के साथ मैत्रीपूर्ण प्रयासों के संदर्भ में भारत के लिए यह आवश्यक भी है कि वह इस बात को सुनिश्चित करे कि चीन–नेपाल–पाकिस्तान का भारत के विरोध में सामूहिक गंठजोड़ न हो पाये। काठमांडू के साथ मजबूत रिश्ता बनाये रखना नयी दिल्ली के लिए इसलिए भी जरूरी है, ताकि नेपाल के नये संविधान में मधेशी लोगों के हितों की रक्षा की जा सके। इसी परिप्रेक्ष्य में जहां नेपाल की राष्ट्रपति विद्या देवी भंडारी की भारत यात्रा से दोनों देशों के संबंधों को एक नयी गति मिली है, वहीं इस बात की उम्मीद की जानी चाहिए कि दोनों देश आनेवाले समय में द्विपक्षीय संबंधों को एक नयी ऊंचाई पर पहुचायेंगे।

घनिष्ठ और अंतरंग संबंध

संभवतः अन्य किसी दो पड़ौसियों के बीच इतने घनिष्ठ और अंतरंग संबंध नहीं हैं, तथ्य और आंकड़े अपनी कहानी कहते हैं, और व्यापार तथा निवेश, संस्कृति तथा सुदृढ़ व्यक्तिगत संपर्कों से बने संबंधों की एक नयनाभिराम चित्र यवनिका सामने लाते हैं। भारतीय और नेपाली इतनी सहजता से अनायास घुल–मिल जाते हैं कि उन्हें एक दूसरे के देश में मुश्किल से ही विदेशी के रूप में देखा जाता है। नेपाली भारत में बिना किसी कार्य परमिट के काम कर सकते हैं, बैंक खाता खेल सकते हैं और अपनी संपत्ति रख सकते हैं। मुक्त सीमा ने दोनों देशों के बीच लोगों का निर्बाध आवागमन सुनिश्चित किया है। इसके अलावा, देनों देशों के बीच प्रति सप्ताह 60 उड़ानें होती हैं। नेपाल जाने वाले सभी पर्यटकों में बीस प्रतिशत भारतीय होते हैं, और नेपाल जाने वाले पर्यटकों में से लगभग 40 प्रतिशत भारत होते हुए जाते हैं।

आर्थिक संयोग

भूगोल एवं इतिहास की अनिवार्यताओं के परिणामस्वरूप दोनों पड़ौसियों की आर्थिक नियति का अंतर्गुम्फन हुआ है। नेपाल के विदेश व्यापार का दो तिहाई भारत के साथ होता है, जिसमें द्विपक्षीय व्यापार अनुमानतः लगभग 4.7 बिलियन डॉलर का है। नेपाल में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का 47 प्रतिशत भारत से है। 1996 के बाद से, भारत में नेपाल के निर्यात में ग्यारह गुणा वृद्धि हुई है और द्विपक्षीय व्यापार सात गुणा से अधिक बढ़ गया है। भारतीय फर्में नेपाल में सबसे बड़ी निवेशक हैं जिन्होंने कुल अनुमोदित प्रत्यक्ष विदेशी निवेशों का लगभग 40 प्रतिशत निवेश किया है। नेपाल में लगभग 150 से अधिक भारतीय उपक्रम कार्य कर रहे हैं जिनमें विनिर्माण, सेवाओं (बैंकिंग, बीमा, शुष्क बंदरगाह, शिक्षा और दूरसंचार), ऊर्जा क्षेत्र एवं पर्यटन उद्योग जैसे विविध क्षेत्रों के उपक्रम शामिल हैं। नेपाल में निवेशकर्ताओं में अन्य के साथ–साथ आईटीसी, डाबर इंडिया, टाटा पावर, हिंदुस्तान यूनीलिवर, वीएसएनएल, टीसीआईएल, एमटीएनएल, भारतीय स्टेट बैंक, पंजाब नेशनल बैंक, भारतीय जीवन बीमा निगम और एशियन पेंट्स शामिल हैं।

संयुक्त आयोग

बहु–स्तरीय संबंधों की इस पृष्ठभूमि में, भारत की विदेश मंत्री 26 जुलाई को काठमाण्डू में अपने नेपाली काउंटरपार्ट महेंद्र बहादुर पाण्डे के साथ संयुक्त आयोग की अध्यक्षता करेंगी। बैठक का महत्व इसी बात से पता चल सकता है कि 23 वर्षों में यह प्रथम संयुक्त मिशन होगा और इसमें (राजनैतिक, सुरक्षा एवं सीमा संबंधी मुद्दे) आर्थिक सहयोग एवं अवसंरचना (व्यापार एवं ट्रांजिट ऊर्जा एवं जल संसाधन) संस्कृति, शिक्षा एवं मीडिया संबंधी मुद्दों के पांच क्षेत्र शामिल होंगे। सुरक्षा को बढ़ाना और आतंकवाद से लड़ने में सहयोग करना भारत की अन्य महत्वपूर्ण प्राथमिकता है। इस संदर्भ में, दोनों देशों की सुरक्षा एजेंसियां विस्तृत क्षेत्रों में अतिसक्रिय रूप से सहयोग कर रही हैं, जिसमें गैर कानूनी स्मगलिंग, हथियारों की तश्करी और नकली मुद्रा के मुद्दे शामिल हैं। खुली सीमाओं और भारत नेपाल सीमाओं को आतंकवादियों द्वारा वाहक के रूप में उपयोग किए जाने की रिपोर्टों के चलते, आने वाले दिनों में संबंधों के सुरक्षा आयाम को अवश्य सहारा प्राप्त होगा।

जल–विद्युत : मिलकर खुशहाली लाना

सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि जलविद्युत सहयोग की क्षमता का लाभ प्राप्त करने पर विशेष ध्यान दिया जाएगा, जो अलग–अलग मान्यताओं के कारण बहुत अधिक अछूता रहा है। वार्ता से भारत को उम्मीद है कि एक नया ऊर्जा करार संभव होगा जो इस क्षेत्र में दोनों पक्षों के लिए फायदेमंद अवसरों के नए द्वारा खोलेगा। यदि करार हो

ISSN 2277-5587

जाता है तो, यह नेपाल में बार–बार पैदा हो जाने वाले ऊर्जा संकट का समाधान करेगा, और भारत भी करार के भाग के रूप में अतिरिक्त बिजली प्राप्त करेगा। विशेषज्ञों के अनुसार, नेपाल में 40,000 मेगा वोट हाइडल पावर है जो तकनीकी और वित्तीय रूप से व्यवहार्य पाई गई है। कुल हाइडल क्षमता 80,000 मेगा वोट होने का अनुमान लगाया गया है। यदि नेपाल की जल–विद्युत क्षमता का अभीष्ट दोहन किया जाए, तो यह दक्षिण एशिया का सबसे संपन्न देश बनने की क्षमता रखता है।

विकास भागीदारी

एक दोमंजिला स्कूल भवन के निर्माण हेतु 40 मिलियन नेपाली रूपये की भारतीय अनुदान सहायता प्रदान किए जाने के लिए काठमाण्डू, जिला विकास समिति, मोरंग और श्री जनता माध्यमिक विद्यालय के बीच एक समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए गए हैं। विकास भागीदारी के क्षेत्र को विस्तृत करना वह अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्र होगा जिस पर वार्ता के दौरान बल दिया जाएगा। भारत ने इस हिमालयन राज्य के समावेशी विकास के लिए अपनी प्रतिबद्धता को अनेक बार रेखांकित किया है और नेपाल सरकार को 100 मिलियन अमरीकी डॉलर तथा 250 मिलियन अमेरिकी डॉलर के दो आर्थिक ऋण पहले ही प्रदान कर दिए हैं।

विकास भागीदारी व्यापक क्षेत्रों में हुई है, इनमें भारत राजमार्गों, पुलों, ऑप्टिकल फाइबर लिंकों, मेडिकल कॉलेजों, ट्रॉमा सेंटरों, पॉलीटेक्नीकों, स्कूलों, अस्पतालों और स्वास्थ्य केंद्रों का निर्माण कर रहा है। नदी प्रशिक्षण एवं तटबंध विनिर्माण के लिए, भारत सरकार ने उदारता से निधियां और विशेषज्ञ सहायता प्रदान की है ताकि लालबकेया, बागमती और कमला नदियों के तटबंधों का सुदृढ़ीकरण और विस्तार हो सके।

संयुक्त आयोग की बैठक नेपाल के राजनैतिक पटल पर बदलाव के मध्य तब होने जा रही है जब संविधान–निर्माण की प्रक्रिया नया स्वरूप ले रही है। भारत ने नेपाल के आंतरिक मामलों से स्वयं को अलग रखने की सुविचारित नीति को बनाये रखा है, परंतु हिमालयन राज्य में, जो आधुनिकता और राष्ट्रीय नवीकरण की अपनी यात्रा को स्वयं की शर्तों पर तय कर रहा है, चिर शांति और स्थायित्व लाने के लिए एक समावेशी राजनैतिक प्रक्रिया की निरंतर रूप से मैत्री भाव से वकालत की है। 27 मई को नई दिल्ली में प्रधान मंत्री कोइराला के साथ अपनी बैठक में प्रधान मंत्री नरेंद्र मोदी ने नेपाल को एक पुराने और बहुत ही सम्मानित मित्रज्ज् के रूप में वर्णित किया और ईमानदारी से उम्मीद जताई कि नेपाल द्वारा संविधान को एक वर्ष की उस समय–सीमा में अंगीकार कर लिया जाएगा जो उसने अपने लिए तय की है। अतः भारत की विदेश मंत्री की 25–27 जुलाई की यात्रा प्रचुर संभावनाओं से प्रदीप्त है और यह भारत के प्रधान मंत्री की शीघ्र ही होने वाली महत्वपूर्ण काठमाण्डू यात्रा के लिए आधार तैयार कर सकेगी। प्रधान मंत्री का दौरा, जब भी होगा, भारत–नेपाल संबंधों को नए मार्ग पर लाने और दोनों पक्षों के लिए बहुआयामी लाभदायक अवसरों के असंख्य नए द्वार खोलने के लिए निर्णायक पल साबित हो सकता है, जिससे दोनों पड़ौसी देश खुशहाली के लिए मिलकर काम करते हुए और अधिक निकट आएंगे।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *अग्रवाल, निर्मला, भारत–नेपाल सम्बन्ध : 1950 की शांति एवम् मैत्री सन्धि के सन्दर्भ में एक अध्ययन, ए बी डी पब्लिशर्स, जयपुर, 2003, पृ. 56*
2. *विदेश मंत्रालय वार्षिक रिपोर्ट 2015–16, नीति नियोजन एवं अनुसंधान प्रभाग, विदेश मंत्रालय, नई दिल्ली, पृ. 13–14*
3. *विदेश मंत्रालय वार्षिक रिपोर्ट 2014–15, नीति नियोजन एवं अनुसंधान प्रभाग, विदेश मंत्रालय, नई दिल्ली, पृ. 15*
4. *राज एस. विवेक : फॉरेन पॉलिसी ऑफ इण्डिया, पब्लिशर्स सीविल सर्विसेज टाईम्स, नई दिल्ली, 2012, पृ. 78*
5. *विदेश मंत्रालय वार्षिक रिपोर्ट 2014–15, नीति नियोजन एवं अनुसंधान प्रभाग, विदेश मंत्रालय, नई दिल्ली, पृ. 15–16*
6. *सांसम, सध्यांरानी देवी, ''इंडिया नेपाल रिलेशन–हिस्टोरीकल, कल्चरल एण्ड पॉलिटिकल पर्सपेक्टिव'', विज बुक्स इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2011, पृ. 87*
7. *दैनिक जागरण, 25 मार्च, 2016*
8. *विदेश मंत्रालय वार्षिक रिपोर्ट 2015–16, नीति नियोजन एवं अनुसंधान प्रभाग, विदेश मंत्रालय, नई दिल्ली, पृ. 14–15*
9. *प्रभात खबर, 28 अप्रैल, 2017*

बहुराष्ट्रीय निगम : चुनौतियाँ एवं समाधान

रामेश्वर लाल
शोधार्थी, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

भारतीय अर्थव्यवस्था में बहुराष्ट्रीय निगमों का प्रवेश गम्भीर विवाद का विषय बन गया है। भारतीय अर्थव्यस्था में बहुराष्ट्रीय निगम लम्बे समय से कार्यरत है। 1991 के पूर्वतः बहुराष्ट्रीय निगम कुछ शर्तो के अधीन कार्य कर रहे थे। उस समय उन्हे अंश पूँजी में प्रमुख भाग की अनुमति नहीं थी। नई नीति से बहुराष्ट्रीय निगमों को कुछ क्षेत्रों मे 51 प्रतिशत से भी अधिक पूँजी निवेश की अनुमति प्रदान की गई। नई नीति के अनुसार यदि किसी बहुराष्ट्रीय निगम का सम्पूर्ण उत्पादन निर्यात के लिए हो तो उसे शत् प्रतिशत पूँजी निवेश की अनुमति दी जा सकती है। भारतीय अर्थव्यवस्था पर विश्वव्यापीकरण की नीतियों का सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। अर्थव्यवस्था को जीवन्त बनाने और उद्योगो को संरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से विश्वव्यापीकरण के सार्थक प्रयास निर्विवाद रूप से सफल रहे हैं। किन्तु बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को अत्यधिक मनमानी करने का मौका नहीं दिया जाना चाहिये जिससे देश की सार्वभौमिकता को खतरा उत्पन्न हो।

संकेताक्षरः *अर्थव्यवस्था, उदारीकरण, विश्वव्यापीकरण, बहुराष्ट्रीय निगम, रोजगार, वैविक पूँजीवाद, प्रबन्धकीय तकनीकें, विपणन, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार।*

भारत के आर्थिक विकास में निजी क्षेत्र की विदेशी पूँजी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। निजी क्षेत्र की विदेशी पूँजी का मुख्य उद्देश्य लाभ अर्जित करना होता है अतः यह पूँजी ऋण एवं अनुदान के रूप में प्राप्त नही होती वरन् बहुराष्ट्रीय कम्पनियों एवं निगमों के माध्यम से अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में हिस्सा पूँजी में भाग बंटाते विदेशी सहयोग अथवा पोर्ट–फोलियो निवेश के रूप में होता है। इस प्रकार निजी क्षेत्र की विदेशी पूँजी इन बहुराष्ट्रीय निगमों के माध्यम से सरकारी तथा गैर–सरकारी दोनो क्षेत्रों में लगी हुई है। भारत में इस तरह का विदेशी पूँजी निवेश कई विकसित देशों जैसे – अमेरिका, इंग्लैण्ड, जापान, जर्मनी, फ्रांस, स्वीडन, कनाडा आदि देशों की कम्पनियों एवं निगमों के द्वारा किया गया है।

बहुराष्ट्रीय निगम एक परिचय : साधारण बोलचाल में बहुराष्ट्रीय निगम का अभिप्राय एक ऐसी कम्पनी अथवा व्यावसायिक संस्था से है जिसका व्यवसाय अथवा उत्पादन तथा वितरण के कियाकलाप एक से अधिक देशों में फैले हुए है। आई.बी.एम. वर्ल्ड ट्रेड कॉरपोरेशन के अध्यक्ष के अनुसार ''एक बहुराष्ट्रीय निगम वह है जो (i) अनेक देशों में कार्य करता है, (ii) उन देशों में विकास, निर्माण एवं अनुसंधान का कार्य करता है, (iii) जिसका बहुराष्ट्रीय प्रबन्ध होता है तथा (iv) जिसका स्कन्ध स्वामित्व बहुराष्ट्रीय प्रबन्ध होता है।''

दूसरे शब्दों में संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि ''बहुराष्ट्रीय निगम एक ऐसी कम्पनी या व्यावसायिक संस्था है जिसका व्यवसाय एवं कारोबार अपने जन्म स्थान के देश से बाहर अनेक देशों तक फैला होता है।'' यही कारण है कि ऐसे निगमों को बहुराष्ट्रीय कम्पनी या अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनी/निगम अथवा TNCs के नाम से भी जाना जाता है।

बहुराष्ट्रीय निगम का भारतीय परिदृश्यः भारत जैसे विकासशील राष्ट्र में बहुराष्ट्रीय निगम एवं निजी पूँजी निवेश की देश के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका रही हैं जहाँ एक ओर देश के प्राकृतिक साधनों के विदोहन का मार्ग प्रशस्त हुआ है वहाँ

दूसरी ओर देश के औद्योगिकरण, विपणन, उन्नत प्रौद्योगिकी एवं उत्पादन तकनीक के साथ साथ अनुसंन्धान कार्यों को बढ़ावा मिला हैं भारत में विदेशी पूँजी निवेशों में वृद्धि हुई है तथा रोजगार बढ़ा है। प्रबन्धकीय क्षमताओं में वृद्धि हुई है। भारत सरकार द्वारा आर्थिक उदारीकरण व विदेशी प्रत्यक्ष निवेशों के प्रस्तावों के अनुमोदन काफी रहे है पर वास्तविक प्रवाह बहुत कम रहा है। विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों एवं निगमों ने आधारभूत उद्योगों के विकास में उन्नत प्रौद्यौगिकी एवं तकनीक प्रदान करने, बड़ी मात्रा में पूँजी निवेश करने और जोखिम उठाने मे महत्वूपर्ण भूमिका निभाई है।

विकासशील देशों में प्राकृतिक साधनों की प्राचुर्यता है पर टेक्नोलोजी साहस, पूँजीगत सामान तथा प्रशिक्षित श्रम शक्ति के अभाव में इन प्राकृतिक साधनों का वांछित विदोहन नहीं हो पाया। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में ये सब साधन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है तथा उन्होंने भारत जैसे कई विकासशील देशों के प्राकृतिक सम्पदा के विदोहन को सम्भव बनाया हैं भारत में खनिज तेल की खोज तथा उसके विदोहन में बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिका महत्वपूर्ण है।

बहुराष्ट्रीय निगमों के पास उत्पादन की उन्नत तकनीक होती है और वे अनुसन्धान एवं विकास से प्रौद्योगिकी का विकास करते रहते है अतः विदेशी पूँजी निवेशों के साथ–साथ विदेशी बहुराष्ट्रीय निगमों की उच्च तकनीक भी आती है। भारत में पेट्रोलियम, रसायन, औषधि तथा इन्जीनियरिंग एवं इलेक्ट्रोनिक उद्योगों में उच्च तकनीक प्राप्त हुई है। भारत जैसे विकासशील देशों में स्थानीय उद्योगपतियों में जोखिम उठाने का साहस बहुत कम होता है। ऐसी स्थिति में बहुराष्ट्रीय निगम अपने विशाल साधनों एवं लम्बे अनुभव से नये उद्योगों की स्थापना में जोखिम उठाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। भारत के ऊर्जा टेलीकम्युनिकेशन, सडक निर्माण, सौर ऊर्जा विकास आदि में बहुराष्ट्रीय निगम आगे आ रहे है। बहुराष्ट्रीय निगमों में कई शोध कार्य करने का सामर्थ्य होता है और उनके शोध कार्यो का लाभ उनकी सभी देशों की शाखाओं एवं सहयोगी कम्पनियों को मिलता है। इससे भारत जैसे देशों को भी शोध एवं विकास के वे लाभ मिल जाते है जो अन्यथा संभव नही होते। बहुराष्ट्रीय निगमों का कार्य क्षेत्र बड़ा होता है और उनके बडे पैमाने की उत्पादन, वितरण एवं प्रबन्ध व्यवस्था में काफी लोगों को रोजगार मिलता है। उच्च प्रशिक्षण व्यवस्था से रोजगार के अवसर भी बढ़ते है। आज भारत में बहुराष्ट्रीय निगमों में कई भारतीय रोजगार में लगे हुए है। बहुराष्ट्रीय निगमों में उच्च प्रबन्ध कुशलता का लाभ भारत के उद्योगों को मिला है और भारतीय प्रतिस्पर्द्धी कम्पनियों ने अपनी प्रबन्ध कुशलता एवं प्रतिस्पर्द्धात्मक क्षमता को बढ़ाया है।

भारत में विदेशी बहुराष्ट्रीय निगमों की प्रमुख चुनौतियाँः यद्यपि बहुराष्ट्रीय निगमों से देश के आर्थिक विकास एवं प्राकृतिक साधनों के विदोहन में मदद मिलती है। उच्च प्रौद्योगिकी एवं उन्नत तकनीक का लाभ मिलता है। प्रबन्ध कुशलता में वृद्धि होती है और देश के लोगों को रोजगार मिलता है पर जब बहुराष्ट्रीय हितों की बलि दे देते है, विदेशी मुद्रा में हेरा–फेरी करते है और देश के उद्योगों को कट्र प्रतिस्पर्द्धा एवं राशिपातन से धराशायी करने का दुस्साहस करते है तो उनके विरूद्ध आवाज बुलन्द होना स्वाभाविक है। बहुराष्ट्रीय निगमों की प्रमुख चुनौतियाँ इस प्रकार हैः–

- बहुराष्ट्रीय निगम तथा विदेशी निजी कम्पनियाँ विदेशी ब्राण्ड एवं ट्रेडमार्को के उपयोग से ऊँची कीमतों द्वारा भारतीय उपभोक्ताओं का शोषण करते है और भारी लाभ अर्जित करते है। यह ऑकडो से उजागर होता है कि थोडी–सी पूँजीनिवेश करके भी वे भारी लाभ अर्जित करते है।
- भारत में विदेशी निजी कम्पनियों एवं बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा जब बड़ी मात्रा में लाभ, रायल्टी, फीस विदेशों में भेजे जाते हैं तथा बडी मात्रा में निर्मित या कच्चा माल आयात किया जाता है जबकि निर्यात कम किया जाता है तो अन्ततः भुगतान सन्तुलन पर नकारात्मक प्रभाव पडता है।
- जहाँ विदेशी निजी पूँजी निवेश तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से सहयोग एवं सहभागिता उद्योगों में उन्नत प्रौद्योगिकी एवं उच्च तकनीक के लिए की जाती है वहाँ ये कम्पनियाँ विकसित देशों की छोडी हुई पुरानी टेक्नोलोजी को विकासशील देशोंमें स्थानान्तरण कर देती है, इससे जहाँ एक ओर ऊँचे दाम वसूल कर लिये जाते है वही दूसरी ओर देश उन्नत प्रौद्योगिकी से वंचित रहा जाता है। भारत में ऐसी धोखाधड़ी बहुत हुई है और भारत को भारी खामियाजा भुगतना पडा है। यह तकनीक देश के अनुकूल भी नही होती तो नुकसान होता है।
- बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ अन्तरण कीमत से भारी लाभार्जन करती हैं। वे ऊँची कीमतों पर अपनी विदेशी सहायक कम्पनियॉ से कच्चा माल खरीदती है तथा दूसरी विदेशी सहायक कम्पनियों को निर्मित माल बहुत कम कीमत पर बेच देती हैं जिससे बहुराष्ट्रीय कम्पनी का यहाँ तो उद्योग का लाभ घट जाता है पर

विदेशों में बढ़ जाता है। यह करों की चोरी भी बढ़ाता है और देश को हानि उठानी पड़ती है।

- कई बार बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ जो अपने लाभ को अधिकतम करने के प्रयास में रहती है देश के हितों की उपेक्षा करती है। जो अन्ततः देश के भावी विकास में बाधा पहुचाते हैं। यही कारण है कि कोका कोला तथा आई.बी.एम जैसी अमेरिकी कम्पनी को भारत में अपना कारोबार बन्द करना पड़ा था।
- बहुराष्ट्रीय निगम एवं कम्पनियाँ अपने विशाल आर्थिक साधनों एवं महंगे भ्रमात्मक विज्ञापन साधनों के द्वारा देश के उद्योगों के लिए कट्र प्रतिस्पर्धा उत्पन्न करते है, यहाँ तक कि कभी-कभी अपने उत्पादों को घाटे पर बेचकर भी अपनी प्रतिस्पर्द्धा कम्पनियों को बाहर कर देते हैं अथवा उन्हें अपने में मिलाने को बाध्य कर देते है जिससे उन्हें एकाधिकारी की स्थिति मे पहुँचकर लाभार्जन का मौका मिलता है। इसके कारण देश के उद्योगपति आगे नहीं आ पाते। देश अपने औद्योगिक विकास के लिए बहुराष्ट्रीय कम्पनियों पर आश्रित हो जाता है जो कभी भी घातक हो सकता है।
- निजी क्षेत्र की विदेशी कम्पनियां अथवा बहुराष्ट्रीय निगम अधिकारिक लाभार्जन के उद्देश्य से किन्हीं खास-खास क्षेत्रों में ही उद्योग लगाते है जिससे पिछड़े क्षेत्रों में औद्योगिक विकास नहीं हो पाने से क्षेत्रीय असमानता को बढ़ावा मिलता है जो देश के हित में नही हो सकता।
- बहुराष्ट्रीय निगम अपने विशाल आर्थिक साधनों के जोर पर अपने व्यावसायिक हितों की अभिवृद्धि एवं रक्षा के लिए कभी-कभी राजनैतिक भ्रष्टाचार का सहारा लेते है। मोटी-मोटी रकमें रिश्वत के रूप में देकर अपने हित साधते है। इसके कई उदाहरण इन दिनों प्रकाश में आये है। ये बहुराष्ट्रीय निगम कई बार राजनैतिक हस्तक्षेप भी करते है।
- बहुराष्ट्रीय निगम जहाँ एक ओर अपने विशाल पूँजीगत साधनों और उच्च तकनीक की उत्पादन पद्धतियों से लागत घटाते है वही दूसरी ओर ये देश के छोटे उद्योगों से कट्र प्रतिस्पर्द्धा कर उनके अस्तित्व को ही खतरे में डाल देते हैं भ्रमात्मक प्रचार तथा विदेशी ब्राण्डों एवं ट्रेडमार्को का उपयोग कर अपनी प्रभुसत्ता जमा लेते हैं इस कारण देश के छोटे उद्योगों का पतन हो जाता है और देश अन्ततः अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिए विदेशी बहुराष्ट्रीय निगमों पर निर्भर हो जाता है। यह देश की आत्मनिर्भरता एवं सुरक्षा दोनों के लिए खतरा उत्पन्न करते हैं।

चुनौतियों का समाधान - सरकारी प्रयास एवं सुझावः औद्योगिक विकास देश की आर्थिक सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का दर्पण है बिना राजकीय सहायता एवं प्रोत्साहन के औद्योगिक विकास की कल्पना तक नही की जा सकती है इसलिए आज राज्य मनुष्य की संपूर्ण क्रियाओं का नियमन एवं नियंत्रण करता है एवं आर्थिक क्षेत्र में राज्य का व्यापक हस्तक्षेप वर्तमान शताब्दी की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता बन गई है। इसलिए कहा जाता है कि उद्योग क्षेत्र में राजकीय हस्तक्षेप आज के युग की व्यवस्था है और अहस्पक्षेप की नीति एक काल्पनिक विचारधारा है। भारत के उद्योगों के विकास में सरकार की भूमिका/राजकीय सहायता के प्रयास निम्नलिखित हैः

- सरकार द्वारा देश में उद्योगों के विकास में सहयोग करने हेतु प्रांरभिक अवस्था में उद्योगों को संरक्षण प्रदान किया जाता है भारत में स्वतन्त्रता से पूर्व बड़े उद्योगों जैसे लोहा एवं इस्पात उद्योग एवं जूटं उद्योग आदि को संरक्षण प्रदान किया जाता था परिणामस्वरूप उद्योगों को विदेशी प्रतिस्पर्धा से सुरक्षा हो जाती थी वर्तमान में सरकार द्वारा लधु एवं कुटीर उद्योग को पर्याप्त संरक्षण प्रदान किया जा रहा है।
- भारत सरकार देशी उद्योगों के विकास हेतु प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहायता प्रदान करती है यह सहायता उद्योग को ऋण, अनुदान, पूंजी एवं अंशों के अभिगोपन आदि के रूप में दी जाती है। इस दृष्टि से केंद्रीय एवं राज्य सरकारों ने देश के विभिन्न भागों में विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं की स्थापना की है जैसे औद्योगिक वित्त निगम, औद्योगिक विकास बैंक, राजस्थान वित्त निगम आदि इसके अतिरिक्त सभी संस्थाएं वित्तीय सहायता प्रदान करने के अतिरिक्त उद्योगों के लिए बाजार अध्ययन, लाभकारी अवसरों उधमियों की खोज प्रबंधकीय शिक्षण प्रशिक्षण एवं तकनीकी मार्गदर्शन सुविधाएं प्रदान करती है।
- सरकार विशिष्ट देशी उद्योगों के विकास हेतु पृथक से समबन्धित नीति की घोषणा करती है जैसे कपडा नीति, औषधि नीति, चीनी नीति, कृषि नीति, दूरसंचार नीति आदि परिणामस्वरूप औद्योगिक क्षेत्र में निश्चितता का वातावरण ही नहीं बना रहता है अपितु इन उद्योगों के विकास विस्तार को गति मिल रही है।
- लघु उद्यमियों को उद्योगों की स्थापना एवं विकास में सहायता देने परंपरागत औद्योगिक नगरों से उद्योगों का विकेंद्रीकरण एवं कुछ स्थानों पर उद्योगों का पूर्व नियोजित विकास करने की दृष्टि से सरकार औद्योगिक बस्तियों की स्थापना करती है इसी प्रकार इन बस्तियों में उद्योगों की स्थापना एवं विकास के लिए सभी आवश्यक सुविधाऐं सस्ती दर में उपलब्ध

कराती है जैसे स्थान पानी–बिजली कच्चा माल बैकिंग एवं परिवहन सुविधा आदि।

- सरकार निर्मित व अर्द्ध निर्मित माल की क्रय नीति के अंतर्गत देशी उद्योगों के विकास में सहायता पहुंचती है उदाहरण के लिए औद्योगिक बस्तियां एवं पिछडे क्षेत्रों मे स्थापित उद्योगों की स्थापना व विकास के लिए सरकार आश्रासन देती है कि उनके द्वारा निर्मित व अर्द्धनिर्मित माल का एक निश्चित अवधि तक निर्धारित मूल्य पर वह निरंतर क्रय करती रहेगी यही उनके माल के निर्यात को भी प्रोत्साहित किया जा सकता है।
- सरकार द्वारा पिछडे क्षेत्रों में औद्योगिक इकाइयों की स्थापना को प्रोत्साहन देने कुछ महत्वपूर्ण उद्योग में पूंजी की लागत को कम करने एवं निर्यात संवर्द्धन हेतु अनेक उद्योग को अनुदान के रूप में आर्थिक सहायता प्रदान करती है।
- सरकार कर नीति के द्वारा भी उद्योगों के विकास में सहायता करती है इसके अंतर्गत सरकार ऐसे ही उद्योगों को कर संबंधी विभिन्न छूट प्रदान करती हैजिनका विकास सरकार चाहती है जैसे निर्यात उद्योग पिछडे हुए क्षेत्र में उद्योगों की स्थापना आयात को कम करने हेतु स्थापित उद्योग आवश्यक यंत्र सामग्री उद्योग आदि इसके विपरित जिन उद्योग की देश को आवश्यकता नहीं है उन पर अधिक कर लगाकर उनके उत्पादन को सीमित करने का प्रयास किया जाता है।
- सरकार ने उद्योगों के विकास हेतु सार्वजनिक निजी क्षेत्र के संयुक्त साहस एवं स्वामित्व में उद्योगों की स्थापना को बढ़ावा दिया है परिणामस्वरूप सरकारी नीतियों का कुशलता पूर्वक क्रियान्वयन होगा इसके अतिरिक्त सरकार को निजी उद्यमियों की कार्यकुशलता एंव प्रबंधकीय दक्षता का लाभ ही नहीं होगा अपितु निजी साहसियों को उद्योग स्थापित करने के लिए सरकारी पूंजी व मार्गदर्शन का लाभ भी प्राप्त होगा।

निष्कर्ष – भारत में बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिका एवं उनकी संभावित चुनौतियाँ को दृष्टिगत करते हुऐ यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि देश में तीव्र आर्थिक विकास, उद्योगों के उत्पादन में उच्च प्रौद्योगिकी एवं तकनीक के प्रयोग, शोध एवं विकास आदि के लिए विशाल विदेशी पूँजीगत साधनों का प्रवाह आधुनिक खुली अर्थव्यवस्थाओं में आवश्यक हो गया है। देश में उद्योगों की उत्पादन लागत घटाने, उनके आधुनिकरण, कुशल प्रबन्ध तथा रोजगार वृद्धि के लिए बहुराष्ट्रीय कम्पनियों/निगमों की महत्वपूर्ण भूमिका है। अतः उनके कार्यकलापों पर देश की सुरक्षा तथा आर्थिक हितों की रक्षा के लिए कुछ प्रभावी नियन्त्रण लगाये जाना उचित है। यही कारण है कि देश के आधारभूत क्षेत्रों–विद्युत उत्पादन, ऊर्जा विकास, टेलीकम्यूनिकेशन, सड़क एवं भारी इन्जीनियरिंग उद्योगों में विदेशी निजी पूँजी निवेश को प्रोत्साहन एवं अधिक सुविधाओं की नीति अपनाई जा रही है पर उन क्षेत्रों में जो देश की सुरक्षा के लिए जरूरी है अथवा जिन उपभोग उद्योगों के विकास के लिए देश में ही साहस एवं साधन उपलब्ध है उनमें बहुराष्ट्रीय निगमों के लिए छुट नहीं है। भारत की नई आर्थिक नीति 1991 में विदेशी पूँजी निवेश की नीति को काफी उदार बनाया गया है ताकि आधारभूत क्षेत्रों में प्रत्यक्ष पूँजी निवेशों को पर्याप्त प्रोत्साहन मिले। इस नीति में उन्नत प्रौद्योगिकी आधुनिकतम प्रबन्धकीय तकनीक तथा प्रत्यक्ष विदेशी पूँजी निवेश में अंश पूँजी को बढ़ावा देने का प्रयास किया गया है। विदेशी पूँजी एवं सहायता की देश को आवश्यकता है। इसलिए इसका उपयोग निश्चय ही किया जाना चाहिए, लेकिन इसको काम में लेने में कुछ दोष या हानियाँ या खतरे है जिनका उल्लेख उपर्युक्त पंक्तियों में किया गया है। अतः विदेशी पूँजी एवं सहायता का उपयोग करते समय उसके संबंध में आवश्यक सावधानी बरतनी चाहिए जिससे कि वह उचित नियन्त्रण में रहे, देश को हानि न पहुंचा सके और आर्थिक एवं राजनीतिक नीतियों पर कोई प्रभाव न डाल सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *Mathur, Vibha - Trade Liberalization and foreign Investment in India -1991 2001*
2. *Nayyar,Deepak-The ForeignTrade Sector, Planning and Industrialization in India, Oxford University, Press 1993*
3. *D'souza, V.L. -Foreign Trade and Economic Development,Dharwar:Karnatak University Press, 1966*
4. *Sinha, A.K- New Economic Policy of India Restructuring and Liberalising The Economy for 21st Century Deep. & Pnb. in Delhi.*
5. *रूद्रदत एवं के.पी.एम.सुन्दरम, भारतीय अर्थव्यवस्था, एस. चॉद एण्ड कं. नई दिल्ली*
6. *मिश्रा, पूरी – भारतीय अर्थव्यवस्था हिमालया पब्लिकेशन, नई दिल्ली*
7. *भारतीय अर्थव्यवस्था अतिरिक्तांक प्रतियोगिता दर्पण, उपकार प्रकाशन, आगरा,*
8. *आर्थिक समीक्षा – भारत सरकार, नई दिल्ली*
9. *भारत 2006 प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली*
10. *योजना – प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार नई दिल्ली।*
11. *इकोनोमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली*

पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं के समक्ष समस्याऐं एवं प्रभाव

दीपिका कुमारी
जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

पंचायती राज व्यवस्था ने ग्रामीण राजनीति में परिवर्तन किया। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम 1992 के तहत पंचायती राज एवं नगरीय निकायों में प्रत्येक स्तर पर कुल सीटों का कम से कम एक तिहाई महिलाओं के लिए आरक्षित हुए। पंचायती राज प्रणाली का मुख्य परिणाम सामाजिक परिवर्तन के रूप में सामने आया है और इसने बाल–विवाह, जुऐं की प्रवृत्ति और नशे की लत जैसी सामाजिक बुराइयों में कमी लाने में मदद की है। पंचायती राज के माध्यम से ग्राम समाज का सशक्तिकरण हुआ है। इससे महिला साक्षरता स्तर में वृद्धि हुई है और घरेलू हिंसा की घटनाओं में कमी आई है।

संकेताक्षर : *महिलाऐं, पंचायतीराज, सशक्तीकरण, समस्याऐं, प्रभाव ।*

महिलाएं देश की आबादी का एक बड़ा हिस्सा है, लेकिन उनका राजनीतिक प्रतिनिधित्व एवं भागीदारी निश्चित रूप से काफी कम है। किसी भी लोकतांत्रिक प्रणाली में समाज के आधे भाग की अल्प भूमिका से ऐसी प्रणाली के लोकतांत्रिक होने पर सवालिया निशान लगना स्वाभाविक है। भारत जैसे समाजवादी राष्ट्र में यह और भी आवश्यक है कि समाज के सभी वर्गों को विकास की प्रक्रिया में समाहित किया जाए। इस दृष्टिकोण का समर्थन वर्ष 1959 में बलवंतराय मेहता आयोग की रिपोर्ट में भी किया गया कि एक देश की महिलाओं को विकास की प्रक्रिया में भागीदार बनाए बिना कोई वास्तविक प्रगति नहीं हो सकती है। साथ ही, वर्ष 1974 में भारत में महिलाओं की स्थिति पर आयोग ने महिला पंचायतों के गठन का सुझाव दिया। इसके अतिरिक्तवर्ष 1978 में अशोक मेहता आयोग की रिपोर्ट ने भी व्यापक स्तर पर महिलाओं को पंचायतों में शामिल करने की सिफारिश की। भारतीय समाज में प्रचलित लैंगिक पूर्वाग्रह के कारण महिलाओं की सार्वजनिक कार्यों में हिस्सेदारी शून्य ही रहती है। इस पूर्वाग्रह का आधार जैविक निर्धारणवाद है, जो पृथ्वी की श्रेष्ठता पर आधारित है लेकिन, आधुनिक युग में महिलाओं द्वारा किए गए कार्यों से योग्यता व क्षमताओं में भिन्नता करना दुर्भाग्यपूर्ण है, क्योंकि इससे समाज के अद्र्धांश की क्षमताओं का पूर्ण लाभ राष्ट्र को नहीं मिल पा रहा है। साथ ही, यह भी उल्लेखनीय है कि पंचायत स्तर पर प्रोत्साहन देने से राज्य व राष्ट्रीय स्तरों पर समग्र समावेश संभव है क्योंकि पंचायत स्तर लोकतंत्र की आरंभिक पाठशाला है। गौरतलब है कि राजनीतिक भागीदारी सामाजिक–आर्थिक आत्मनिर्भरता को भी संबल प्रदान करेगी। अक्सर यह तर्क दिया जाता है कि महिलाओं का राजनीतिक नेतृत्व एक अधिक सहकारी एवं कम संघर्ष की आशंका वाली दुनिया बनाएगा। इस तर्क का आधार स्त्री चरित्र है, जिसमें सहिष्णुता, विनम्रता और शांतिप्रियता समाहित है। साथ ही, पानी की कमी, पर्यावरण संरक्षण, शिक्षा और नशे का निषेध कुछ महत्वपूर्ण मुद्दों में से है, जिन्हें महिलाओं ने अपेक्षाकृत प्रभावी रूप से निपटाया है। यह भी उल्लेखनीय है कि महिलाओं के राजनीतिक समावेशन से श्रम का लैंगिक विभाजन कमजोर होगा और महिलाएं सार्वजनिक कार्यों में सहभागी हो सकेंगी। इस प्रकार स्थानीय प्रशासन की संस्थाओं से एक तरफ महिला सशक्तीकरण होगा, वहीं समाज के सभी वर्गों की भागीदारी से राष्ट्र भी तीव्र, सतत् व समावेशी विकास के लक्ष्य को प्राप्त कर सकेगा।

वास्तविक क्रियान्वयन में चुनौतियां

73वें संविधान संशोधन अधिनियम 1992 के तहत अनुच्छेद 243(डी) और 243(टी) जोड़े गए, जिसमें क्रमशः पंचायती राज एवं नगरीय निकायों में प्रत्येक स्तर पर कुल सीटों का कम से कम एक तिहाई महिलाओं के लिए आरक्षित है। इस प्रकार महिलाओं के लिए भागीदारी का एक मंच तैयार हुआ। यह निःसंदेह महिला सशक्तीकरण की दिशा में किया गया एक ईमानदार प्रयास है। इसके संदर्भ में कहा गया कि यह प्रावधान घूंघट में छिपी आधी आबादी की पूरी दुनिया ही बदल देगा। लेकिन इसके समक्ष व्यापक चुनौतियों हैं, क्योंकि इस पहल ने महिलाओं को कलम तो थमा दी लेकिन लिखना नहीं आता है। भारतीय समाज पितृसत्तात्मकता में विश्वास रखता है, जो जैविक निर्धारणवाद पर आधारित है। जैविक निर्धारणवाद के अनुसार उच्चतर–निम्नतर का निर्धारण प्राकृतिक रूप से हो जाता है और कुछ समूह जन्म से ही दूसरों की अपेक्षा उच्चतर व बेहतर होते हैं। यह विचारधारा श्रम के लिंग आधारित विभाजन के लिए उत्तरदायी है। श्रम का लिंग आधारित विभाजन सार्वजनिक और निजी कार्यों में अंतर करता है। साथ ही, सार्वजनिक कार्यों के लिए पुरुषों को और निजी कार्यों (घरेलू कार्यों) के लिए महिलाओं को उत्तरदायी बनाता है। इन निजी कार्यों के कारण महिलाऐं सार्वजनिक क्षेत्र में भागीदारी नहीं हो पाती हैं। इसके अतिरिक्तभारत की ऐतिहासिक सामंतवादी मानसिकता भी उपाश्रित वर्गों की सहभागिता में बाधक है।

भारत में परंपरागत रूप से पर्दाप्रथा प्रचलित रही है, जो ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी बरकरार है। हालांकि आरक्षण प्रणाली के कारण महिलाऐं चुनावों में उम्मीदवारी जरूर करती हैं, लेकिन प्रायः यह महिला उम्मीदवार न वोट मांगती है और न ही राजनीतिक मंचों पर नेतृत्व के लिए सामने आती है क्योंकि यह सार्वजनिक कार्य है, जिसका जिम्मा परंपराओं ने पुरुषों को सौंपा है। साथ ही, यह भी पुरुष ही निर्धारित करते हैं कि परिवार की महिलाऐं किसको वोट देंगी। इसके अतिरिक्त निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों की निर्णय लेने की शक्ति का प्रयोग भी पुरुषों द्वारा ही किया जाता है। इस प्रकार सरपंचपति की अवधारणा के कारण निर्वाचित महिला प्रतिनिधि एक हस्ताक्षर मशीन में रूपांतरित हो जाती है। दूसरी तरफ, अशिक्षा, जागरूकता एवं आर्थिक स्थिति का न्यून स्तर भी महिलाओं के समावेशन में बाधक है। गौरतलब है कि जनसहभागिता की इमारत का वजूद जागरूकता रूपी नींव पर टिका होता है। लेकिन अब सवाल यह उठता है कि किस प्रकार की जागरूकता वास्तविक जन भागीदारी को प्रेरित करेगी? इस संबंध में गांधीदर्शन वास्तविकता के ज्यादा निकट प्रतीत होता है कि हाशिऐ पर छूटे व्यक्तियों से राजनीतिक जागरूकता की उम्मीद करने से पूर्व गरीब के पेट के लिए रोटी की पूर्ति करना बुनियादी शर्त है। इस प्रकार, राजनीतिक जागरूकता को आर्थिक जागरूकता गति प्रदान करती है। दूसरी तरफ, सामाजिक–सांस्कृतिक जागरूकता भी इस संबंध में अपना एक अलग महत्व रखती है।

यह एक तरफ राजनीति में समावेशीकरण को बढ़ावा देती है, वही वर्ग और वर्ण की विभेदकारी व्यवस्था का निषेध भी करती है। अतः महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी और सशक्तीकरण के मुद्दे को मात्र राजनीतिक अधिकारों तक सीमित नहीं किया जा सकता है। विगत वर्षों में, महिला सशक्तीकरण की प्रक्रिया से पंचायतों में महिलाएं प्रभावी भूमिका निभा रही हैं। वर्तमान सृजनशील समाज में नारीवादियों द्वारा आत्मनिर्णय एवं स्वशासन के लिए सामाजिक रूपांतरण की मांग प्रबल हुई है। इसकी अभिव्यक्तिभारतीय संसद में 110 वें व 112वें संविधान संशोधन विधेयक, 2009 के रूप में हुई, जिनका संबंध क्रमशः पंचायतीराज और शहरी निकायों के सभी स्तरों में महिलाओं के लिए निर्धारित 33 प्रतिशत सीटों को बढ़ाकर 50 प्रतिशत करने से था। हालांकि दोनों विधेयक 15वीं लोकसभा विघटन के साथ समाप्त हो गए। इसके बावजूद बिहार, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, राजस्थान और केरल जैसे राज्यों ने स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं में महिलाओं के 50 प्रतिशत प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित किया है, जो महिला सशक्तीकरण की दिशा में अनुकरणीय पहल है। हालांकि पंचायतों में महिलाओं की व्यावहारिक भूमिका में परिवर्तन स्पष्टतः परिलक्षित होता है, जिसकी अभिव्यक्ति सभी स्तर की पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की 36.84 प्रतिशत भूमिका के रूप में परिलक्षित होती है। इसमें सरकार सकारात्मक परिवर्तन के लिए निरंतर प्रयासरत है, लेकिन मात्र वैधानिक प्रयास पर्याप्त नहीं है।

पंचायती राज में महिला भागीदारी के प्रभाव

पंचायती राज प्रणाली का मुख्य परिणाम सामाजिक परिवर्तन के रूप में सामने आया है और इसने बाल–विवाह, जुऐं की प्रवृत्ति और नशे की लत जैसी सामाजिक बुराइयों में कमी लाने में मदद की है। पंचायती राज के माध्यम से ग्राम समाज का सशक्तिकरण हुआ है। इससे महिला साक्षरता स्तर में वृद्धि हुई है और घरेलू हिंसा की घटनाओं में कमी आई है। अधिकांश पंचायतों की प्राथमिकता रही है कि ज्यादा से ज्यादा संख्या में बच्चे और विशेष रूप से बालिकाऐं स्कूल जाऐं। पंचायत के निर्वाचित प्रतिनिधियों ने जिन प्रमुख विकासात्मक मुद्दों को आगे बढ़ाया है उनमें शुद्ध पेयजल की आपूर्ति, स्थानीय सड़क

निर्माण और स्वच्छता जैसे विषय शामिल हैं। बड़ी संख्या में निर्वाचित महिला पंचायत प्रतिनिधि, महिलाओं और बच्चों तथा साफ–सफाई से जुड़े मुद्दों को उठा रही हैं। इतना ही नहीं, वे सड़कों पर रोशनी की व्यवस्था और बस शेल्टरों के निर्माण जैसे कार्यों के लिए भी गंभीर प्रयास कर रही हैं। विकासात्मक पहलों में महिलाओं की भागीदारी, पंचायती राज प्रणाली का अभिन्न अंग बन चुकी है। हालांकि, स्थानीय शासन प्रणाली में महिलाओं को अभी कई चुनौतियों से निपटना पड़ रहा है, लेकिन ग्रामीण महिलाओं में संवैधानिक प्रावधानों, सरकारी नीतियों, सामाजिक गतिविधियों और अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता बढ़ी है और अब वे राजनीतिक सत्ता और निर्णय प्रक्रिया में भागीदारी कर रही हैं। पंचायती राज संस्थाओं में उनका योगदान बड़े पैमाने पर बढ़ा है। अब वे पंचायती राज संस्थाओं में अपनी भागीदारी के माध्यम से गांव बढ़ेगा तो देश बढ़ेगा का नारा का बुलन्द करते हुए ग्रामीण विकास के क्षेत्र में परचम लहरा रही हैं। गांवों को खुले में शौच मुक्त बनाने में पंचायती राज संस्थाओं और विशेष रूप से महिला सरपंचों की भूमिका अग्रणी रही है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *जी.एस. मेहता, 'पंचायती राज व्यवस्था : महिलाओं की उभरती भूमिका' व्यवहारिक शोध एवं विकास संस्थान, विकास परिचर्चा, जुलाई 17,1997.*
2. *प्रशांत पाण्डे, 'पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी', योजना, जुलाई 1999, पृ. 19.*
3. *राजमणी त्रिपाठी एवं सुनीता सिंह, 'पंचायतों के नेतृत्व में कमजोर वर्गों की जागरूकता', कुरूक्षेत्र, फरवरी, 2000, पृ. 10–14.*
4. *सदानंद सिंह, 'भारतीय राजनीति में महिलाओं का योगदान', विधायनिकी, मध्यप्रदेश विधानसभा सचिवालय की त्रैमासिक शोध पत्रिका, जून 2001.*
5. *सुशीला कौशिक, 'भारत में पंचायती राज में महिलाओं की सहभागिता', राष्ट्रीय महिला आयोग, 2001.*
6. *लक्ष्मी रानी, 'पंचायती राज और महिलाऐं', 2001.*
7. *भारत डोगरा, 'सार्थक है महिलाओं का आरक्षण' कुरूक्षेत्र, जुलाई, 2016, पृ. 11.*
8. *सुब्रहमण्यम अनन्था लक्ष्मी, 'पॉलिटिक्स एम्पॉवरमेंट ऑफ वुमैन' विवास पनोरमा प्रकाशन, दिल्ली, 2003.*
9. *नरेन्द्र कुमार सिंघी, 'नारी सशक्तीकरण', विमर्श एवं यथार्थ, संपादक आशा कौशिक, पृ. 3, 2004.*
10. *पंचायती राज संस्थान, भारत सरकार।*

गुरूपरम्परा और भक्ति का व्यावहारिक रूप

वीणा जाजड़ा
वरिष्ठ अध्यापक, संत रविदास माध्यमिक विद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

भारतीय संस्कृति में गुरु का स्थान सर्वोच्च माना गया हैं। विभिन्न पंथों में गुरू–परम्परा निरन्तर प्रवाहमान रही हैं। गुरु का रूप सन्त अर्थात् शान्त, सद्वृत्तियों को जो अपने में समेटे हुए है, से लिया जाता है। वर्तमान में इस पवित्र पद को कुछ अप्राकृतिक घटकों ने कलुशित करने की कोशिश की है। किन्तु इससे इस पद की गरिमा का अन्त नही होता है। गृहस्थी के समक्ष जब इस प्रकार के प्रश्न उभरते हैं तो उनका उत्तर यही हो सकता है कि – हम परिवार में रहते हुए बिना गुरू बनायें भी ईश्वर की भक्तिकर सकते हैं। हमारा मार्ग–दर्शन करने वाला गुरू हमें विभिन्न रूपों में मिल सकता है।

संकेताक्षरः *जनकल्याण, आत्म कल्याण, आत्मदर्शी, स्वानुभूति, धर्मावलम्बी, जिज्ञासु सम्बल, हेतु, ह्रास, ब्राह्य आडम्बर, सम्प्रेषित।*

भारत वर्ष की संस्कृति में सिद्ध–पुरुषों ने जनकल्याण एवं आत्मकल्याण हेतु तप–साधना से परमात्मा के प्रत्यक्ष दर्शन किये है। ये आत्मदर्शी एवं प्रत्यक्षदृष्टा अध्यात्म के तत्त्ववेता हैं। अपनी स्वानुभूति को जन जन तक सम्प्रेषित करना इनके जीवन का परम ध्येय हैं। किन्तु स्वानुभूति एवं आत्मदर्शन के लिए समर्थ सदगुरु के आशीष की महत्ती आवश्यकता है। जिज्ञासु हृदय को भय एवं आडम्बरों से मुक्त कर आध्यात्मिक पथ की और समर्थ गुरु ही ले जा सकता है। ज्ञान गुरु है। आजकल भारत में सांसारिक अथवा पारमार्थिक ज्ञान देने वाले व्यक्ति को गुरु कहा जाता है। इनकी पांच श्रेणिया हैं। १.शिक्षक – जो स्कूलों में शिक्षा देता है। २.आचार्य – जो अपने आचरण से शिक्षा देता है। ३.कुलगुरु – जो वर्णाश्रम धर्म के अनुसार संस्कार ज्ञान देता है। ४.दीक्षा गुरु – जो परम्परा का अनुसरण करते हुए अपने गुरु के आदेश पर आध्यात्मिक उन्नति के लिए मंत्र दीक्षा देते हैं। ५. गुरु –वास्तव में यह शब्द समर्थ गुरु अथवा परम गुरु के लिए आया है।

मनुस्मृति में गुरु की परिभाषा निम्नांकित हैः

निषेकादीनि कार्माणि यरू करोति यथाविधि।
सम्भावयति चान्नेन स विप्रो गुरुरुच्यते।

जो विप्र निषक आदि संस्कारों को यथा विधि करता है और अन्न से पोषण करता है वह गुरु कहलाता है। इस परिभाषा से पिता प्रथम गुरु है, तत्पश्चात् पुरोहित, शिक्षक आदि। मंत्रदाता को भी गुरु कहते हैं।

गुरु का अर्थ है भारी। ज्ञान सभी से भारी है अर्थात महान है अतः पूर्ण ज्ञानी चेतन्य रूप पुरुष के लिए गुरु शब्द प्रयुक्तहोता है, उसकी ही स्तुति की जाती है। गुरु–शिष्य परम्परा आध्यात्मिक प्रज्ञा का नई पीढ़ियों तक पहुंचाने का सोपान। भारतीय संस्कृति में गुरु–शिष्य परम्परा के अन्तर्गत गुरु (शिक्षक) अपने शिष्य को शिक्षा देता है या कोई विद्या सिखाता है। बाद में वही शिष्य गुरु के रूप में दूसरों को शिक्षा देता है। यही क्रम चलता जाता है। यह परम्परा सनातन धर्म की सभी धाराओं में मिलती है। गुरु–शिष्य की यह परम्परा ज्ञान के किसी भी क्षेत्र में हो सकती है, जैसे– अध्यात्म, संगीत, कला, वेदाध्ययन, वास्तु आदि। भारतीय संस्कृति में गुरु का बहुत महत्व है। कहीं गुरु को ब्रह्मा–विष्णु–महेश कहा गया है तो कहीं गोविन्द।

सिख शब्द संस्कृत के शिष्य से व्युत्पन्न है।हमारी आध्यात्मिक यात्रा में भी मार्गदर्शक की आवश्यकता होती है । किसी भी क्षेत्र के मार्गदर्शक को उस क्षेत्र का प्रभुत्व होना आवश्यक है । अध्यात्म शास्त्र के अनुसार जिस व्यक्ति का अध्यात्म शास्त्र में अधिकार (प्रभुत्व) होता है, उसे गुरु कहते हैं । इस हेतु गुरु का होना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है ।

प्राचीन काल में गुरु और शिष्य के संबंधों का आधार था गुरु का ज्ञान, मौलिकता और नैतिक बल, उनका शिष्यों के प्रति स्नेह भाव, तथा ज्ञान बांटने का निःस्वार्थ भाव शिष्य में होती थी, गुरु के प्रति पूर्ण श्रद्धा, गुरु की क्षमता में पूर्ण विश्वास तथा गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण एवं आज्ञाकारिता अनुशासन शिष्य का सबसे महत्वपूर्ण गुण माना गया है. गुरू अपना सम्बल प्रदान कर शिष्य की साधना को समृद्धि एवं उन्नतशील बनाता है। गुरु और शिष्य के बीच केवल शाब्दिक ज्ञान का ही आदान प्रदान नहीं होता था बल्कि गुरु अपने शिष्य के संरक्षक के रूप में भी कार्य करता था। उसका उद्देश्य रहता था कि गुरु उसका कभी अहित सोच भी नहीं सकते. यही विश्वास गुरु के प्रति उसकी अगाध श्रद्धा और समर्पण का कारण रहा है।गुरु–शिष्य परम्परा का आधार सांसारिक ज्ञान से शुरू होता है,परन्तु इसका चरमोत्कर्ष आध्यात्मिक शाश्वत आनंद की प्राप्ति है,जिसे ईश्वर –प्राप्ति व मोक्ष प्राप्ति भी कहा जाता है।गुरु हमें अपने आध्यात्मिक स्तर के अनुसार अर्थात ज्ञान ग्रहण करने की हमारी क्षमता के अनुसार (चाहे वह हमें ज्ञात हो या ना हो) मार्गदर्शन करते हैं और हममें लगन, समर्पण भाव, जिज्ञासा, दृढता, अनुकंपा (दया) जैसे गुण (कौशल) विकसित करने में जीवन भर सहायता करते हैं । ये सभी गुण विशेष (कौशल) अच्छा साधक बनने के लिए और हमारी आध्यात्मिक यात्रा में टिके रहनेकी दृष्टि से मूलभूत और महत्त्वपूर्ण हैं। जिनमें आध्यात्मिक उन्नति की तीव्र लगन है, उनके लिए गुरुतत्त्व अधिक कार्यरत होता है और उन्हें अप्रकट रूप में उनकी आवश्यकतानुसार मार्गदर्शन करता है ।यह गुरु का महत्त्व है।सन्त कबीर ने गुरू की महिमा का बखान इस प्रकार किया हैं

सात समन्द की मसि करू, लेखनी सब बनाराई।
सब धरती कागद करूँ, गुरू गुन लिखान जाई।।

आधुनिक युग में गुरू–परम्परा का रूप क्षीण होता जा रहा है। विभिन्न धर्मावलम्बी अपने–अपने धर्म को श्रेष्ठ मानते है जिससे मुख्य मानवीय धर्म का ही ह्रास होता जा रहा है। ब्राह्य आडम्बर व पाखण्डों ने धर्म की हानि की है वर्तमान में गुरू परम्परा का रूप विभिन्न पंथ के सन्तों में देखने को मिलता हैं। जिसमें रामस्नेही सन्तों का मुख्य स्थान है। रामस्नेही सन्तों की चारों पीठों में गुरू परम्परा निरन्तर प्रवाहमान है।

प्रायः सभी युगों में धार्मिक सम्प्रदायों के अन्तर्गत गुरू के रूप की व्याख्या भिन्न–भिन्न रूपों से की हुई है कही वह योग साधना क्रियाओं में बड़ा निष्णांत है और कही वह भक्ति की वैष्णव धारा से पूर्ण है।

भारतीय उपासना पति में ही नहीं अपितु भारतेत्र धर्मो के अन्तर्गत भी गुरू का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। बौद्ध सम्प्रदाय में बुद्ध, जैनियों में जिन , इस्लाम के पीर पैगम्बर और इसाई धर्म के फादर पाल वही महत्त्व रखते है जो महत्त्व हिन्दू धर्म के अन्तर्गत गुरू को प्राप्त है।

चिरकाल से ही धर्म एवं शिक्षा दोनों के क्षेत्रों में भारतीय समाज में गुरू का स्थान उच्च रहा है। भक्ति की प्राप्ति के लिए हमारें ऋषि मुनियों व सन्तों ने ईश्वर से बढ़कर गुरू को बताया है। रामस्नेही श्री सुखरामदास ने गुरू महिमा का वर्णन इस प्रकार किया है।

जन सुखिया गुरूदेवजी, हर सूं अधिक बताव।
प्राण पुरुष से अधिक है, बोलत है घट मांय।।

स्वामी रामचरण के विचार भी इसी प्रकार हैं –

सत गुरू ऐसा कीजिये, करे संभाषण सत्य।
अनित्य माहि मन कादि के धर्म चढ़ावे नित्य।।

संत दादूरयाल ने गुरू को अपना सर्वस्व स्वीकार करते हुए कहा है –

तूं ही तूं गुरूदेव हमारा।
सब कुछ मेरे नांव तुम्हारा।।
तुम ही पूजा तुम ही सेवा।
तुम ही पाती तुम ही देवा।।

गुरू नानक ने कहा है –

'एक ओंकार सतगुरू प्रसादि।'

अर्थात् एक ओंकार ही सत्य है, किन्तु वह सद्‌गुरू की कृपा का प्रसाद है।

गुरू का रूप योगी परमार्थ – पथ में निरन्तर सजग और भौतिक एषणाओं से सर्वथा निःस्पृह रहा है। धार्मिक गुरु के प्रति भक्ति की परम्परा भारत में अति प्राचीन है। प्राचीन काल में गुरु की आज्ञा का पालन करना शिष्य का परम धर्म होता था। प्राचीन भारत की शिक्षा प्रणाली में वेदों का ज्ञान व्यक्तिगत रूप से गुरुओं द्वारा मौखिक शिक्षा के माध्यम से शिष्यों को दिया जाता था। गुरु शिष्य का दूसरा पिता माना जाता था एवं प्राकृतिक पिता से भी अधिक आदरणीय था। आधुनिक काल में गुरुसम्मान और भी अधिक बताया गया है।

किन्तु कालांतर में हमारी सांस्कृतिक परम्पराओं का ह्रास हुआ है। हमारी परम्पराएँ, मान्यताएँ टूटती जा रही है। कुछ

अप्राकृतिक घटकों के कारण हमारे विश्वास में कमी आ रही है। किन्तु हमारे देश में धर्म व अध्यात्म की जड़े बहुत गहरी है। मनुष्य जीवन पर पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव ने हमें खोंखला करने की कोशिश की है, मगर भारतीय संस्कृति की जड़े पूर्ण रूपेण अध्यात्मक में डूबी हूई है।

वर्तमान में साधारण मनुष्य के मानदण्डों को ही नहीं अपितु सत् पुरूष, सन्त, साधु के मानदण्डों को भी परखा जाता है। साहित्य का क्षेत्र विस्तृत है जिसमें हमारे सन्तों की अनुभव वाणियां भी अपना वैशिष्ट रखती है।

सन्तों के तप–आशीष व उनके सत् वचनों से हमारी संस्कृति जीवत है। साधारण मनुष्य जीवन की आपाधापी व उदरपूर्ति में ही अपना जीवन झोंक देता है। सन्तों के समय–समय पर मार्ग दर्शन द्वारा ही मनुष्य का कल्याण होता है गृहस्थ में रहकर भी ईश्वर में उसका पूर्ण समर्पण रहता है। सन्त दरिया साहब ने कहा हैं –

हाथ काम मुख राम है, हिरदे साँची प्रीत।
दरिया गृहस्थी साध की, याही उत्तमरीत।।

साधाना का मार्ग एक विचित्रता लिये हुए है। किन साधनों द्वारा प्रभु का आशीष मिले, मनुष्य के सामने यह भी एक जटिल प्रश्न है। किन्तु सन्तों द्वारा बताया गया साधना का सरल मार्ग हमें इस पथ पर आगे बढ़ाता है जैसे`सन्त सुखरामदासजी की 'अनुभववाणी' में गुरू किसी व्यक्ति विशेष की नही मान कर व्यावाहारि जीवन में जन्म से मृत्युपर्यन्त के घटकों को माना है जो हमारी साधना के मार्ग को सरल बनाता है। भारतवर्ष में विख्यात सन्त रामसुखदासजी महाराज ने गुरू का जीवन में बहुत महत्त्व बताया है किन्तु साधारण गृहस्थी के लिए भी साधना मांगी उसके कर्मो को बताया है तथा धर्म की रक्षा व कर्तव्य पालन को प्रमुख माना है। सत्यार्थ प्रकाश में दयानन्द सरस्वती ने गुरू के लिए निषेध तत्त्वों का वर्णन किया है वैदिक संस्- ति के चार आश्रमों में गृहस्थ आश्रम सभी आश्रमों की नींव है क्योंकि ब्रह्मचर्य व्यक्ति का पालन–पोषण भी घर में ही होता है। सन्तों ने भी कहा है –

नाहक त्याग किये तुम घर को।
तन को बन क्यू लाया।।

श्रीमद्भगवद् गीता में भी कहा गया है –

''आत्मा के आधिपत्य में आचरण, तत्त्व के अर्थरूप मुझ परमात्मा का प्रत्यक्ष दर्शन ज्ञान है और इसके अतिरिक्तजो कुछ भी है, अज्ञान है।''

निष्कर्षतः हम कह सकते है कि सन्तों की आशीष व मनुष्य के कर्त्तव्य कर्म, ईश्वर की व्यावहारिक पूजा तथा आत्मा में परमात्मा के दर्शन ईश्वर प्राप्ति संभव है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1 *कबीर वचनावली पृ.सं. 3*

2 *प्रेमनारायण शुक्त सन्त साहित्य पृ.सं. 176*

3 *डॉ. भोलानाथ तिवारी – हिन्दी नीति काव्य पृ.सं. 136*

4 *गुरू महिमा को अंग पृ.सं. 10*

5 *स्वर्गीय दरियावजी महाराज की अनुभव गिरा पृ.सं. 67*

6 *श्रीमद् भगवद् गीता (13/11)*

मनुष्य जीवन में योग एवं आयुर्वेद की महत्ता

डॉ. सुमन यादव
असिस्टेंट प्रोफेसर, एस.एस. जैन सुबोध पी.जी. कॉलेज, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

योग और आयुर्वेद दोनों ही अत्यन्त प्राचीन विधाएं हैं। दोनों का ही विकास और प्रयोग समान उद्देश्य के लिए एक ही देश, काल में हुआ। विद्वानों की मान्यता है कि महर्षि पतजंलि ने अलग-अलग नामों से मानव कल्याण के लिए तीन ग्रन्थों की रचना की। जिसके द्वारा मनुष्य मात्र का कल्याण हो सके(उन्होंने चित की शुद्धि के लिए 'पातंजलि योगसूत्र) वाणी की शुद्धि के लिए 'व्याकरण महाभाष्य' तथा शरीर की शुद्धि के लिए 'चरक संहिता' का निर्माण किया इससे योग एवं आयुर्वेद का उद्देश्य समान है। आयुर्वेद जहाँ एक ओर त्रिसूत्री शास्त्र के रूप में विकसित शरीररेन्द्रियसत्वात्मसंयोग रूप जीवन के स्वास्थ्य-परिरक्षण तथा व्याधि के निदान, लिंग एवं चिकित्सा का दायित्व लेकर चलता है। वहीं योग सिद्धान्ततः सत्व तथा चेतना का विज्ञान है, यह तत्व ज्ञान तथा तत्वानुभूति के अतिरिक्त आत्यन्तिक दुःख निवृत्ति तथा मोक्ष प्रवर्तक विद्या तथा विधि है। आयुर्वेद के आदि ग्रन्थ चरक संहिता में योग विद्या के समस्त सिद्धान्त सारांश रूप में पहले ही विद्यमान है। चरक-संहिता के नैष्ठिकी चिकित्सा के अन्तर्गत तत्व ज्ञान एवं तत्वानुभूति मूल में योग विद्या एवं सत्व बुद्धि का वर्णन प्राप्त होता है। इसी सारांश रूप योग विद्या का वर्णन पतंजलि कृत योग-सूत्र में विस्तार पूर्वक प्राप्त होता है। योग और आयुर्वेद दोनों ही समान शैक्षणिक पद्धतियां है। दोनों में औषधि मन्त्र, जप और समाधि आदि पर मुख्य रूप से बल दिया गया है। योग का मूल उद्देश्य मनुष्य को मोक्ष प्राप्ति कराना रहा है जो जीवन के विज्ञान के विज्ञान अर्थात् आयुर्वेद का एक अंश या पक्ष मात्र है। आयुर्वेद सम्पूर्ण जीवन का मार्गदर्शक शास्त्र है एवं मोक्ष प्राप्ति आयुर्वेद का अन्तिम लक्ष्य है जो आध्यात्मिक विकास से सम्बन्धित है। आध्यात्मिक विकास के अतिरिक्त आयुर्वेद शारीरिक एवं मानसिक विकास का भी उपदेश प्रदान करता है।

संकेताक्षरः *भगवद्गीता, आत्मा, मन, महर्षि पंतजलि, चरक संहिता, स्वास्थ्य, योग विधा, शरीर, चित्त, एकाग्रता, मोक्ष, पुरुषार्थ।*

भारत के मनीषियों, ऋषियों का प्रकृति के सानिध्य में रहकर जीवन के गूढ़ रहस्यों पर हजारों वर्षों का चिन्तन योग एवं आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति है। मानव शरीर को प्राकृतिक रूप से स्वस्थ रखने के लिए उन मनीषियों द्वारा योग एवं प्राकृतिक सर्व सुलभ वनस्पतियों से आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति का आविष्कार किया गया था। योग ही एक ऐसा माध्यम है जिससे आनन्द और सुख की प्राप्ति होती है व साधक का आचार-विचार परिष्कृत हो जाता है। वैसे तो इस मायावी संसार में व्यक्ति को केवल भौतिक सुख के लिए ही दौड़-धूप रहती है, पर विवेकी जन इस नश्वर संसार से उपर उठने के उपक्रम में रहना चाहते हैं। हमारे तत्वदर्शी महर्षियों ने बताया कि व्यक्ति का समाष्टि से संयोग होने पर ही हम योग-साधना में प्रवेश कर सकते हैं। शरीर के लिए योग के आसन और प्राणायाम शरीर को स्वस्थ रखने में सहायक सिद्ध हुए है। परन्तु मन को शांति प्रदानकरने के लिए आवश्यक है कि हम योग के प्राथमिक चरणों को पूरा करें।

हमारे प्राचीन साहित्य में योग पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। भगवद्गीता में ज्ञान, कर्म और भक्ति को मोक्ष प्राप्त करने का साधन बताया गया है। भगवद्गीता सभी उपनिषदों, पुराणों एवं दर्शनशास्त्रों का सार है। श्री कृष्ण ने अर्जुन के माध्यम से समाज को योगशास्त्र का उपदेश देते हुए इसे (योग) स्वयं के द्वारा प्रतिष्ठित बताया है:–

''लोकेऽस्मिन्द्विविद्या निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानध।
ज्ञानयोगेनसांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्।।''
भ.गी. 3/3

मनुष्य किस प्रकार योग को अपनाकर शाश्वत सुख को प्राप्त कर सकता है। जीव क्या है एवं परमात्मा क्या है ? आदि सभी रहस्यपूर्ण बातें परमयोगी श्रीकृष्ण ने अपने श्रीमुख से समाज कल्याण हेतु भगवद्गीता में स्पष्ट की है तथा जो लोग योग सिद्धान्तों की मनमाने ढ़ंग से अवहेलना करे है उनका क्या होता है, इसका भी उल्लेख गीता में किया है।

आत्मा, अहं, बुद्धि, योग ये चार शब्द एवं इनके प्रकार विकार गीता में अनेक प्रकार से बताये गये हैं।

- भगवद्गीता में बताये कर्मानुसार कर्म करने वाला योगी कर्म बन्धन से सर्वथा मुक्त हो जाता है तथा योगी ईश्वर को, परमशान्ति को प्राप्त हो जाता है। यही कर्मयोग का स्वरूप है। इस योग को निष्काम कर्मयोग, समत्व योग, अनासक्तियोग आदि नामों से वर्णित किया गया है।
- भगवद्गीता में कहा है कि साधक अपने योगाभ्यास के लिए किसी एकान्त स्थान का चयन करें। वहां वह अकेला बैठकर सब प्रकार की आशाओं और कामनाओं को त्यागकर मन तथा इन्द्रियों पर पूरा नियन्त्रण करके योगाभ्यास करें। आसन का भी उल्लेख है – अभ्यासकाल में साधक का मेरूदण्ड बिल्कुल सीधा होना चाहिए।
- मीमांसा दर्शन भी धर्म या वेद पर विचार करने वाला शास्त्र है। इस दर्शन में कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड पर विचार किया गया है। विशेष रूप से कर्मकाण्ड पर विचार किया गया है। कर्मकाण्ड में आत्मा की अमरता, कर्मो का फल, अदृष्ट, पुनर्जन्म तथा वेद और जगत् की सत्यता के सिद्धान्त आते हैं। ये सिद्धान्त ''योग–दर्शन'' में भी उपलब्ध होते हैं।

मीमांसा दार्शनिकों ने सुख दो प्रकार का बताया है – 1. सांसारिक, 2. पारमार्थिक। पारमार्थिक सुख अधिक स्थायी है और सांसारिक वस्तुओं पर निर्भर नहीं है। पारमार्थिक सुख में दुःख का अंश नहीं होता, यहसंकल्प से उत्पन्न होता है। सांसारिक जीव इसका अनुभव नहीं कर सकते हैं। इसके लिए अज्ञान से मुक्ति आवश्यक है।

सांख्य दर्शन के अनुसार राग से दूर ले जाने वाला ध्यान है। वृत्तियों के निरोध से ध्यान की सिद्धान्त होती है। धारणा, आसन तथा अन्य स्वकीर्य कर्मो अर्थात् अन्य साधनों से वृत्ति निरोध (ध्यान) की सिद्धि होती है। वृत्ति निरोध में प्राणायाम की उपयोगिता है। स्थिरतापूर्वक सुख का अनुभव करना आसन है।

योग और आयुर्वेद दोनों ही अत्यन्त प्राचीन विधाएं हैं। दोनों का ही विकास और प्रयोग समान उद्देश्य के लिए एक ही देश, काल में हुआ। विद्वानों की मान्यता है कि महर्षि पतजंलि ने अलग–अलग नामों से मानव कल्याण के लिए तीन ग्रन्थों की रचना की। जिसके द्वारा मनुष्य मात्र का कल्याण हो सके उन्होंने चित की शुद्धि के लिए 'पातंजलि' योगसूत्र (वाणी की शद्धि के लिए 'व्याकरण महाभाष्य' तथा शरीर की शुद्धि) के लिए 'चरक संहिता' का निर्माण किया इससे योग एवं आयुर्वेद का उद्देश्य समान है। आयुर्वेद तथा योग एक समान प्राचीन मानव हितकारी विद्याएं है। वस्तुतः योग आयुर्वेद का ही अंग है। आयुर्वेद आयु अर्थात् जीवन का विज्ञान है। जिनमें शरीर+इन्द्रिय+सत्व तथा आत्मा के संयोग को आयु कहा गया है। आयुर्वेद जहाँ एक ओर त्रिसूत्री शास्त्र के रूप में विकसित शरीरेन्द्रियसत्वात्मसंयोग रूप जीवन के स्वास्थ्य–परिरक्षण तथा व्याधि के निदान, लिंग एवं चिकित्सा का दायित्व लेकर चलता है। वहीं योग सिद्धान्ततः सत्व तथा चेतना का विज्ञान है, यह तत्व ज्ञान तथा तत्वानुभूति के अतिरिक्त आत्यन्तिक दुःख निवृत्ति तथा मोक्ष प्रवर्तक विद्या तथा विधि है। स्वास्थ्य के क्षेत्र में योग प्रथमतः मानस स्वास्थ्य तथा चैतन्य विकास से सम्बन्धित है। परन्तु यह वैशिष्ट्य होने पर भी योग आयु के विज्ञान आयुर्वेद का ही एक विशिष्ट अंग है। सम्भवतः आयुर्वेद के ही मानव विज्ञान तथा चेतनाशास्त्र को विशेष रूप से विकसित करने के लिए योग शास्त्र का पृथक से विकास किया गया। चरकसंहिता–सूत्रस्थान के प्रथम श्लोक की व्याख्या करते समय टीकाकारों की निम्न उक्ति ध्यान देने योग्य है–

पातंजलमहाभाष्यचरकप्रतिसंस्कृतैः।

मनोवाक्कायदोषाणां हर्त्रेहिपतये नमः।च.सू. 9/9 पर चक्रपाणि टीका

आयुर्वेद के आदि ग्रन्थ चरक संहिता में योग विद्या के समस्त सिद्धान्त सारांश रूप में पहले ही विद्यमान है। चरक–संहिता के नैष्ठिकी चिकित्सा के अन्तर्गत तत्व ज्ञान एवं तत्वानुभूति मूल में योग विद्या एवं सत्व बुद्धि का वर्णन

प्राप्त होता है। इसी सारांश रूप योग विद्या का वर्णन पतंजल कृत योग–सूत्र में विस्तार पूर्वक प्राप्त होता है।

श्री अत्रिदेचव विद्यालंकार के अनुसार यायावर प्रजाति के कृष्ण यजुर्वेद की चरक शाखा के लोग आयुर्वेद एवं योग में प्रवीण होते थे। ये सदैव भ्रमणशील प्रकृति के हुआ करते थे, इसलिए इन्हें चरक कहा जाता है।

आयुर्वेद एवं योग के मूल सिद्धान्त एवं शरीर शोधक सिद्धान्त आपस में अनन्य समानता रखते हैं। आयुर्वेद की प्रमुख शरीर शोधक किया पंचकर्म है जिसके अन्तर्गत आचार्य चरक ने वमन, विरेचन, अनुवासन, अस्थापन एवं शिरोविरेचन को सम्मिलित किया है एवं योगसूत्र में महर्षि पतंजलि ने षट्कर्मों का वर्णन शरीर शोधन के रूप में किया है, जो क्रमशः धौति, वस्ति, नेति, नौली, त्राटक, कपालभाती है। इनमें एवं आयुर्वेदोक्त पंचकर्मो में अत्यधिक समानता है। यह पट्कर्म आयुर्वेद में भी पूर्ण किन्तु सूक्ष्म रूप में विद्यमान है। इनका आयुर्वेद में विकास हुआ और बाद में इन्हें हठ योग में सम्मिलित कर लिया। आयुर्वेद में योग का लक्षण स्वरूप और एश्वर्य का निरूपण करते हुए कहा है कि–

''आत्मा इंन्द्रिय मन और अर्थ (इन्द्रियों के विषय) के सन्निकर्षि से सुख और दुःख की प्रकृति होती है। आसक्तिपूर्वक किए जाने वाले कर्मो का परित्याग कर देने से जिस समय साधक का मन आत्मा में लगकर स्थिर हो जाता है, उस समय सुख और दुःख दोनों ही निवृत्त हो जाते हैं, तथा शरीरयुक्त होने पर भी साधकों में बशित्व आ जाता है। योगविद् महर्षि उसी को योग कहते हैं। महर्षि चरक ने निम्न कथन से स्पष्ट किया है कि–

आत्मेन्द्रियमनोर्थानां सन्निकषति् प्रवर्तते।
सुखदुःखमनारम्भादात्मस्थे मनसिस्थिरे।।
निवर्तते तदुभयं वशित्वं चोपजायते।
सशरीरस्य योगज्ञास्तं योगमृषयो विदुः।।
चरकसंहिता शास्त्र 1/138–139

वैशेषिक दर्शन में भी ऐसा भाव प्रकट करते हुए कहा है कि– ''आत्मा इन्द्रिय मन और अर्थ है सन्किर्ष से सुख और दुःख होते हैं। (विषयों की ओर से उदासीन हुए मन के द्वारा) कर्मो का आरम्भ न किये जाने पर जब मन आत्मा में सुस्थिर हो जाता है, उस समय शरीर के दुःख का अभाव हो जाता है। इसी को योग कहते हैं–

आत्मेन्द्रियमनोर्थन्निकर्षात् सुखदुःखे।

तदनारम्भ्य आत्मस्थे मनसि शरीरस्य दुःखाभावःस योगः।। वैशेषिक सूत्र 5/2/15–1 अपने चित्त को दूसरे के शरीर में प्रविष्ट कर देना, दूसरों के चित की बात जान लेना अथवा अतीत और अनागत को जान लेना, स्वेच्छा से जो चाहे कर लेना, अतीन्द्रिय पदार्थों को देखने वाली दिव्यदृष्टि होना, अतीन्द्रिय शब्दों को सुनने वाला दिव्यश्रोत होना, समस्त भावों का जो तत्व है उसकी स्मृति होना, शरीर में दिव्यकान्ति होना तथा इच्छानुसार अदृश्य हो सकना – यह आठ प्रकार का ईश्वरीय बल कहा गया है जो योग सिद्ध हो जाने पर योगियों को प्राप्त होता है। रजस् और तमस् से रहित शुद्ध चित की एकाग्रता से इस ऐश्वर्य का अलौकिक शक्ति उत्पत्ति होती है, जैसा कि चरक संहिता कहती है–

आवेशश्चेत सो ज्ञानमर्थानां छृन्दतः क्रिया।
दृष्टिः श्रोतं स्मृतिः कान्तिरिष्टतश्चाप्यदर्शनम्।।
इत्यष्टविधमाख्यातं योगिना बलमैश्वरम्।।
शुद्धसत्वसमाधानात तत् सर्वमुपजायते।।
चरकसंहिता शास्त्र 1/140–141

इस प्रकार आयुर्वेद में भी आठ प्रकार का बल या अलौकिक शक्ति योग सिद्ध होने पर योगियों का प्राप्त होती है का वर्णन किया गया है।

योगसूत्रकार महर्षि पतंजलि ने चित्त अर्थात् मन की वृत्तियों के निरोध होने को योग की संज्ञा दी है। अतः यह सुस्पष्ट है कि योग स्थिति के लिए चित्त (मन) ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। आयुर्वेद के ग्रन्थों में चित्त के गुणधर्मो एवं प्रकृतियों का विस्तृत विवेचन चरक संहिता के सूत्रस्थान एवं शरीर स्थान में किया गया है।

महर्षि पतंजलि ने योगसूत्र में योग का प्रमुख प्रयोजन मोक्ष की प्राप्ति बतलाया है। आयुर्वेद के अनुसार भी मोक्षार्थी को योग का अभ्यास करना आवश्यक है, क्योंकि योग को मोक्ष का प्रवर्तक कहा गया है।

योग और आयुर्वेद दोनों ही समान शैक्षणिक पद्धतियां है। दोनों में औषधि मन्त्र, जप और समाधि आदि पर मुख्य रूप से बल दिया गया है। आध्यात्मिक मार्ग में चित्त की शुद्धि के लिए योग में भी औषधियों की उपयोगिता बतलाई है, जो कि औषधि–अन्न एवं विहार के रूप में है। आयुर्वेद में भी योगाभ्यास का वर्णन किया गया है। इस प्रकार दोनों में मूलभूत समानताएं है।

प्राचीन भारतीय संस्कृति में मानव जाति की उत्कर्षता के लिए शरीर, मन एवं वाणी की शुद्धि को विशेषरूप से महत्वपूर्ण बतलाया है। जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है कुछ विद्वानों का मत है कि एक ही लेखक ने भिन्न–भिन्न तीन ग्रन्थ मानव जाति के कल्याणार्थ बहु–उद्देश्यीय ग्राह्य ज्ञानसंग्रह के रूप में किया है :–

1. चित्तशुद्धि के लिए पातंजलयोगसूत्र।

2. वाणीशुद्धि के लिए पातंजलमहाभाष्य।

३. शरीरशुद्धि के लिए चरकसंहिता (पतंजलिकृत)।

इस प्रकार योग और आयुर्वेद एक ही प्रकार की ज्ञान पद्धतियां हैं।

हठयोग एवं तन्त्रशास्त्र में छः प्रधानकार्य बतलाकर उसे षटकर्म की संज्ञा दी गई है। ये कर्म प्रधानतया शोधन कर्म ही है। आयुर्वेद में शोधन कर्म के लिए पतंजलकर्म का उपयोग किया जाता है। साथ ही स्नेहन–स्वेदन–नस्य–धूम–गण्डूष–कवलग्रह आदि का उपयोग दोनों पद्धतियों में किया गया है। इन कर्मों का उपयोग भी स्वस्थ एवं आतुर दोनों के लिए किया जाता है।

चरकसंहिता आयुर्वेद की प्राचीनतम् संहिताओं में से एक है, जिसमें अत्यन्त उच्च कोटि के योग का वर्णन किया गया है। इसमें विस्तृत रूप से प्रज्ञा का सिद्धान्त और यागस्थ पुरूष के लक्षण बतलाये गये हैं, जो कि पतंजलि के योगसूत्र में बतलाये गये ऋतम्भराप्रज्ञा के समान है और जो भगवद्गीता में बतलाया गया योगस्थ पुरुष है।

आचार्य चरक ने यम–नियम आदि की भांति सदवृत्त–आचार–रसायन, दिनचर्या, रात्रिचर्या, ;तुचर्या आदि योग के बाह्य अभ्यासों का वर्णन किया है एवं साथ ही विशेष रूप से योगाभ्यास की उच्चतम प्राप्ति की स्थिति का भी वर्णन किया गया है। सत्याबुद्धि सिद्धियों की प्राप्ति अथवा ऐश्वर्य–प्राप्ति जैसे विषयों का भी वर्णन किया है।

योग का मूल उद्देश्य मनुष्य को मोक्ष प्राप्ति कराना रहा है जो जीवन के विज्ञान के विज्ञान अर्थात् आयुर्वेद का एक अंश या पक्ष मात्र है। आयुर्वेद सम्पूर्ण जीवन का मार्गदर्शक शास्त्र है एवं मोक्ष प्राप्ति आयुर्वेद का अन्तिम लक्ष्य है जो आध्यात्मिक विकास से सम्बन्धित है। आध्यात्मिक विकास के अतिरिक्त आयुर्वेद शारीरिक एवं मानसिक विकास का भी उपदेश प्रदान करता है।

आयुर्वेद क्रमशः मानसिक, शारीरिक, आध्यात्मिक आधिदैविक तथा आधिभौतिक कष्टों के निवारण का विज्ञान है जिसे आयुर्वेद सम्पूर्ण आरोग्य मानता है यही आरोग्य मनुष्य को पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की प्राप्ति का साधन कराता है। जबकि योग आध्यात्मिक कष्टों का निवारण कर मोक्ष का साधन मात्र है। ‘‘योगो मोक्षाप्रवर्तकः।।’’

प्रत्याहार का वर्णन करते हुए कहा है कि स्वस्थ रहने के लिए इन्द्रियों का विषयों के साथ अतियोग, मिथ्यायोग, अयोग नहीं होना चाहिए। इसी प्रकार धारणा, ध्यान और समाधि के महत्व को आयुर्वेद में स्वीकार किया गया है। समाधि की अवस्था को आत्मानुभूति का कारण बताया है। साथ ही मानसिक रोगों की चिकित्सा में ध्यान और समाधि को उपयोगी बताया गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि योग और आयुर्वेद एक ही प्रकार के विज्ञान है। दोनों एक ही उद्देश्य के लिए एक काल एवं देश में समकालीन विद्वानों द्वारा विकसित की गई शिक्षा पद्धतियां है। आयुर्वेद दूहलौकिक एवं परालौकिक सुखों की कामना को ध्यान में रखकर सृजित किया गया है। आयुर्वेद धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष पुरुषार्थ चतुष्ट्य एवं धरन–एष्णा, प्राण–एष्णा एवं परलोक–एष्णा आदि त्रि–एष्णाओं की प्राप्ति हेतु पथ–प्रदर्शक है। यह औषधि, आहार एवं विहार द्वारा दूहलौकिक सुख की प्राप्ति का साधन है, तो आध्यात्म तत्वज्ञान एवं तत्वानुभूति द्वारा परालौकिक सुख की प्राप्ति का साधन योग आयुर्वेद का एक पक्ष होने के साथ दोनों आपस में एक दूसरे के पूरक भी है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *भारतीय दर्शन की रूपरेखा, प्रो. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा*
2. *योग विज्ञान, पृ. पूर्णचन्द पन्त शास्त्री।*
3. *भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम, राजकुमारी पाण्डेय*
4. *योग विज्ञान, पं. पूर्णचन्द पन्त शास्त्री, पृ.सं. 137, 138*
5. *भगवद्गीता 6/10*
6. *भगवद्गीता, 6/11*
7. *भारतीय मनोविज्ञान, डॉ. रामनार्थ शर्मा, डॉ. रचना शर्मा*
8. *सांख्य–सूत्र महर्षि कपिल, 3/30*
9. *सांख्य–सूत्र महर्षि कपिल, 3/31*
10. *सांख्य–सूत्र महर्षि कपिल, 3/32*
11. *सांख्य–सूत्र महर्षि कपिल, 3/33*
12. *सांख्य–सूत्र महर्षि कपिल, 3/34*
13. *मानव–चेतना एवं योग विज्ञान – डॉ. कामाख्या कुमार, पृ.सं. 172*
14. *’शरीरेन्द्रियसत्वात्मसंयोगी धारि जीवितम्’ ।चरकसंहित सूत्रस्थान 1/1*
15. *योग एवं यौगिक चिकित्सा – प्रो. रामहर्ष सिंह, पृ.सं. 77*
16. *सम्पूर्ण योग विद्या–राजीव जैन, पृ.सं. 526*
17. *योगश्चितवृत्तिनिरोधः – योगसूत्र 1/2*

ISSN 2277-5587

भारत में महिलाओं के अधिकार : संवैधानिक एवं वैधानिक कानूनों के परिप्रेक्ष्य में

shodhshree@gmail.com

शारदा चौधरी
शोधार्थी, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

शोध सारांश

भारतीय समाज के समस्त पिछड़े वर्गों में महिलाऐं सबसे पीछे हैं। सार्वजनिक जीवन में महिलाओं को उचित स्थान दिलाने, उन पर पड़े परिवार व समाज के भारी दायित्वों के निर्वाह में उनकी सहायता करने हेतु एक राष्ट्रीय स्तर पर योजना तैयार की गयी है। इस योजना का प्रमुख उद्देश्य महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता को सुदृढ़ करना और उनकी सामाजिक स्थिति में सुधार लाना है। इस योजना के तहत देश के विकास में पूर्ण भागीदारी बनने में महिलाओं की सहायता करने का प्रयास किया गया। समाज में महिलाओं को वांछित स्थान दिलाने के लिए अभी इस दिशा में काफी कुछ किया जाना बाकी है। महिलाओं की स्थिति में सुधार करने के लिए समस्त सरकारी और कानूनी प्रयास तब ही अधिक सार्थक हो सकते हैं जब हमारे सम्पूर्ण समाज की वैचारिक दिशा और पूर्वाग्रह पूर्ण धारणाओं में भी महिलाओं के प्रति बदलाव आए वर्त्तमान समाज में जो थोड़ा बहुत बदलाव महिलाओं के प्रति आया है उसकी गति बहुत ही धीमी है। आज इस इक्कीसवीं ाताब्दी को चुनौतियों का सामना करने के लिए अभी हमें यह लड़ाई तब तक जारी रखनी होगी जब तक महिलाओं को समाज के हर क्षेत्र में सम्मानजनक स्थान न दें।

***संकेताक्षर** : उत्तराधिकार, भरण–पोषण, तलाक, संरक्षण, सदाचरण परिवीक्षा, मानवाधिकार, स्त्रीधन, सामान नागरिक संहिता।*

महिलाओं के उपेक्षित जीवन मूल्यों के परिणामस्वरूप ही विश्व मानव समाज की नाना बुराइयों को पनपने का अवसर मिल रहा रहा है। विश्व की उत्पादिका पोषिका शक्ति सम्पन्ना गृहस्थ आश्रम की मूल संचालिका महिलाओं की कार्य कुशलता सदाचरण सुक्षिक्षा एवं बुद्धिमता पर विश्व मानव समाज का स्वरूप आधृत होता है उक्त गुणों से संवलित नारियां ही सभी तथ्यों को ठीक समझकर सम्पूर्ण परिवार के सदस्यों से सदव्यवहार करती हुई उसे समृद्ध सुसभ्य एवं सुसंस्त बनाकर परिवार की अभ्युन्नति करती है ऐसी नारियों के समूह से परिवार ग्राम, राष्ट्र और विश्व की समुन्नत है ऐसे में नारी जाति के कर्तव्य उसके सुशिक्षित एवं सुसंस्कृत होने के उपाय नारी जाति के प्रति पुरूषों के सद्व्यवहार जैसे अहम बिन्दुओं पर विशेष बल देने की जरूरत है।

सदियों से परम्परा और रूढ़ियों से बंधी स्त्री समाज का वह बहंसुख्यक वर्ग है जो अपने आधुनिक अधिकारों से पूरी तरह अनभिज्ञ है। समाज पुरूष और महिला दोनों से बना है परन्तु महिलाओं को पुरूषों की तरह समानधिकार तथा सुख–सुविधा एवं प्राप्त नहीं है वे आर्थिक राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रों में सक्रिय रूप से भाग नहीं लेती है उन्हें सामाजिक आर्थिक राजनीतिक और शैक्षिक सुविधाएं मिले उनके हितों की रक्षा किया जाना आवश्यक है। ऐसी स्थिति में उसे उसके अधिकारों से अवगत कराकर उसकी शक्ति को जागृत और संगठित करना परम आवश्यक है अपनी शक्ति को जान लेने के बाद भी उनमें शक्ति का संचार होगा और वे उन्नति की ओर कदम बढ़ा सकेगी।

भारत तथा अन्य देशों में पुरूष प्रधान समाज ने स्त्रियों को एक पदार्थ सरीखा मानकर उसके साथ व्यवहार किया है। हमारे देश में संभवतः महिलाओं के अधिकारों से संबंधित कोई भी दूसरा मुद्दा इतने दबावों का शिकार नहीं रहा है जितना कि

विभिन्न धार्मिक समुदायों में सुधारों का मुद्दा हुआ है। परिवार, विवाह और संम्पत्ति के अंतर्गत महिलाओं के अधिकारों का मुद्दा हमेशा से ही बेहद विवादास्पद रहा है क्योंकि इसका उद्देश्य महिलाओं की स्थिति में सुधार के जरिए, समुदाय और परिवार दोनों के ही भीतर स्त्री–पुरूष के बीच शक्ति संबंधों को बदलने का रहा है।

निजी कानूनों में बदलाव या सुधार अथवा समान संहिता की रूपरेखा निर्धारित करने के विषय में, महिला आंदोलन के बाहर उठने वाली बहसें सदा ही अल्पसंख्यक–बहुसंख्यक पहचानों और राष्ट्रीय एकीकरण जैसी दलीलों के इर्द–गिर्द घूमती रहती हैं। क्योंकि सभी निजी कानून संबंधित धर्मों से वैधता प्राप्त करते हैं। इसलिए किसी भी समुदाय के निजी कूानन में जबरन किए जाने वाले किसी भी सुधार या बदलाव को उस समुदाय की पहचान के लिए खतरे के रूप में देखा जाता हैं। दूसरी तरफ समान कानूनों की जरूरत को राष्ट्रीय एकीकरण के लिए आव यक उपकरण के रूप में देखा जाता रहा है। इन दोनों ही दलीलों में महिला संपत्ति अधिकारों के लिए कोई स्थान नहीं है। वोट की राजनीति ने भी बहस को प्रभावित करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यदि एक अवसर पर यह राजनीति अल्पसंख्यक वोटों को ध्यान में रखते हुए तर्क देती है तो किसी दूसरे अवसरों पर वोट के लिए ही, बहुसंख्यक समुदाय की भावनाओं के प्रति संवेदनशील हो उठती है।[1] सामाजिक सुधारों पर केंद्रित शुरूआती आंदोलन मोटे तौर पर हिंदू स्त्री की दशा और भूमिका के विषय में ही ज्यादा चिंतित थे। इस दिशा में मुसलिम समुदाय की शिरकत 19वीं शताब्दी के आखिरी हिस्से से ही दिखाई देनी शुरू हुई। मुसलमानों द्वारा उठाए गए मुद्दे ज्यादातर बहुविवाह, परदा प्रथा और महिला शिक्षा से संबंधित थे।[2]

नतीजतन, जहां एक तरफ कुछ भयानक प्रथाओं को रोकने के लिए, 19वीं सदी के अंत तक कानून बना दिए गए[3] वहीं दूसरी तरफ उत्तराधिकार, भरण–पोषण, तलाक और बच्चों के अभिभावकत्व व संरक्षण जैसे मुद्दे सुधार और बदलावों के दायरे से बाहर ही रहे।[4] इसी दौर में शिक्षा और राजनीतिक गतिविधियों में सरगर्मी के चलते स्वयं महिलाएं भी शिक्षा और कानूनी सुधारों के जरिए अपनी स्थिति सुधारने के लिए संगठित होने लगी थीं।[5]

यद्यपि भारतवर्ष 15 अगस्त, 1947 में ही स्वतंत्र हो चुका था, परन्तु वह उस समय पूर्ण स्वंतत्र एवं प्रभुत्व सम्पन्न नही कहा जा सकता था, क्योंकि पूर्ण स्वतंत्र देश का अपना एक संविधान होता है, जिसके आधार पर उस देश का शासन कार्य सम्पादित होता है। 26 जनवरी, 1950 को भारत एक पूर्ण स्वतंत्र और प्रभुत्व गणतन्त्रीय राज्य बना। इसी दिन भारत का 'अपना' संविधान लागू हुआ।[6]

भारतीय संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकार और नीति–निदेशक तत्वों को हमारे संविधान का मूल बनाया जाता है। ये मानवाधिकारो की सार्वभौम घोषणा के बुनियादी सिद्धांतो को प्रदशित करते है। संविधान की प्रस्तावना में उल्लिखित चार मूल सिद्धांत है : न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व। भारतीय संविधान मे मूल अधिकारो का छः समूहों में वर्गीकरण किया गया है–समता का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, शोषण के विरूद्ध अधिकार, धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार, संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार, संवैधानिक उपचारों का अधिकार।[7]

संविधान में वैयक्तिक अधिकारो और सामाजिक अधिकारों दोनो का प्रतिपादन किया गया है।[8] संविधान की प्रस्तावना में भारत को सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक गणराज्य घोषित किया गया है और प्रत्येक नागरिक (स्त्री/पुरूष) के लिए समानता, स्वतंत्रता, समान अवसर तथा सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक न्याय की व्यवस्था की गयी है।[9]

आज दुनिया के इक्कीसवीं सदी के प्रवेश के बावजूद भी लड़की के जन्म होने पर मातम सा छा जाता है एवं पुत्री जन्म की हेय दृष्टि से देखा जाता है एवं कहीं–कहीं पर तो लड़की का जन्म होते ही उसे मार दिया जाता है अथवा जिन्दा दफना दिया जाता है अथवा गर्भावस्था में जांच कराई जाकर लड़की होने का अन्देशा मात्र होने पर गर्भ गिरवा दिया जाता है। ऐसी खतरनाक स्थिति से बचने के लिए ही दण्ड संहिता की धारा 315 के तहत अगर कोई व्यक्ति किसी शिशु के जन्म के पूर्व कोई ऐसा कार्य करे जिससे शिशु जीवित पैदा ही नहीं हो अथवा पैदा होते ही उसकी मृत्यु हो जाये अथवा जन्म होने के पश्चात् ऐसी कन्या की मृत्यु कारित कर दे तो उसे अपराधी को दस वर्ष तक की सजा एवं जुर्माना अथवा दोनों से दण्डित किया जा सकेगा। इसके अलावा अगर इस प्रकार से घृणित कार्य करने से गर्भवती स्त्री की मृत्यु हो जाती है तो अपराधी व्यक्ति मानव वध का दोषी होगा एवं उसे धारा 316 के तहत दस वर्ष तक की सजा एवं जुर्माना अथवा दोनों से दण्डित किया जा सकेगा।[10]

दण्ड संहिता की धारा 354 के तहत अगर कोई स्त्री की लज्जा भंग करता है अथवा लज्जा भंग करने के उद्देश्य से अपराधिक बल का प्रयोग करता है तो उसे दो वर्ष की सजा

अथवा जुर्माना अथवा दोनों से दण्डित किये जाने का प्रावधान है। धारा 361 के अनुसार अगर किसी महिला जिसकी आयु 18 वर्ष से कम है और उसे कोई व्यक्ति उसके विधिपूर्ण संरक्षक की संरक्षकता से बिना सम्मति के या बहला अथवा फुसलाकर ले जाता है तो वह व्यक्ति अपहरण का दोषी एवं उसे धारा 363 के तहत 7 वर्ष तक की सजा व जुर्माना अथवा दोनों की सजा से दण्डित किया जा सकेगा। इतना ही नहीं अगर किसी लड़की का व्याहरण उसकी इच्छा के विरूद्ध विवाह करने के आशय से किया जायेगा तो उस स्थिति में दोषी व्यक्ति को धारा 366 के तहत दस साल तक की सजा का प्रावधान है। धारा 366(अ) के अनुसार अगर किसी 18 वर्ष से कम आयु की लड़की का उपादान सम्भोग के उद्देश्य से किया जाता है तो ऐसे अपराधी व्यक्ति को दस वर्ष की सजा एवं जुर्माना अथवा दोनों ही सजा से दण्डित किया जा सकेगा। धारा 366(ब) के अनुसार अगर किसी 21 वर्ष से कम आयु की लड़की को जम्मू एवं क मीर अथवा विदेश से अयुक्त सम्भोग करने के उद्देश्य से आयात किया जाता है तो ऐसे व्यक्ति को दस वर्ष की सजा एवं जुर्माना अथवा दोनों से दण्डित किया जा सकेगा। धारा 372 के तहत अगर किसी 18 वर्ष से कम आयु की महिला को किसी वेश्यावृति के प्रयोजन के लिए बेचने पर अथवा किराये पर दी जाने पर दोशी व्यक्ति को दस वर्ष तक की सजा व जुर्माना अथवा दोनों की सजा दी जा सकेगी।[11]

इसके अलावा धारा 376 (2) के तहत अगर बलात्कार का अपराध किसी पुलिस अधिकारी द्वारा उसकी अभिरक्षा में होने वाली स्त्री अथवा कोई लोक सेवक अपनी अभिरक्षा में होने वाले स्त्री अथवा स्त्रियों की संस्था का प्रबन्धक अथवा कर्मचारी कारागृह का अधिकारी उसकी अभिरक्षा में होने वाली स्त्री अथवा अस्पताल का प्रबन्धक या कर्मचारी अस्पताल में दाखिल स्त्री के साथ अथवा गर्भवती स्त्री के साथ यह जानते हुए कि स्त्री गर्भवती है अथवा ऐसी स्त्री के साथ जिसकी आयु 12 वर्ष से कम है अथवा सामूहिक बलात्कार के दोषी पाये जाने वाले व्यक्ति को कम से कम दस वर्ष तक के कठोर कारावास से लेकर आजीवन कारावास व जुर्माना अथवा दोनों से दण्डित किया जा सकेगा।

धारा 376 के बाद सन् 1983 के संशोधित अधिनियम द्वारा कुछ नई धाराएं और इस बाबत जोड़ी गई हैं ताकि अपराधी व्यक्ति कानून की गिरफ्त से भाग नहीं सके। धारा 376 (अ) के अनुसार अगर पृथक्करण की डिग्री होने के बाद पत्नी की सम्मति के बिना पति भी अगर उसके साथ सम्भोग करता है तो उसे दो वर्ष तक की सजा एवं जुर्माना अथवा दोनों ही सजा दी जा सकती है।

धारा 360 के तहत अगर कोई स्त्री ऐसे अपराध के लिए जो मृत्यु के आजीवन कारावास से दण्डनीय नहीं है, दोष सिद्ध की जाती हैं और अगर यह उसका प्रथम अपराध है तो न्यायालय उसे दण्डादेश देने के बजाय दोषी मानते हुए भी सदाचरण परिवीक्षा पर छोड़ सकता है और अब तो इस बाबत अधिनियम भी पारित हो चुका है यानि कि अगर किसी महिला द्वारा गलती से कोई अपराध हो जाता है तेा कम से कम एक बार तो इस प्रावधान के माध्यम से उसे सुधरने का मौका मिल जाता है हालाँकि इसमें यह जरूरी है कि महिला इस प्रकार का बन्ध पत्र भरे कि वह उस अवधि के दौरान जितनी भी न्यायालय निर्धारित करे बुलाये जाने पर हाजिर होगी व शान्ति बनाये रखेगी तथा अपने आपको सदाचारी बनाये रखेगी। धारा 416 के तहत अगर कोई स्त्री जिसे मृत्युदण्ड की सजा दी गयी है या पाया जाता है कि वह गर्भवती है तो ऐसी स्थिति में उच्च न्यायालय मृत्युदण्ड के आदेश के निष्पादन को तब तक के लिए स्थगित कर देगा जब तक कि वह बच्चे को जन्म नहीं दे देती और न्यायालय अगर ठीक समझे तो मृत्युदण्ड के आदेश को आजीवन कारावास के आदेश में परिवर्तित कर सकेगा।

दण्ड प्रक्रिया संहिता का सबसे महत्वपूर्ण अध्याय महिलाओं के भरण–पोषण से सम्बन्धित है। धारा 125 से 128 भरण पोषण के बारे में हैं। धारा 125 के तहत यह दर्शाया गया है कि अगर कोई पति अपनी पत्नी जो कि अपना भरण पोषण करने में असमर्थ है अथवा उसकी संतान जो कि धर्मज अथवा अधर्मज है अथवा उसके माता–पिता जो कि अपना भरण–पोषण के असमर्थ है उनका भरण पोषण करने से इन्कार करता है तो पत्नी को सक्षम न्यायालय द्वारा 500 रूपया मासिक तक भरण–पोषण भत्ता दिलाया जा सकता है। सबसे दिलचस्प पहलू यह है कि उक्त भरण–पोषण की रकम पत्नी तालाक के बाद भी जब तक कि वह किसी अन्य व्यक्ति से विवाह नहीं कर लेती है तब तक प्राप्त कर सकती है।

जहां तक मुस्लिम महिला का सवाल है तो मुस्लिम विधि के अनुसार एक मुस्लिम महिला तलाक के पश्चात् केवल इद्दत तक की अवधि तक ही भरण–पोषण प्राप्त कर सकती है। यहां पर यह कहना अनुचित नहीं होगा कि दुनिया का प्रत्येक व्यक्ति इसके पहले कि वह किसी जाति, धर्म, सम्प्रदाय अथवा समुदाय का हो वह पहले मनुष्य है और इसी आधार पर अन्तराष्ट्रीय स्तर पर हम समान

मानवधिकारों की बात करते हैं। हमारे संविधान के अनुच्छेद 44 में भी समान दीवानी अधिकारों की कल्पना की गई है। अनुच्छेद 44 अपेक्षा करता है कि ''राज्य भारत के समस्त राज्य क्षेत्र में नागरिकों के लिए समान दीवानी संहिता प्राप्त करने का प्रयास करेगा।'' संविधान को लागू हुए आज करीब 60 वर्श हो गये हैं किन्तु दुर्भाग्य का विषय है कि भरण–पोषण के मामले में हिन्दू व मुस्लिम महिला को समान अधिकार प्राप्त नहीं हैं जबकि दोनों ही इस देश की समान नागरिक हैं एवं दण्ड प्रक्रिया संहिता के प्रावधान दोनों पर ही समान रूप से लागू हैं।[12]

संसद ने हिन्दू महिला की तरह ही मुस्लिम महिला को भी उसका स्त्रीधन दिलाया है और उसे आर्थिक परेशानी से काफी हद तक मुक्त कराने की कोशिश की है ताकि वह तलाक के बाद भी समाज में एक अच्छा एवं प्रतिष्ठित जीवन बिता सके एवं अपने आपको शोषण से मुक्त रख सके। इतना सब होने के बावजूद भी यह कहना सत्य नहीं होगा कि अब तो भरण–पोषण के मामले में हिन्दू एवं मुस्लिम महिला की स्थिति बराबर की हो गयी है क्योंकि भरण–पोषण की परिभाषा जितनी व्यापक हिंदू विधि में है उतनी व्यापक मुस्लिम विधि में नहीं है। हिन्दू महिला ''हिन्दू दत्तक एवं भरण–पोषण अधिनियम 1956'' की धारा 18 के तहत भी भरण–पोषण पाने की अधिकारिणी है एवं इस अधिनियम की धारा 3 के तहत भरण–पोषण से मतलब न केवल भोजन, कपड़ा, निवास बल्कि शिक्षा, चिकित्सा, बीमार का इलाज, उसकी सेवा तथा अविवाहित पुत्री के विवाह का खर्च भी भरण–पोषण का ही भाग माना गया है जबकि मुसलमान कानून में भरण–पोषण से मतलब रोटी, कपड़ा और मकान से ही है यानि यह कहना गलत नहीं होगा कि हिन्दू महिला के पास भरण–पोषण के मामले में ज्यादा उपचार उपलब्ध हैं जो कि मुस्लिम महिला के पास नहीं हैं क्योंकि हिन्दू महिला न केवल दण्ड प्रक्रिया संहिता बल्कि ''हिन्दू दत्तक एवं भरण–पोषण अधिनियम'' दोनों ही के तरह भरण–पोषण प्राप्त कर सकती है। दण्ड प्रक्रिया संहिता के प्रावधान 125 से 128 आदेशात्मक हैं जिनकी पालना करने के लिए पति बाध्य है और अगर न्यायालय के आदेश के बावजूद अगर पति भरण–पोषण भत्ता पत्नी को नहीं देता है तो आदेश की पालना नहीं करने के जुर्म में एक माह तक के कारावास तक की सजा दी जा सकती है। इस प्रावधान के होने से महिलाओं को भरण–पोषण समय पर मिलने में काफी सुविधा मिली है। भरण–पोषण के मामले का एक रोचक पहलू यह भी है कि मुसलमान पति हर स्थिति में पत्नी को भरण–पोषण देने के लिए बाध्य है क्योंकि मुसलमान कानून धनी पति व निर्धन पति में कोई भेदभाव नहीं करता चाहे पत्नी करोड़पति ही क्यों न हो और पति कंगाल ही क्यों न हो हर परिस्थिति में पति ही पत्नी को भरण–पोषण भत्ता देने के लिए बाध्य है। प्रावधानों के अनुसार जब भी सम्पति का विभाजन होगा नारी भी अगर विवाहित नहीं है तो बराबर ही हकदार होगी और अगर विभाजन न भी हुआ तो भी मकान में रहने की हकदार होगी। इसके अलावा अगर विवाहित पुत्री को उसके पति ने निकाल दिया हो अथवा विधवा हो तो निवास गृह में रहने की अधिकारिणी होगी। धारा 15 के अनुसार अगर कोई महिला बिना वसीयत लिखे मरती है तो उसकी जायदाद सबसे पहले उसके लड़के–लड़कियों में विभक्त होगी और बाद में उसके पति अथवा माता–पिता का नम्बर आयेगा।

सरकार द्वारा महिलाओं हेतु विभिन्न प्रकार के कानून बनाये गये तथा पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत भी महिलाओं के विकास हेतु कार्य किये गये और उन्हें कल्याणकारी नीतियों के लक्ष्यों की अपेक्षा राष्ट्रीय विकास में महत्वपूर्ण निर्विष्ट के रूप में देखा जाने लगा। साथ ही साथ महिलाओं में भी अपनी स्थिति व अधिकारों के प्रति जागरूकता आयी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *''ट्रेंड्स इन सोशल साइंस रिसर्च'', खण्ड 4, न0 2, दिसंबर 1997 में छपा था।*
2. *उदाहरण के लिए पुनर्विवाह और तलाक के संदर्भ में स्त्रियों और पुरूषों को बराबर अधिकार देने के विचार को सहमति नहीं मिली। इसलिए हल यह निकाला गया कि पुरूषों को पुनर्विवाह का अधिकार दिया जाए यदि पत्नि की सहमति हो, और स्त्रियों को तलाश का अधिकार दिया जाए, यदि उनके साथ दुर्व्यवहार हो रहा हो। देखें, फोर्बस, 1984, पृ. 38।*
3. *जयवर्धने, 1986, पृ.–87–90।*
4. *जयवर्धने, 1986, पृ.–87–90।*
5. *जयवर्धने, 1986, पृ.–87।*
6. *श्रीवास्तव, सुधारानी एवं श्रीवास्तव रागिनी : मानवअधिकार एवं महिला उत्पीड़न, अजय वर्मा कामनवेल्थपब्लिशर्स 4831/24 प्रह्लाद स्ट्रीट, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, 2003, पृ0–234।*
7. *योजना, सूचना प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, अप्रैल –2006, पृ0–46।*

8. उपाध्याय, डॉ जय जय राम : मानव अधिकार, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, 30-डी/1, मोती लाल नेहरू रोड, इलाहाबाद, 2002, पृ0-78।

9. प्रस्तावना -''हम भारत के लोग भारत एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न, समाजवादी धर्मनिरपेक्ष, लोकतिंत्रात्मतक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्ज नागरिको को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वंतत्रा, प्रतिश्ठा और अवसर की समानता प्राप्त कराने के लिए तथा उन सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता तथा अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर इन संविधान सभा में आज दिनांक 26 नवंबर, 1949

10. त्रिपाठी, मधुसूदन, भारत में मानवाधिकार, (ओमेगा पब्लिकेशन्स) पृ. 83

11. त्रिपाठी, मधुसूदन, भारत में मानवाधिकार, (ओमेगा पब्लिकेशन्स) पृ. 84

12. त्रिपाठी, मधुसूदन, भारत में मानवाधिकार, (ओमेगा पब्लिकेशन्स) पृ. 91

भारत में साम्प्रदायिकता : एक ऐतिहासिक विवेचन

प्रवीण कुमार
जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

भारत में आज भी साम्प्रदायिकता की समस्या बराबर बनी हुई है क्योंकि भारत में अनेक जातियों तथा अनेक धर्मो से सम्बंधित लोग निवास करते हैं। प्रत्येक धर्म के अनुयायी अपने-अपने धर्म की रक्षा करने में लगे रहते हैं तथा धर्म के आधार पर राजनीतिक दलों को प्रभावित करते रहते है।

संकेताक्षरः *साम्प्रदायिकता, संस्कृति, सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि, पुररूत्थानवादी प्रवृत्तियाँ।*

भारत जैसे धार्मिक व सांस्कृतिक बहुलता पर आधारित देश में जहाँ सभी धर्मों के लोग एक साथ मिलकर सदियों से रहते आये थे, में साम्प्रदायिकता का विकास एक आकस्मिक घटना नहीं थी बल्कि यह अंग्रेजों द्वारा अपने साम्राज्यवादी एवं औपनिवेशिक हितों की पूर्ति के लिए उभारी गयी एक क्रमिक प्रक्रिया थी। इस देश में हिन्दू बहुसंख्यकों के बीच बहुत समय तक मुस्लिम शासकों ने शासन किया। भारत अशोक की शांतिप्रियता और अकबर की सहिष्णुता के लिए विश्व भर में प्रसिद्ध रहा है और अंग्रेजों के आने के बाद तक यह स्थिति बनी रही, लेकिन 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम जिसे अंग्रेज इतिहासकार सैनिक विद्रोह की संज्ञा देते है, के बाद ब्रिटिश शासकों ने अपने साम्राज्यवादी हितों की पूर्ति के लिए ''फूट डालों और शासन करो'' की नीति के तहत भारत में साम्प्रदायिकता को उभारने का प्रयास शुरू की, जिसकी परिणति अंततः देश के धार्मिक आधार पर देश के विभाजन के रूप में हुई।

साम्प्रादायिकता धर्म पर आधारित समूहों की पहचान या धर्म के संकीर्ण समूह की विचारधारा है। इस तरह के विभिन्न समूह अलग स्वतंत्र संरचना वाले एवं संगठित समुदायों को जन्म देते हैं। साम्प्रदायिकता नजरीये में भारतीय समाज को ऐसी ही सामाजिक इकाइयों का सम्मिश्रण माना जाता है। इस विचारधारा में अंतर्निहित सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है- लोगों द्वारा अलग-अलग धर्मो को माने जाने के कारण उनके समुदाय के सदस्यों के बीच सम्मेलन या समानता होने की भावना। साथ ही इस विश्वास को बढ़ावा देता है कि न सिर्फ उनके धार्मिक हित समान है बल्कि उनके धर्मनिरपेक्ष हित जैसे कि सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक भी समान है वे सभी जो एक खास धर्म के मानने वाले है एक समुदाय की रचना करते हैं। जिनके कुछ खास एवं निश्चित साम्प्रदायिक एवं गैर साम्प्रदायिक हित आपस में समान है एवं अन्य समुदाय से अलग है इस प्रकार धर्म उन लोगों के बीच सुदृढ़कीकरण का करण बन जाता है।[1]

साम्प्रदायिक विचारधारा का एक दूसरा आयाम यह भी था कि धर्मिक अलगावपन ही सबसे मौलिक एवं महत्वपूर्ण विशिष्टता है। यह अन्य सभी विशिष्टताओं को ढ़क देता है या ऐसा माना जा सकता है कि बाकी सभी विशिष्टताएं, विभिन्नताएं इसी के अंतरगत आती है। धर्म ही सामाजिक पहचान का मौलिक आधार है और उनके मौलिक सामाजिक संबंधों को निर्धारक तत्व भी इसका एक अन्य पक्ष कि आधुनिक राजनीति में संगठित होने का आधार भी धार्मिक वैशिष्टय प्रदान करती है-अर्थात एक सच्चा हिन्दू या मुस्लिम अपने सम्प्रदाय की पार्टी में ही शामिल होगा, एक हिंदू या मुस्लिम की राजनीतिक सोच उनके समूदाय की सोच से अलग नहीं हो सकती या वे किसी राजनैतिक संगठन की और उन्मुख इसलिए होते है कि वे हिन्दू या मुसलमान है।

साम्प्रदायिकता में यह विचार भी अन्तर्निहित है कि समुदायों के विभिन्न हित एक दूसरे से न सिर्फ असमान है बल्कि वे एक दूसरे के विरोधी एवं विपरीत भी है इसलिए उनके हित आपस में असंगत है। यह सब एक ऐसी सोच पैदा करती है कि इन समुदायों के बीच सहयोग एकीकरण और शांतिपूर्ण सहअस्तित्व क्षणिक एवं अस्थायी है विचारधारा एक और पक्ष है– ''पिछेपन एवं प्रभुत्व का सिद्धान्त।'' इस सिद्धान्त का मानना है कि मुसलमानों का पिछड़ापन एवं रोजगार पाने में पीछे रह जाना हिंदूओं में हुई प्रगति का प्रतिफलन हैं अर्थत किसी खास क्षेत्र में एक समुदाय विशेष का सबसे बड़ा हिस्सा पा लेने का अर्थ है उस समुदाय का प्रभुत्व एवं समुदाय से खतरा। साम्प्रदायिकता की विचारधारा प्रजातांत्रिक विचारों का विपयर्य हैं प्रजातांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था की मजबूती को अर्थ में उत्पीड़न एवं मातहतीकरण के रूपमें देखा जाता है प्रजातांत्रिक शासन का अर्थ मुस्लिम साम्प्रदायिको के लिए होता है–हिंदू बहुमत का शासन अर्थात हिन्दूओं का प्रभुत्व एवं अल्पसंख्यक समुदाय का दमन।

अतः उन्होने एक ऐसी राजनीतिक विचारधारा ग्रहण कर ली जो कि प्रजातंत्र एवं सामाजिक एकता का विरोधी था इस संदर्भ में ऐसा माना गया कि प्रजातंत्र एवं सामाजिक न्याय आदि पश्चिमी अवधारणा है एवं यह भारतीय स्थितियों में उपयुक्त नहीं है। यह उस भारतीय समाजिक संरचना एवं पररम्परा के विपरीत है जिसका विकास समय के साथ होता आया है सांप्रदायिकता–वादियों ने उपनिवेशवाद के खिलाफ किसी भी गंभीर संधर्ष का विरोध किया। दरअसल उन्होने हमेशा राजभक्ति एवं उपनिवेशवाद समर्थ रूख अपनाया। साथ ही औपनिवेशिक शासकों के साथ परस्पर निर्भरता का संबंध विकसित कर लिया।[2]

सांप्रदायिकता का उदय

साम्प्रदायिकता औपनिवेशिक शासन एवं उसके द्वारा अपनाई गई नीतियों एवं उत्पन्न शास्त्रियों का ही प्रतिफलन था। उपनिवेशवाद ने एक ऐसी सामाजिक संरचना को जन्म लिया जिसने बाद में साम्प्रदायवाद की पैदाइश में उपकरण का सा योग दिया। इसी ने ऐसी स्थितियाँ पैदा की जिसमें सांप्रदायिकतावाद फल–फूल सका। विकृत उपनिवेशवादी अर्थव्यवस्था में जहाँ व्यापार एवं अन्य धंधों के लिये पर्याप्त अवसर पैदा नहीं हुए सांप्रदायिकतावाद मध्यवर्ग के बीच जीविका एवं नौकरी पाने की संघर्ष का भी प्रतिफलन था। सांप्रदायिकतावाद का उदय एक ऐसी विचारधारा के रूप में हुआ जिसमें मध्यमवर्गीय हितों एवं आकांक्षाओं को आकार दिया जा सके।

धर्म पर आधारित समूह की पहचान के साथ इसका जुड़ाव। इसका मतलब यह भी था कि आर्थिक अवसरों में अधिक भागीदारी के लिए संघर्ष के द्वारा व्यापक आधार दिया जाए। यह उपनिवेशवादी शासन के दौरान आधुनिक राजनीति के उपज हैं आधुनिक राजनीति से तात्पर्य है जनता की वृद्धिमान भागीदारी वाली जन राजनीति और जनता को संगठित करना, साम्प्रदायिक चेतना धीमा असमान और विकृत विकास तथा साथ ही राष्ट्रीय एवं साम्राज्यवाद विराधी चेतना का जनता में विकास की कीमत पर वृद्धि पाती है। नए सामाजिक वर्ग एवं सूरों का बनना साथ ही उपनिवेशवाद का जनता पर असमान प्रभाव जिसके कारण काल एवें समय दोनों नजरियें से राष्ट्रीय चेतना की असमान वृद्धि होती है। विभिन्न सामाजिक वर्गों के बीच इसका कारण था– राष्ट्रीय नेताओं के कार्यक्रमों में अंतर्निहित कमजोरियां। उपनिवेश विरोधी राजनीतिक–सामाजिक आर्थिक कार्यक्रम के अत्यन्त ही गहनता एवं उत्साहपूर्वक जनता में नहीं प्रचारित किया जा सका। राष्ट्रीय नेतागण मुसलमानों को राजनीतिक शिक्षा देने एंव संगठित करने में असफल रहे सरकारी रोजगार पाने में कुछ मध्यवर्गीय लोगों के लिये यह आपातकालीन सफलता का माध्यम बन सकी। इसने साम्प्रदायिक राजनीति करने वालों के दावे को कुछ हद तक वैद्यता प्रदान की। यही इस बात की भी आर्थिक व्याख्या करता है कि सांप्रदायिक प्रचार का सर्वाधिक प्रभाव मध्यवर्गीय व्यक्तियों के विचारों एवं तत्कालीन स्थितियों की उनकी व्याख्या को सहजता से प्रभावित करने के लिए किया। उस समय के मध्यवर्ग के अनुभवों एवं यथार्थो से साम्य रखता था। ब्रिटिशों ने साम्प्रदायिकता का प्रयोग राजनीतिक लक्ष्य को साधनें के उपकरण के तौर पर किया जिसमें उनकी राजनीति यह थी कि उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद के विरूद्ध हो रहे संघर्ष की स्थिति में किस प्रकार उनका शासन उतरजीविता ग्रहण करती जाए। यह ब्रिटिशों के बांटों और शासन करों की नीति का भाग था उनका लक्ष्य था कि भारतीय जनता में बढ़ती राजनीतिक चेतना पर हमला किया जाएं उनको संगठित होने पर, एक होने पर रोक लगाई जाए।[3]

उपनिवेशवाद ने खास तरह की सामाजिक आर्थिक संरचना को जन्म दिया। नई शिक्षा पद्धति के प्रभाव के कारण एक नया वर्ग उमरा और विकृत आर्थिक विकास के एक नये काल की शुरूआत हुई जिसका प्रमुख लक्षण था– उत्पादक क्षेत्र की अनुपस्थिति और अपर्याप्त आर्थिक अवसरों का सृजन। औपनिवैशिक अर्थव्यवस्था की इस विकृत पद्धति से सर्वाधिक नकारात्मक ढ़ंग से प्रभावी वे वर्ग जिन्होने कुछ शिक्षा पाई थी और वे वापस जमीन की तरफ नहीं मुड़ सकें थे अतः वे पूरी तरह से सरकार द्वारा सृजित होने वाले

रोजगारों पर निर्भर थे। मिला जुला कर इसके परिणामस्वरूप मध्य एवं निम्न वर्गीय वर्गो को एक संकट की स्थिति का सामना करना पड़ा अर्थात आर्थिक संकट की स्थिति एवं अवसरों की अपर्याप्तता थी। इस कारण उपरोक्त वर्गो में क्षोभ असुरक्षा की मनोभावना पैदा हुई और उन्होंने अपनी पहनचान को खतरे में पड़ते देखा। यह सवाल उनकी उतरजीविता एवं वर्ग वैशिष्ट्य में जुड़ सका। अतः एक अस्वस्थ एवं तीव्र प्रतियोगिता रोजगार पाने के लिए एवं उपलब्ध आर्थिक अवसरों पर अधिक से अधिक कब्जा पाने के लिए शुरू हुई। इस अंधी दौड़ में हित साधने के लिए हर संभव हथकंडो का प्रयोग किया जाने लगा। इसका एक और आयाम था आधुनिक राजनीति का उदय जनता की सहभागिता की राजनीति, राजनीतिक विचारों का प्रसार आदि। इस नए प्रकार के राजनीतिक जीवन में राजनीतिक निष्ठा नए सिद्धांतों एवं नई राजनीतिक पहचान पर आधारित थी। नये उभरते यथार्थ के संज्ञान की प्रक्रिया एवं इसके तहत एवं इसके साथ काम करने की जरूरत ने नई तरह की चेतना को जन्म दिया। ऐसी स्थिति में भारतीयों को दिशा निर्देश देने के लिए किसी प्रकार का पूर्व–दृष्टांत नहीं था अतः स्वाभाविक था कि पूर्व आधुनिक तरह की पहचानों की तरफ मुडे जैसे कि जाति, पेशा, धर्म, क्षेत्र आदि ताकि व्यापक संपर्क स्थापित किया जा सके। अतः साम्प्रदायिकता एक नए तरह की चेतना थी नई विचारधारा थी और राजनीति के लिए संगठित होने का नया सिद्धांत थी।

ऐतिहासिक रूप से आधुनिक रापनीति एवं मध्यवर्ग का उदय समकालीन है यह वही समय है जब भारतीय अर्थव्यवस्था के औपनिवशीकरण का प्रभाव सर्वाधिक महसूस किया गया और औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था का संकट। साम्प्रदायिकता का विकास एवं इसके द्वारा विभिन्न रूप ग्रहण किया जाना एक लंबी एवं अपरिज्ञेय प्रक्रिया थी खासकर मुस्लिम सांप्रदायिकता के संदर्भ में। 1937 तक यह अपने उदारवादी रूप में रहा लेकिन उसके बाद इसने घातक रूप अख्तियार किया परिणामस्वरूप 1930 के दशक के मध्य तक कांग्रेस नेतृत्व इसके खिलाफ कोई विरोधी रूख नहीं अपना सकी। कांग्रेस इसके विरूद्ध सही राजनीति नहीं विकसित कर सकी यानि शुरू से ही इसका विराध नहीं किया जा सका।

साम्प्रदायिकता का विकास एक तरफ तो अल्पविकास एवं व्यक्तिगत प्रगति के लिए सीमित अवसरों की स्थिति में हुआ। साथ ही दूसरी तरफ पिछडी सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना एवं साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष में जनता का एक जुट करने के लिए किसी वैकल्तिक विचारधारा का अभाव भी इसके लिए जिम्मेदार था। इसमें न सिर्फ मध्यवर्ग और निम्नवर्ग के लोग शामिल थै बल्कि भूसपन्न वर्ग, किसान एवं मजदूर भी इसमें शामिल हुए। अतः ये विभिन्न समूहो में संगठित होकर अपने विकास के लिए संघर्ष कर सकते थे इन लोगों के आपस में संगठित होने के लिए किसी वैकल्पिक सकारात्मक आधार के अभाव में लोकप्रिय अंसंतोष ने विकृत रूप लेना शुरू कर दिया। उपनिवेशवादी संरचना जिसके परिणाम स्वरूप अल्पविकास एवं आर्थिक अवसरों की कमी ने ऐसी स्थिति पैदा कर दी जो सांप्रदायिक भावनाओं को भड़काने के अनुकुल थी।[4]

सामाजिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि

भारत में अंग्रेजी साम्राज्य के उदय ने शक्ति संरचना में भारी परिवर्तन किये जिसका प्रभाव भारतीय समाज के सभी वर्गो पर पडा। साम्राज्यवाद के उदय के साथ ही उच्चवर्गीय मुसलमानों का पतन शुरू हुआ। बंगाल में जहाँ कि उच्चवर्गीय मुसलमानों का सेना के उच्च पदों, प्रशासन एवं न्यायलयों में रोजगार पर अर्ध आधिपत्य था, इसका सबसे अधिक प्रभाव देखने में आया। धीरे–धीरे भूमि पर भी उनका आधिपत्य कम होने लगा। विशेष रूप से 1793 में स्थायी बंदोबस्त तथा 1833 में अंग्रेजी के राज भाषा बननें के साथ उच्चवगर्रीय मुसलमानों की सम्पत्ति, शक्ति तथा प्रभाव में कमी आ गयी। ऐसा होने के साथ ही भारतीय समाज की अपनी अलग विशेषता के कारण मुस्लिमों का नुकसान सामान्यतःहिन्दुओं के पक्ष में गया जिन्होने शिक्षा एवं अन्य आधुनिकीकृत शक्तियों पर मुसलमानों की अपेक्षा अधिक सकारात्मक प्रतिक्रिया दिखायी। मुसलमान इस दौड में काफी पिछड गए। दूसरे शब्दों में अंग्रेजी साम्राज्यवादी शासन के अंतर्गत हुए आर्थिक विकासों ने जिन लोगों को लाभ पहुँचाया उनमें मुसलमानों की अपेक्षा हिन्दुओं की संख्या कही अधिक थी हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों ने शिक्षा, संस्कृति, नए व्यवसाय तथा प्रशासन में पद जैसी सरकारी सुविधाओं को बाद में अपनाया। परिणामतः हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों में पुरानी परम्पराओं, रवेयों और मूल्यों के पुनर्मुल्यांकन के लिए बौद्धिक जागरण भी बाद हुआ। इस बिन्दु पर राम मोहन राय तथा सैयद अहमद खान कें बीच अंतराल के उदाहरण कथन में स्पष्टता ला सकता है। इस अंतराल के कारण मुसलमानों के बीच कमजोरी तथा असुरक्षा की भावना ने परम्परागत विचार प्रक्रिया तथा धर्म पर उन्हें आश्रित बना दिया।

समकालीन इतिहासकार इस तर्क से पूरी तरह सहमत नहीं है कि मुसलमान हिन्दुओं से पिछड गए। क्योंकि 19 वी शताब्दि के आधुनिकीकरण और सामाजिक आर्थिक विकास का अनुसरण उन्होंने देर से किया। अतः इसे इसी परिप्रेक्ष्य एवं संदर्भ में देखा जाना चाहिए। इसका एक मुख्य

कारण भिन्न क्षेत्रों में इसकी भिन्न व्यावाहारिकता है। यदि एक समूह के रूप में मुसलमानों ने बंगाल में अंग्रेजी शासन के कारण नुकसान उठाया तो उत्तर प्रदेश जैसे क्षेत्रों ने लाभ भी उठाया। फिर भी अंतराल की संकल्पना का काफी महत्व है। क्योकि इससे हमें 20 वी शताब्दी में मुसलमानों के राष्ट्रीय मुख्य धारा से कट जाने की पृष्ठभूमि का पता चल पाता है। 1939 में जवाहरलाल नेहरू द्वारा अपने एक मित्र को लिखे गये पत्र में अन्तराल की संकल्पना तथा साम्प्रदायिकता के आपसी संबन्ध का उत्कृष्ट विवरण मिलता है। 1958 के भारतीय विद्रोह के बाद दमन के कुचक्र का दौर चला जिससे हिन्दु और मुसलमान दोनो प्रभावित हुए किन्तु शायद मुसलमान अधिक प्रभावित हुए।[5]

इस प्रकार भारत में साम्प्रदायिकता शैक्षिक, राजनैतिक एवं आर्थिक रूप में असमान विभिन्न सम्प्रदायों के बीच रोजगार के लिए संघर्ष थी। इतिहासकार के.बी. कृष्णा उन पहले विद्वानों में से एक हैं जिन्होंने साम्प्रदायिकता की इस समस्या पर कलम उठायी। उनका मानना है कि यह संघर्ष सामन्तवादी माहौल में अंग्रेजी साम्राज्यवाद द्वारा उनके प्रति संतुलन की नीति द्वारा भारतीय पूंजीवाद के विकास के दौर में पैदा हुए। अतः यह साम्राज्यवादी पूंजीवादी सामंतवादी ढ़ांचे की उत्पत्ति थी। के.बी. कृष्णा के अनुसार साम्प्रदायिकता का इतिहास भारत में ब्रिटिश नीति का ईतिहास है। साथ ही यह भारत में मध्यम वर्गीय चेतना के विकास तथा अनेकता और राजनैतिक शक्ति के लिए मध्यम वर्ग की बढ़ती हुइं मांग का इतिहास है। किन्तु अंग्रेजी साम्राज्यवाद इसका केवल एक पक्ष है, और देश की सामाजिक अर्थव्यवस्था इसका दूसरा पक्ष है।

ब्रिटिश नीति की भूमिका

साम्प्रदायिकता के विकास के लिए अंग्रेजी नीति मुख्य रूप से जिम्मेदार है। यदि साम्प्रदायिकता भारत में पनपी और इसने भयावह रूप धारण कर लिया जैसा कि 1947 के उदाहरण से स्पष्ट है तो इसके लिए बहुत कुछ अंग्रेजी सरकार जिम्मेदार है जिसने कि साम्प्रदायिकता को काफी बढावा दिया। अंग्रेजों ने साम्प्रदायिकता को जन्म नहीं दिया कुछ सामाजिक–आर्थिक सांस्कृतिक मतभेद पहले से ही मौजूद थे। अंग्रेजों ने इसका निर्माण नहीं किया बल्कि सिर्फ इन परिस्थितियों का लाभ उठाया था। जिससे उनका राजनैतिक उद्देश्य पूरा हो सके। सरकार की राजनैतिक नीति को उतनी सफलता नहीं मिलती यदि इस नीति को बढावा देने के लिए प्रभावशाली आर्थिक कारण पहले से मौजूद ना होते। ना तो साम्प्रदायिकता इतनी प्रभावपूर्ण विघटनकारी शक्ति बन पाती और ना कुछ वर्गीय मुसलमान इतने प्रभावपूर्ण ढंग से दमित किये जा सकते, यदि सम्बन्धित वर्ग के हिन्दु और मुस्लिम लोग, समान आर्थिक स्तर के होते लेकिन ऐसा नहीं था इसलिए यह स्पष्ट है कि फूट डालो और राज करो की अंग्रेजी नीति केवल इसी लिए सफल हो सकी क्योंकि समाज आंतरिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियाँ उस सफलता में भूमिका निभा रही थीं। साम्प्रदायिकता के विकास एवं इसके स्तेमाल तथा फूट डालों और राज करो की नीति के लिए परिस्थितियाँ अत्यन्त अनुकूल थी।

साम्प्रदायिकता से सम्बन्धित ब्रिटिश नीति का इतिहास आसान से 1857 के विद्रोह के तुरन्त बाद के दौर से रेखांकित किया जा सकता है। 1857 के बाद शासको के लिए यह आवश्यक हो गया कि ब्रिटिश साम्राज्य को भारत में बनाए रखने के लिए नई नीतियों का प्रतिपादन किया जाए। इस प्रकार 1857 के बाद सरकार की नीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन आय और अंग्रेजी नीतियों का दोहरा चरित्र सामने आया। इसमें अब उदारवादी एवं साम्राज्यवादी नीतियों का समावेश हुआ। वे केवल इस हद तक उदारवादी थी कि जो वर्ग पनप रहे थे उनकी मांगों और ईच्छाओं को मान्यता मिली तथा उनकी पूर्ति की गई जिनमें साम्राज्यवादी हित प्रमुख थे संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि यही ब्रिटिश नीति की भूमिका रही जो कि रियासत प्रतिसंतुलन एवं बल प्रयोग की नीति थी।[6]

पुनरूत्थानवादी प्रवृत्तियां

19 वी शताब्दी में पुनरूत्थान के रवैये ने साम्प्रदायिकता के विकास में काफी योगदान दिया। विश्वभर में साम्राज्यवाद के अन्तर्गत पुनरूत्थानवाद के रवैये सामान्य रूप से लिखे जा सकते हैं। पुनस्थान उस स्वाभिमान की पुनः प्राप्ति का प्रयास था जिसे राजनैतिक वशीकरण के कारण ठेस पहुँचती थी। यह स्वाभिमान भारत के प्राचीन युग को गौरावान्वित करके प्राप्त करने का प्रयास किया गया। यह भारत के वर्तमान अपमान के सन्दर्भ में क्षतिपूर्ति के रूप में किया जा रहा था। यद्यति पुनरूत्थान ने अतीत के गौरव को स्थापित किया लेकिन साथ ही कुछ अन्य समस्याऐं भी उत्पन्न कर दी। इसकी एक समस्या हिन्दुओं और मुसलमानों के भिन्न गौरवपूर्ण उद्गम का प्रस्तुतिकरण थी। इस प्रकार के प्रस्तुतिकरण ने पर्व अस्तित्वमान धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक–आर्थिक मतभेदों को एक ऐतिहासिक परिपेक्ष्य दे दिया। यह क्षति 20 वी शताब्दी में और भी स्पष्ट रूप में सामने आई। जब मौहम्मद अली जिन्ना ने अपने द्विराष्ट्रीय नजरीये के आधार पर यह कहा कि भारत एक राष्ट्र नहीं बल्कि हिन्दु और मुस्लिम राष्ट्र के रूप में दो राष्ट्र है। इसका एक कारण उन्होंने यह भी बताया कि इन दोनो का इतिहास अलग–अलग है और अक्सर एक राष्ट्रीयता का नायक दूसरे राष्ट्रीयता के लिए खलनायक सिद्ध होता रहा है।[7]

19 वी शताब्दी के उतरार्द्धकी राजनैतिक प्रवृतियाँ

पुनरूत्थान के प्रश्न से जुडा हुआ प्रश्न 19 वी शताब्दी में भारत में मुसलमानों के कुछ वर्गों में इस प्रकार के राजनैतिक रवैयों का विकास था। यद्यपि यह रवैये साम्प्रदायिकता से परे थे लेकिन इन रवैयों ने बाद में विकसित हुई साम्प्रदायिक राजनीति के लिए पृष्ठभमी तथा कुछ औचित्य अवश्य प्रदान कर दिया। इस संदर्भ में सैयद अहमद खान का उदाहरण लिया जा सकता है। सैयद अहमद खान की राजनैतिक समझ और गतिविधियाँ हमेशा एक दोहरेपन से प्रभावित रही उन्होंने अपनी गतिविधियों का आरम्भ बिना किसी साम्प्रदायिक भेद–भाव के किया उनका मुख्य उद्देश्य मुसलमानों में सुधार लाने की प्रक्रिया आरम्भ करना, उन्हें आधुनिक शिक्षा की आवश्यकता की ओर प्रेरित करना और उन्हें सरकार संरक्षण दिलाना था। इसके लिए उन्होंने अलीगढ कॉलेज की स्थापना की जिसे बहुत से हिन्दुओं द्वारा आर्थिक सहायता मिली। उस कॉलेज में बहुत से हिन्दु छात्र और अध्यापक भी आए। स्वयं उन्होंने हिन्दु मुस्लिम सद्भावना के समर्थन में आवाज उठाई।[8]

लेकिन 1885 में कांग्रेस की स्थापना के बाद उनकी राजनैतिक समझ में काफी परिवर्तन आया। मुसलमानों के लिए प्रशासनिक पद हासिल करने तथा अंग्रेजी शासन के प्रति समर्थन दर्शाने की उनकी प्राथमिकता कांग्रेस की साम्राज्यवाद विरोधी नीति के एक दम प्रतिकूल थी। यद्यपि उनका कांग्रेस के साथ बुनियादी मतभेद अग्रेजी शासन के प्रति उसके रूख से था लेकिन उन्होंने साथ ही कांग्रेस को हिन्दु दल के रूप मे आरोपित करते हुए मुसलमान विरोधी दल बताकर उसका विरोध किया। इस प्रकार उन्होने साम्प्रदायिकता के कुछ मूलभूत तर्कों की नींव रख दी। इन तर्कों में से एक तर्क यह था की हिन्दु बहुसंख्यक हैं और यदि अंग्रेजों ने अपना शासन समाप्त करके शासन की बागडोर भारतीयों के हाथ में दे दी तो मुसलमानों के हितों को बहुसंख्यकों से नुकसान पहुँचेगा। यहि वह आधार था जिसके कारण सैयद अहमद खान ने प्रतिनिधि जनतांत्रिक संस्थाओं की स्थापना का विरोध किया उनके अनुसार जनतंत्र का अर्थ होगा बहुसंख्यकों के हाथ में शक्ति एकत्रित होना क्योंकि यह पासे के उस खेल जैसा होगा जिसमें एक आदमी के चार पासे हो और दूसरे के पास एक। उनका यह भी विचार था कि चुनाव प्रणाली सारी शक्ति हिन्दुओं के पास पहुँचा देगी। इस प्रकार सैयद अहमद खान ने उनके सहयोगियों की विचारधार के परिणामस्वरूप साम्प्रदायिकता के तीन तत्व स्पस्ट रूप से सामने आते हैं– (क) राष्ट्रवादी शक्तियों का विरोध (ख) जनतांत्रिक प्रक्रियाओं और संस्थाओं का विरोध (ग) अंग्रेजी शासन की स्वामिभक्ति।[9]

धर्म आधारित संगठनों का उदय

साम्प्रदायिकता के बार उभरने के बाद उसे सरकार का प्रोत्साहन मिल गया और फिर यह स्वयं ही पनपने लगी। ऐसा प्रतीत होता है कि यह एक ऐसी व्यवस्था थी जो बिना किसी सहारे के स्वयं मजबूत बन सकती थी। इस प्रक्रिया में साम्प्रदायिक संगठनों ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 1906 में गठित मुख्य साम्प्रदायिक संगठन मुस्लिम लीग और हिन्दु महासभा एक दूसरे के विरोधी थे लेकिन वे हमेशा एक दूसरे को औचित्य प्रदान करते हुए एक दूसरे को और भी साम्प्रदायिक बताते रहे। अपने प्रचार एवं राजनैतिक गतिविधियों द्वारा उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों को एक दूसरे के नजदीक नहीं आने दिया। एक दूसरे के प्रति अविश्वास की भावना फैलाई और इस प्रकार जन साधारण में साम्प्रदायिकता का प्रसार किया।

राष्ट्रीय आन्दोलन के कमजोर पक्ष

20 वी शताब्दी में साम्प्रदायिकता के विकास को राष्ट्रवादी आंदोलन द्वारा ही रोका जा सकता था। साम्प्रदायिक विचारधार राष्ट्रवादी विचारधारा एवं शक्तियों के द्वारा ही परास्त की जा सकती थी। लेकिन एक राष्ट्रवादी विचारधारा एवं शक्ति के प्रतिनिधि के रूप में भारतीय राष्ट्ररीय कांग्रेस जन साधारण में साम्प्रदायिकता फैलने से रोक नही सकी। कांग्रेस राष्ट्रवाद एवं धर्म निरपेक्षता के प्रति कटिबद्ध थी और भारतीयों में एकता लाने की इच्छुक थी। उसने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में साम्प्रदायिक शक्तियों के विरूद्ध संघर्ष भी किया लेकिन वह असफल रही।[10]

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है लेकिन फिर भी भारतीय राजनीति में आज भी साम्प्रदायिकता की समस्या बराबर बनी हुई है क्योंकि भारत में अनेक जातियों तथा अनेक धर्मो से सम्बंधित लोग निवास करते हैं। प्रत्येक धर्म के अनुयायी अपने–अपने धर्म की रक्षा करने में लगे रहते हैं तथा धर्म के आधार पर राजनीतिक दलों को प्रभावित करते रहते है। आज राजनीतिक दल अपने हितों की पूर्ति करने हेतु तथा चुनाव में वोट प्राप्त करने के लिए विभिन्न धर्मो या सम्प्रदायों का सहारा लेते हैं। मुसलमानों में पृथक्करण की भावना भी साम्प्रदायिकता का कारण बनी है, इसीलिए वे अपने आपको राष्ट्रीय धारा में सम्मिलित नहीं कर पाए।

निष्कर्ष

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि एकता समाज या राष्ट्र का बल है। सांप्रदायिकता समाज में बिखराव लाती है जिससे आर्थिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक प्रगति में अवरोध आ जाता है। राष्ट्रीय प्रगति रुकने से सभी नागरिकों के जीवनस्तर पर प्रभाव पड़ता है। सांप्रदायिकता

को विवेक, सद्भावना, सहिष्णुता एवं निःस्वार्थभाव द्वारा समाप्त किया जा सकता है। जिस प्रकार सूर्य की किरणें सारे संसार को आलोकित करती हैं पर सूर्य की परिधि में रहते हुए भी उनका आलोक प्रतिबद्ध नहीं है। दीपक का अस्तित्व दीपक की सीमा में सुरक्षित है पर प्रकाश पर किसी प्रकार का बंधन नहीं है। एक देश का मुखिया पूरे देश का नेतृत्व करते हुए भी किसी पार्टी विशेष से बंधा रहता है, उसी प्रकार संप्रदाय की सीमा में रहते हुए भी असाम्प्रदायिक बनना ही देश की प्रगति में सहायक हो सकता है। एक बार किसी ने गुरुनानक देव से पूछा कि जागृत कौन है ? वे बोले ''वह जो परमात्मा को चारों तरफ़ देखता है और माया में नहीं फँसता है। ऐसे व्यक्तिकी पहचान यही है कि उसका हृदय सर्वथा दया और सहानुभूति से ओतप्रोत रहता है।'' इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सहृदयतापूर्ण व्यवहार हमें जागृत बनाता है और जब हम जागृत अर्थात अप्रमाद की अवस्था में रहते हैं, तब हम स्वभाव और कर्म से असांप्रदायिक बन जाते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *चन्द्र, विपिन, कम्यूनिलिज्म इन मॉडर्न इंडिया, नई दिल्ली, 1987, पृ. 87*
2. *हसन, मुशीरुल, कम्युनल एंड पेन-इस्लामिक ट्रेंडस इन कॉलोनियल इंडिया, दिल्ली 1981, पृ. 20*
3. *चांद, एस.एम., स्वाधीनता संघर्ष और साम्प्रदायिक एकता, राष्ट्रीय एकता प्रकाशन, ब्यावर, 1993, पृ. 68*
4. *दीक्षित, प्रभा, कम्युनिलिज्म : ए स्ट्रगल फॉर पॉवर, नई दिल्ली, 1974, पृ. 79*
5. *हसन, मुशीरुल, नेशनलिज्म एंड कम्युनल पॉलिटिक्सन इंडिया 1916-1928, नई दिल्ली, 1979, पृ. 36*
6. *जकारिया, रफीक, राइज अ फ मुस्लिम्स इन इण्डियन पोलिटिक्स, सोमैया पब्लिकेशन्स, बम्बई, 1970,पृ. 98*
7. *दुर्गा, दास, इण्डिया फ्राम कर्जन टू नेहरु एण्ड आफ्टर क्रिसेट प्रेस, लन्दन, 1969, पृ. 16 7.7.*
8. *प्रकाश, चन्द्र, हिस्ट्री ऑफ दी इण्डियन नेशनल मूवमेंट, विकास पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1997, पृ. 56 8.8.9.*
9. *मेहता एण्ड पटवर्धन, दी कम्युनल ट्राइएगिल इन इण्डिया, इलाहाबाद, 1942, पृ. 53*
10. *मेनन, वी.पी., दी ट्रांसफार अ फ प वर इन इण्डिया, ऑरियन्ट लोंगमेन, कलकत्ता, 1957, पृ. 65*

Judicial Activism in Scenario of Good Governance Structure

Dr. Ram Chandra
Department of Political Science, Jai Narain Vyas University, Jodhpur

shodhshree@gmail.com

Abstract

According to Lord Bryce, 'There is no better test of the excellence of a government than the efficiency and independence of its judicial system'. The Judicial system as a whole, considered as a subdivision of administration, includes a numerous body of officials who aid in bringing cases before the courts, in administering Judicial procedure, and in carrying out judicial decisions. Independence judiciary and judicial system afford to take its decision on its own being freed from the external influence and intervention of others organs especially executive branch of the government. In modern sense, independence of judiciary means that judges are in a position that they afford to render justice in accordance with their own sense of justice without submitting to any kind of pressure or influence be it from executive or legislative or from the parties themselves.

Keywords: *Judicial Activism, Effectiveness and efficiency, Participation, Transparency, Responsiveness, interventions, Accountability.*

In recent years, courts have risen in power and the Indian Supreme Court has rightly been pointed to as an example of this. In many ways the Indian Court has become a court of good governance that sits in judgment over the rest of the Indian government. This Article argues that the Court has expanded its mandate as a result of the shortcomings (real, perceived, or feared) of India's representative institutions. The Indian Supreme Court's institutional structure has also aided its rise and helps explain why the Court has gained more influence than most other judiciaries. This Article examines the development of India's basic structure doctrine and the Court's broad right to life jurisprudence to explore how the Court has enlarged its role

Conception of Judiciary

According to Lord Bryce, "There is no better test of the excellence of a government than the efficiency and independence of its judicial system"[1] Professor James Will ford Garner said, "A society without Legislative organs is conceivable but a civilized. State without judicial organ is hardly conceivable"[2].Generally the Judiciary is the system of courts that interprets and applies the law in the name of the state and also provides a mechanism for the resolution of the disputes. The Judiciary of a country comprises all courts and tribunals which interpret law, settle legal disputes, enforce rights of the citizens and impose penalty to the offenders.[3]The Judicial system as a whole, considered as a subdivision of administration, includes a numerous body of officials who aid in bringing cases before the courts, in

administering Judicial procedure, and in carrying out judicial decisions.

Concept of Independence of Judiciary

We can define the independence of judiciary basically in two perspectives - Traditional approach Modern approach According to traditional approach, the independence of judiciary means a fair and neutral judicial system and practice which can afford to take its decision on its own being freed from the external influence and intervention of others organs especially executive branch of the government. In modern sense, independence of judiciary means that judges are in a position that they afford to render justice in accordance with their oath of office and only in line with their own sense of justice without submitting to any kind of pressure or influence be it from executive or legislative or from the parties themselves.[4]In another senses, Independence of Judiciary comprise four meanings. Substantive independence of the judges. Personal independence of the judges Collective independence of the judges and internal independence of the judges. It interprets the laws arises, because in such cases the law is not clear. Judiciary plays a great role in this matter. The courts protect many rights by the state through the laws of the parliament.

Decides the cases

Many cases relating to the disputes between the citizens, or between the government and the citizens, are brought before the courts. The citizens are brought before the courts. The courts given their decision on such disputes.

Guardian of the constitution

Of a law passed by the congress or parliament violates the constitution, that law shall be declared as void because the constitution is the highest law of the loan and it is the duty of the courts to protect it. For the protection of constitution many laws have been declared illegal which violated any law or any clause of the constitution. In many countries of the world the Supreme Court has given the right in the constitution to render advice on the Legal Mattes when asked for by the president.

Good Governance

The concept of good governance often emerges as a model to compare infective economics or political bodies with able economic and political bodies. The concept centers around the responsibility of governments and governing bodies to meet to meet the needs of the masses as opposed to select groups in society. Because governments treated as most successful the team good governance can be focused on any one form of governance, aid organizations and the authorities of the developed countries often will focus the meaning of good governance to a set of requirement that conform to the organization's agenda, making "good governance" imply many different things in many different content. In other word good governance is an umbrella concept that covers a set of issues of human life depending on the person's concern and understanding of reality. Good governance is means the manner is which power is exercised. In the management of countries economic and social resource for the development in an efficient and transparent ways.[5]

Good Governance is epitomized by predictable, open and enlightened policy making is a bureaucracy imbued with professional ethos on executive arm of the government accountable for its action; and a strong civil society participating in the public of fairs and all behaving under the rules law. Good governance involves the self-organizing and inters organizational networks characterized by interdependence resource exchange rules of the game and significant autonomy from the state.

Good Governance: Meaning and Concept

Good Governance: Meaning and Concept In terms of distinguishing the term governance from government, "governance" is what a "government" does. It might be a go political, a corporate government, a sociol-political government, or any number of different kinds of government. Governance is the dynamic exercise of management power and policy, while government is the instrument that does it. Good is a term used with great flexibility; Depending on the context, good governance has been said at various times to encompass: full respect of effective participation, human rights, the rule of law, multi-actor partnerships, and accountable processes, political pluralism, transparent and institutions, an efficient and effective public

sector, legitimacy, access to knowledge, information and education, political empowerment of people, equity, sun tainability and attitudes and values that foster responsibility, solidarity and tolerance.[6]

Origin and emergence of the concept of good governance

"Good governance" was initially expressed in a 1989 World Bank publication. In 1992, the Bank published a report entitled, Governance and Development, which explored the concept further and its application. In 1997, the Bank redefined the concept "good governance" as a necessary precondition for development. Good governance is to promote and sustain holistic and integrated human development. The central focus is to see how the government enables, simplifies and authorse its people, regardless of differences of caste, creed, class, and political ideology and social origin to think, and take certain decisions which will be in their best interest, and which will enable them to lead a clean, decent, happy, and autonomous existence.

Good about governance

Good Governance manages and allocates resources to respond to combined problems of its citizens. Hence states should be assessed on both the quality and the quantity of public goods provided to citizens. The policies that supply public goods are guided by principles such as human rights, democratization and democracy, transparency, participation and decentralized power sharing, sound public administration, accountability, rule of law, effectiveness, equity, and strategic vision. The Human Development Report issued insists on "good" governance as a democratic exigency, in order to rid corruption, provides rights, the means, and the capacity to participate in the decisions that affect their lives and to hold their governments accountable for what they do.

Key elements of good governance

Good governance has 8 major characteristics. It is participatory, consensus oriented, accountable, transparent, responsive, effective and efficient, equitable and inclusive and follows the rule of law. It assures that corruption is minimized, the views of minorities are taken into account and that the voices of the most vulnerable in society are heard in decision-making. It is also responsive to the present and fixture needs of society-

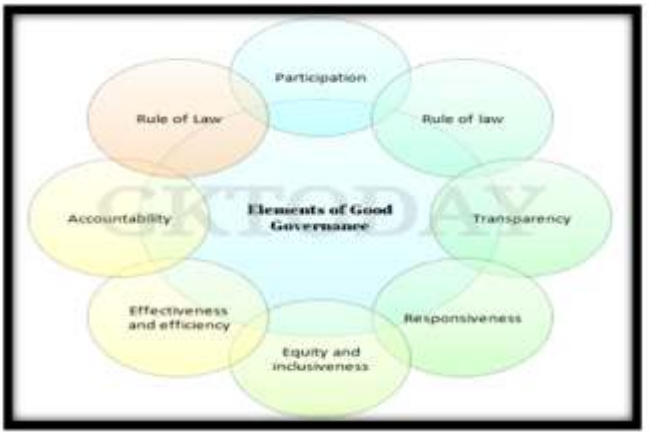

Participation

Good governance requires that civil society has the opportunity to participate by both men and women during the formulation of development strategies. This aspect of governance is an essential element in securing commitment and support for projects and enhancing the quality of their implementation. Participation needs to be informed and organized. This means freedom of association and expression and an organized civil society should go hand in hand.

Rule of law

Good governance requires a fair, predictable and stable legal framework enforced impartially. Full protection of human rights, especially minorities should be covered. Impartial law enforcement

requires a judiciary to be independent and police force should be impartial and incorruptible.

Transparency

Transparency in government is an important precondition for good governance, and those decisions taken and their enforcement are done in a manner that follows rules and regulations. Transparency ensures that enough information is provided and that it is provided in easily understandable forms and media.

Responsiveness

Good governance requires the institutions to serve all stakeholders in a given time-frame. There are several actors and viewpoints and the different interests in society needs mediation. The best interest of the community should be analysed and achieved which requires a broad and long-term perspective on what is needed and how to achieve the goals of sustainable development.

Equity and inclusiveness

A society's well being depends on ensuring that all men and women have opportunities to improve or maintain their well-being.. This requires all groups, especially the most vulnerable, should have opportunities to improve or maintain their standards of life.

Effectiveness and efficiency

Good governance means Processes and institutions produce results that meet needs while making the best use of resources. The concept of efficiency covers the sustainable use of natural resources and the protection of the environment.

Accountability

It is a key requirement of good governance. Both Public and private sector and civil society organizations must be accountable to the public and to their institutional stakeholders. An organization or an institution is accountable to those who will be affected by its decisions or actions. Accountability can be enforced only with transparency and the rule of law.

Rule of Law

Rule of law supports the demand for equity and fairness and means to be impartial, not corrupt and to protect the human rights of all. These are the leading criteria becoming benchmarks one has to keep in mind when striving for good Governance in the decision-making processes.[6]

Judicial Activism in Favoured of Good Governance

Basic structure doctrine's current triumph is not just a result of the judiciary's evolving political fortunes, but also of the Court's justifications for the doctrine. The Court taps into an understanding that constitutional rule based solely on "we the people," and certainly "we the constitutional amendment," may present great danger to a liberal democratic view of good governance, and can even be viewed as illegitimate. The Supreme Court asserts two justifications for this argument. First, it maintains that the Constitution, and the history out of which it was created, implicitly control Parliament's amendatory power. Second, it claims that Parliament's amendatory power is trumped by removed and almost metaphysical civilizational norms that form the necessary skeleton of good governance.

The Court grounded the basic structure doctrine in the tangible historical moment of the creation of the Constitution. rights, judicial review, democracy, and other elements of the basic structure doctrine are part of the story of the nation that should not be changed quickly, and that this constitutional narrative should instead be safeguarded by the nation's justices. If the Court's actions have some Burke an justification, though, Edmund Burke himself would probably not have agreed with the Court's approach. India's Constitution was born out of the Congress Party leading the nation's long and popular struggle for independence. At the end of this successful struggle, the Party became a "credible vehicle for popular sovereignty." The Court does not argue, however, that there are no other constitutional moments in Indian history with sufficient authority to change these fundamental principles articulated by the Constituent Assembly (although this argument is plausible). Rather, it argues that no future constitutional moments (short of a new constitutional convention) could change these fundamental features of the Constitution. In finding that the Constitution's

creation is the only pure constitutional moment and certain features of it cannot change with the people's desires or the needs of the times, the Court privileges this historical moment more than Burke likely would.

The Court justifies the basic structure doctrine not only with the historical moment of the founding, but also with a conception of what a properly ordered society should be. It, therefore, makes a good governance argument. Even if the Court does not acknowledge it explicitly, this second justification allows the Court to potentially take into account the changing needs of the country in the future. It also provides a justification for the doctrine that is decidedly different from the reasoning one would find in the American liberal tradition—that is, the idea that a constituent body's enactments must not merely conform to the will of the people, but also to the norms of good governance. The Court roots its conception of such a correctly structured society in the Constitution, the practices of democratic and civilized nations as documented through history, and the requirements of bringing order to a country like India. As already noted, in *Indira Gandhi*, the Court challenged Parliament's ability to pass an amendment barring the judiciary from reviewing the election of the Prime Minister. The five-justice bench produced five opinions, but each struck down some provisions of the questionable mend ment under the basic structure doctrine. The Court invoked broader principles of civilization or good governance for two purposes. First, the justices wished to justify that judicial review of the amending process (i.e.,the basic structure doctrine) is part of a modern amendment process.

Second, through the same logic, the justices argued that judicial review itself is such a closely held norm of modern civilization that it must be part of the Constitution's basic structure, and so Parliament cannot protect election outcomes from judicial review through amendment. Justice Beg's opinion in *Indira Gandhi* supports the basic structure doctrine with an argument that is both pragmatic in its fear of sovereignty resting solely in the people's representative institutions, and idealistic in its embrace of the Constitution. He found that "our concepts of sovereignty must accord with the needs of the people of our country. The concept of the Supremacy of the Constitution is, undoubtedly, more suited to the needs of our country than any other so far put forward. It not only places before us the goals towards which the nation must march but it is meant to compel our Sovereign Republic.

In his concurring opinion, Justice Chandra chad finds that even despots recognize the legitimacy that comes with judicial checks on their power. He then echoes Justice Mathews's remarks that this is certainly true in a modern democracy as well: The most despotic Monarch in the modern world prefers to bear med, even if formally, with the opinion of his Judges on the grievances of his subjects. . . .I find it contrary to the basic tenets of our Constitution to hold that the Amending Body is an amalgam of all powers—legislative, executive and judicial. "Whatever pleases the emperor has the force of law" is not an article of democratic faith. The basis of our Constitution is a well-planned legal order . . .Justice Beg, in his interpretation of the basic structure doctrine in *Indira Gandhi*, discusses the different checks on sovereign power that have existed throughout history to show that judicial review is an integral part of good governance. Amongst several examples, he writes: The ideal King, in ancient India, was conceived of primarily as a Judge deciding cases or giving orders to meet specific situations in accordance with the Dharma She stra. It also appears that the actual exercise of the power to administer justice was often delegated by the King to his judges in ancient India.

Although Justice Khan rejects the idea that the right to property falls under the basic structure doctrine, justices often invoke the fundamental rights of the Constitution as being part of or at least related to its basic structure. Sometimes the justices rely on a natural rights argument to make this claim. Justice Reedy in *Kesavnanda Bharati* finds that "the framers of our Constitution could not have provided for the freedoms inherent as apart of the right of civilised man to be abrogated or destroyed." Justice Gibbs, in the same case, seems to find at least some fundamental rights"inalienable."183 More often, though, justices do not claim that fundamental rights are natural or inalienable, but instead that they are necessary for good governance in a modern democracy. In this way, later judicial reasoning on

the relationship of fundamental rights to the basic structure doctrine echoes Justice Palekar's view in his dissent in *Kesavananda Bharati*: The absolute concepts of Liberty and Equality are very difficult to achieve as goals in the present day organized society. The fundamental rights have an apparent resemblance to them but are really no more than rules which a civilized government is expect follow in the governance of the country whether they are described as fundamental rules or not.

To find constitutional justification for its expanded article 21interventions, the Court increasingly cited the Constitution's preamble. The preamble states that India is a socialist state that seeks social, economic, and political justice, works for equality of status and opportunity, and promotes fraternity to assure individual dignity. The Court also frequently appealed to the Directive Principles for constitutional justification, indirectly making many of the Directive Principles justice able through its right to life jurisprudence. The Directive Principles give shape to the concept of reasonableness envisaged in [the fundamental rights] . . . . By defining the national aims and the constitutional goals, they set for the standards or norms of reasonableness which must guide and animate governmental action. Any action taken by the Government with a view to giving effect to any one or more of the Directive Principles would ordinarily . . . qualify for being regarded as reasonable, while an action which is inconsistent with or runs counter to a Directive Principle would incur the reproach of being unreasonable. . . .What according to the founding fathers constitutes the plainest requirement of public interest is set out in the Directive Principles and they embody *par excellence* the constitutional concept of public interest.

The increasing invocation of the Directive Principles and the preamble to justify the Court's broadening interventions sits side-by-side with appeals to public interest or civilization to support and define its right to life jurisprudence. It said: Basic needs of man have traditionally been accepted to be three—food, clothing and shelter. The right to life is guaranteed in any civilized society. That would take within its sweep the right to food, the right to clothing, the right to decent environment and area accommodation to live in. The difference between the need of an animal and a human being for shelter has to be kept in view.

The Court has several other times also picked up on this theme that the right to life means something more than mere animal existence. Justice Iyer laments in a case in which he orders a city to improve its sewage system, "the crying demand for basic sanitation and public drains fell on deaf ears."[7] In the face of such neglect, Justice Iyer remarks, "one wonders whether our municipal functional irrelevances, banes rather than booms and 'lawless' by long neglect, not leaders of the people in local self-government. "When new challenges are thrown open, the law must grow engineering to meet the challenges made to cope with the contemporary demands to meetsocio-economic challenges under rule of law and have to be met either by discarding the old and unsuitable or adjusting legal system to the changing socio-economic scenario.

To remain relevant to an economically desperate population with an often unresponsive government, the Court has reasoned that it must expand its mandate. The Court's broad interpretation of its powers under the Constitution and its invocation of minimum core requirements of civilized governance are central to justifying these larger social interventions.

Conclusion

One should not mistake the rise of the good governance judiciary in India as the rise of judicial rule. Instead, it marks a new form of coexistence between democratic and good governance principles in ruling; one in which, as we have seen, the judiciary must face considerable enforcement and legitimacy concerns. This coexistence is likely to evolve substantially in the coming years, creating lessons for other courts with similar good governance roles.

First, representative institutions in India may begin to crowd out the Court by asserting themselves more strongly or increasing their (real or perceived) competence. Such changes could occur naturally within these institutions' current formation, or alternatively through their re-structuring.There have been several high-profile suggestions to strengthen the credibility

and cohesion of India's representative institutions that would affect their relationship with the judiciary. The National Commission to Review the Working of the Constitution has proposed that Parliaments eats should be won by a clear majority of the vote to combat political fragmentation and create more legitimacy. Alternatively, Arun Shorie has suggested weakening the powers of Parliament and, instead, creating a strong President to offset the power of a strong Supreme Court. Others have argued that India needs more local democracy and autonomy so that citizens have a vested and meaningful stake in decisions that affect their lives.

Second, no matter how the more representative institutions evolve, the Court could end up limiting its own authority. Justices on the Court may advocate a narrower role for themselves because of outside pressure or their own personal understandings of the Court's role. They could also unintentionally reduce their authority by making highly publicized bad governance or unpopular decisions. There is already a growing perception of corruption on the Court, which could further weaken the Court's image and power.[8] Further, the public may grow tired of the judiciary's right to life decisions only being partially followed or not at all. The Court's institutional capacity deficit could eventually lead to perceived overstretch and a legitimacy crisis.

Third, the Court is facing a fracturing of its own authority. The judiciary, like Parliament, has seen an increase in the creation and use of other bodies that attempt to bypass its own shortcomings. The development of independent electricity and telecommunications authorities has also seen the rise of independent tribunals that take disputes in these areas out of the realm of lower courts and High Courts. Human rights commissions, such as the National Human Rights Commission or the Child Rights Commission, have been created in part because the judiciary has failed to check abusive government policies through public interest or ordinary litigation. Currently, the Supreme Court has the power to review the decisions of these bodies or otherwise monitor them (at least theoretically), but their proliferation points to within the judiciary itself. How these bodies evolve, and whether they gain more independence, will likely affect how the Court interprets its good governance role.

Finally, other government bodies besides the legislature, executive, or judiciary, may gain authority. Already, the rise of some of the unelected bodies in India, such as the Election Commission and the Securities and Exchange Board, has been discussed. These and other unelected bodies will likely play an important future governance role in India. India may also see the rise of more elected bodies. For example, water user associations, which are representative bodies of local land owners, have prolife rated in India in an attempt to decentralize decision-making over government irrigation projects. Other elected or unelected bodies, either local or national, could arise to play a central role in governing.

References

1. *Bryce James; Modern Democracies, 1929, P-384*
2. *James Wilford Garner; Political Science and Government; 1955, Page 684;*
3. *Md Abdul Halim; constitution constitutional law and politics: Bangladesh perspective; published by CCD Foundation; Planners Tower; Sonargaon Road; Dhaka-1998; P-339*
4. *Muhammad Badrul Hasan, "Stamford Journal of Media, Communication and Culture, Published by Dept, of Journalism and Media Studies, Stamford University of Bangladesh. P.145-146*
5. *World Bank report 1993). Good governance and sustainable development, A UNUP policy document, 1997*
6. *http://www.gktoday.in/blog/good-governance-meaning-and-concept/*
7. *Municipal Council, Ratlam v. Shri Vardichand et al., (1981) 1 S.C.R. 97, 100.*
8. *Venkitesh Ramakrishnan, Speaker Expresses Surprise over CJI's reported Stand on Hearing Teesta Setalvad, THE HINDU, Feb. 25, 2008.*

Positive Correlation Between the Amount of Phenolic Content and Degree of Resistance to Plant Disease

Rohini Maheshwari
Lecturer, Government College, Bundi

shodhshree@gmail.com

Abstract

Plant tissues contain a large number of phenolic compounds. Phenolic substances are known to participate in a number of physiological processes which are essential for growth and development and may occur in a variety of simple and complex forms There is a Positive correlation between the amount of phenolic content and degree of resistance to plant disease. All the biochemical experiments were conducted to study the effect of blast disease caused by Pyricularia oryzae, on rice and was estimated in terms of total Phenol estimation. The phenol content was more in amount in infected plants than in healthy ones. The increase in phenolic content was ranging from 24.79 percent to 52.43 percent in infected plants to healthy plants at all the growth stages.

Keywords*: phenolic content, resistance.*

Plant tissues contain a large number of phenolic compounds. The most important of which are simple phenols, coumarine, most flavonoids, prosthetic groups, some enzymes, plant pigments and complex derivatives. Phenolic substances are known to participate in a number of physiological processes which are essential for growth and development and may occur in a variety of simple and complex forms. Infection in certain diseases is characterized by increased synthesis of certain precursors of phenolic compounds and oxidation products of phenolics, such as quinones which exhibit more toxicity to micro-organisms than their reduced forms.

Positive correlation between the amount of phenolic content and degree of resistance to plant disease has been evidenced by several workers such as Newton and Anderson (1929) in rust resistance in wheat, Bhatia *et al* (1972) in tomato plants. Sharma *et al* (1992) studied biochemical relationship in resistant and susceptible cultivars of maize with *Fusarium* leaf blight disease, the quantity of phenolics showed an increasing trend in response to infection. Increased total phenol content had also been reported, from rice plant infected by gall midge *Orseolia oryzae* (Amudhan *et al* 1999), and in barley plant having infection of leaf stripe disease (Paul and Sharma 2002). The biochemical contents of a plant exhibit remarkable changes due to fungal infection which in turn affect the status of plant health. This investigation also emphasizes on monitoring the changes in endogenous levels of Phenol in rice plant in response to blast disease.

Material and Methods:

All the biochemical experiment was conducted to study the effect of blast disease caused by *Pyricularia oryzae,* on rice in terms of total Phenol estimation. For this purpose susceptible Pusa Basmati – 1121

cultivars were selected for study. Effect of blast disease caused by *Pyricularia oryzae,* on rice was estimated in terms of biochemical estimations. For this purpose susceptible Pusa Basmati – 1121 cultivars were selected for study. The surface sterilized seeds of above cultivars were sown and seedlings were then transplanted in pots containing sterile soil under green house conditions. At 10 days after transplantation, 60 rice plants were inoculated with spore suspension of *P. oryzae* at the concentration of 10^6 conidia per ml. 60 plants were kept healthy (uninoculated) that served as healthy control. The Plants were tested for the physiological and biochemical estimations after every 30, 60, 90days of transplantation and at maturity (120 days) in both healthy and infected situations.

Healthy and blast infected rice plant aerial parts were taken as samples. One gram of each material was homogenized with 10ml of 80% alcohol in a mortar and pestle. Sample was centrifuged at two thousand rpm for ten minutes. The supernatant was collected and used for total phenols estimation. To the 1ml of extract folin-ciocalteau reagent (1 ml) was added followed by 2ml of Na_2CO_3. The reaction tubes were shaken vigorously and heated for 1 minute in water bath and cooled under running tap water. The reaction mixture was diluted to 25ml, with distilled water. Absorbance was recorded at 650nm in spectrophotometer. Phenol content in the sample was calculated using standard curve prepared with catechol. (Bray and Thorpe 1954).

Observation

The investigation of both, the Physiological parameters and Biochemical constituents, were analyzed in both healthy and blast infected rice plants. The phenol content was more in amount in infected plants than in healthy ones. The values calculated were 1.24 mg/g,, 2.12 mg/g,, 2.593 mg/g, 2.993 mg/g, in healthy plant and 2.607 mg/g, 2.857 mg/g, 3.817 mg/g and 3.980 mg/g in infected plant at 30, 60, 90 days of growth and at maturity (120 days) .Among all the biochemical components of different hosts, phenols stand out as the most important component in imparting resistance to several plant diseases. The quantity of phenol in diseased plant was significantly higher than that of healthy plant. The increase in phenolic content was ranging from 24.79 percent to 52.43 percent in infected plants to healthy plants at all the growth stages.

Result and Discussion

Among all the biochemical components of different hosts, phenols stand out as the most important component in imparting resistance to several plant diseases. High concentration causes an instant lethal action by a general tanning effect while, low concentration causes gradual effect on the cellular constituents of the parasite. (Dasgupta1988). The quantity of phenol in diseased plant was significantly higher than that of healthy plant. The increase in phenolic content was ranging from 24.79 percent to 52.43 percent in infected plants to healthy plants at all the growth stages. The results of the present study were also in accordance with the findings of Dhillon *et al* (1992), Chander (1994) and Gawande *et al* (2002) while working with powdery mildew of grapes, chilli and foliar diseases of groundnut respectively. Gopalkrishan (2009) observed the per cent increase in phenolic content of infected boot leaf sheath over healthy boot leaf sheath as 37.71, 29.79 and 43.10 in ADTRH 1, CO 43 and A D T 39, rice cultivars respectively during sheath rot disease of rice plant.

Accumulation of phenols at infection site in higher levels might be the tendency of the host to isolate the pathogen at original site of infection and to prevent the rest part from infection (Legrand 1983, Ride 1983) or may be due to either enhancement of synthesis or translocation of phenolics to the site of infection or hydrolysis of phenolic glycosides by fungal glycosides to yield free phenols, which helped in arresting the spread of the pathogen (Sharma *et al* 1983). There was significant positive correlation between phenolic content and disease resistance. (Dhillon *et al*1992). In this study also, higher levels of phenols was observed in diseased plants at all the stages of growth.

In recent years, it is becoming increasingly evident that several natural and induced defense mechanisms operate in host plants against different diseases. One such defense mechanism is the presence of certain compounds inhibitory to the pathogen. Comparative studies on physiological biochemical changes during

pathogenesis of infected plant as compared to healthy plats has often helped in understanding the nature and mechanism of resistance, which could be exploited in searching for disease resistant genotypes and breeding for disease resistance. This study will help to understand some aspects of biochemical defense mechanisms, operating in the host.

References

1. *Amudhan J, Rao U P and Benturv J S (1999) Total phenol profile in some rice varieties in relation to infestation by Asian rice gall midge or Orselia oryza, Plant Physio, 23(1):154-156.*
2. *Bhatia I S, Uppal D S and Bajaj K C(1972) Study of phenolic contents of resistant and susceptible varieties of tomato Lycopersicon esculentum in relation to early blight disease. Indian Phytopathology, 25: 231 – 235.*
3. *Bray H G and Thorpe W Y (1954) Analysis of phenolic compounds of interest in metabolism. In: Moth Biochem: Annual (Ed.) Glick, D. Intersarnae Publishing Inc New York, 1: 27-52*
4. *Chander MS (1994) Biochemical properties associated with resistance to powdery mildew in chilli. Plant Dis. Res., 9(1):103-104.*
5. *Dasgupta M K (1988) Principles of Plant Pathology. Published by Allied Publishers Private Limited, pp. 470-500.*
6. *Dhillon WS, Bindra AS and kapoor SP (1992). Some Biochemical Changes induced in powdery milder infected grapevine leaves. Pl. Dis. Res. 7(2):248-250.*
7. *Gawande VL, Patil JV, Naik RM and Kale AA (2002). Plant biochemical defense against Powdery Milder (E. polygon's DC.) disease in mungbean (Vigna radiata L.) J.Pl. Biol, 29(3): 337-341.*
8. *Gopalakrishnan C (2009) Influence of biochemical composition of rice leaf sheaths on sheath rot incidence. International Journal of Plant Protection :2 (1): 50-53*
9. *Legrand M (1983) Phenylpropanoid metabolism and its regular in disease In:Biochemical Plant Pathology. Ed.Callow, J.A. Chichester, Wiley, P.484.*
10. *Newton R and Anderson J A (1929) .Studies on the nature of resistance in wheat – IV phenolic compounds in wheat plants. Canadian Journal of Research, 1: 86 – 89.*
11. *Paul PK and Sharma PD (2002). Azadirachta indica leaf extract induces resistance in barley against leaf stripe disease. Physiological and Molecular plant pathology. 61 :3-13*
12. *Ride JP (1983), Cell walls and other structure barriers in defence. IN: Biochemical Plant Pathology. Ed. Callow, J.A., Chichester, Wiley, pp.484.*
13. *Sharma JR, Mishra AB and Krishna Jha (1992) Biochemical relationship in resistant and susceptible cultivars with Turcicum leaf blight disease in maize. Indian Phytopathology, 45:241–243.*
14. *Sharma SG, Ram Narayan, Sangam Laland Chaturvedi C (1983).Role of phenolic compounds in resistance of maize to leaf blight caused by Drechslera state of Cochliobolus heterostrophus. Indian Phytopathol., 36(1) : 43-46.*

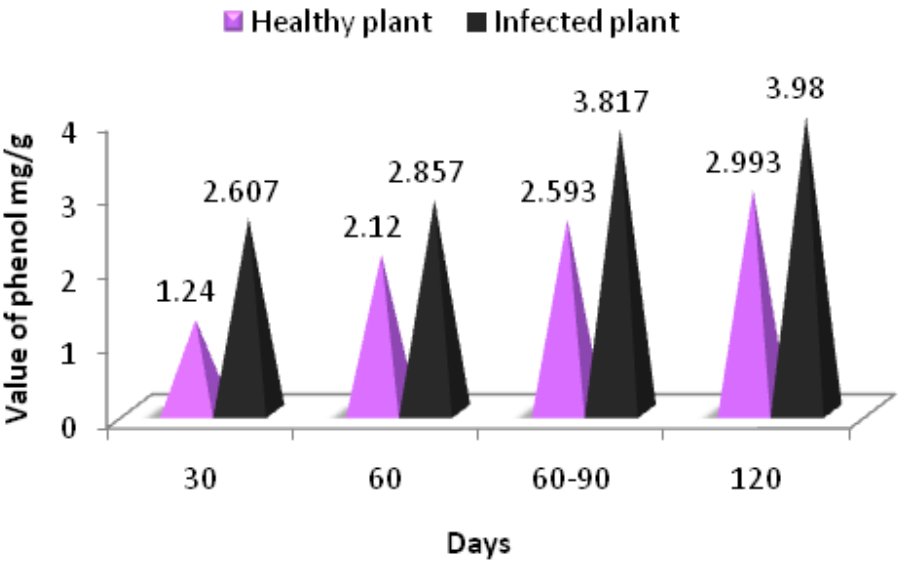

Comparison of PHENOL mg lg content in rice Plant after p. oryzae infection at diffenrent growth stages (observations are mean of tree replicates)

S N	Metabolite	Plant Type	Time Interval								Mean %increase or decrease over healthy plant
			After 30 days	%increase or decrease over healthy plant	After 60 days	%increase or decrease over healthy plant	After 90 days	%increase or decrease over healthy plant	After 120 days	%increase or decrease over healthy plant	
	Phenol	I	.64	+52.43	.78	+25.79	.82	+32.06	.93	+24.79	+33.76
1.	mg/g	H	1.24		2.120		2.593		2.993		

H= IN Healthy plant ; I = In Infected plant ; I=Increase ; = Decrease

Effect of Environment on Stress and its Management : With Special Reference to The Participants of Special Summer School, HRDC, Shimla (Batch 2016)

Dr. Shubhra P. Kandpal
Assistant Professor, M.B.G.P.G. College, Haldwani (Uttrakhand)

shodhshree@gmail.com

Abstract

Oxford dictionary defines stress, "A state of mental or emotional strain or tension resulting from adverse or very demanding circumstances." Stress can be caused by many factors in the environment like pollution, noise, over-crowding, extreme cold/ hot, poor ventilation, poor lighting, dust/ fume etc. The present study shows the behavioural function between person and environment. These stressors can affect human health at home or at workplace. To identify the stressors at workplace, the researcher has drafted a questionnaire having twelve variables related to physical as well as mental health. This questionnaire was circulated to the participants of Special Summer School, HRDC Shimla (Batch 2016). Every question has three options: Never, Sometimes and Often. Problem of excessive heat/ cold is identified as the biggest cause of stress at the workplace while chest pain is found the least problematic. At the end of the studies, the researcher has mentioned several ways and techniques to manage stress so that one can live life happily and positively.

Keywords: *Stress, Effect of environment on stress Strees management.*

Human populations have put pressure on their natural surroundings throughout history. Hence the world is facing now the global environmental challenges. Rapid population growth in this century is critical component to understand. The human population exerting strains upon their natural environment or surrounding is nothing new.

There is increasing awareness that our health and the environment in which we live are closely related. In 2006, the World Health Organisation (WHO) estimated that 24% of the global burden of disease was due to mutable environmental initiatives from Governments and other organizations.

The natural and built environment can be a major determinant of health and how we live. Our surroundings can affect our health through a variety of channels, through exposure to physical, chemical and biological risks factors or by triggering behavioural changes. Likewise, there is a growing awareness that humans, through their intervention in the environment, play a vital role in reducing health risks.The study entitled "Effect of Environment on Stress and its Management" shows how stress and environment are co-related with each other. While some workplace stress is normal, excessive stress can interfere One's productivity and impact on physical and emotional health.

First of all the question arises what is stress? Stress is not a new issue. However, in recent years it has become more evident. It can be defined as "Environmental factors which exert undue strain or pressure on a person".

Oxford dictionary defines stress, "A state of mental or emotional strain or tension resulting from adverse or very demanding circumstances" Stress management means trying to control and reduce the tension that occurs in stressful situations. This is done by making emotional and physical changes.

As we all know that the globalization regime has led to an increase in income as well as increase in poverty, inequalities, regional disparities and above all environment stress of various types. The behavioural function between person and environment and if the person's environment is not much acceptable then the person starts behaving in an undesirable manner which is reflected in the form of stress. This is called as Environmental Stress. It is originated by adverse environmental conditions interfering with normal human functioning and is considered as dangerous for today as well as for the future.

Stress can be caused by many factors in the environment like pollution, noise, overcrowding, extreme cold, extreme hot etc. which drive the person to behave in an indifferent way. Any one of these environmental stressors can affect human health at home or at work place. Stress from any source may affect an employee's health and performance at work. Causes of work-place stress can be associated with a wide range of factors. The nature of the job or some aspects of the job may be strongly stressful. Daily hassles which include typical events of the traffic or the jam or the ordinary life that may cause frustration, tension or irritation. The stress provide by the urban environment is often reflected in the form of physical turmoil, physical illness and the reduced social interaction. The effect of different environmental stressors on people indicates that they can impact people's behaviour, mood, cognitive functions, physical health or psychological well-being.

Many employees experience stress because they are unable to participate in any decision making in relation to their own job, thus feeling that they have no control at all over their destiny at work. Baring, repetitive and monotonous tasks can also be stressful. Other factors like working hours and workload also affect one's life.

The working environment may contain a minefield of potential stressors baldly designed workstations, inadequate or inappropriate cooling / heating, ventilation or lighting, inadequate holidays, long hours, even pay according to their performance can be major source of stress. Each individual exhibits differently to the varying levels of pressure to which they are exposed, but when the pressure becomes excessive for the individual, it can result in physical symptoms. These symptoms vary vastly from one person to another. The symptoms may include: sleeplessness, irritability, backache, headache, neck ache, anxiety, nausea etc. This in-turn may lead to increased absenteeism, impaired work performance and a possible increase in workplace accidents.

To identify the stressors at workplace, The research has drafted a questionnaire which was circulated to the participants of Special Summer School, H R D C, Shimla (Batch 2016).

Objectives

- To measure the level of stress of participants of Special Summer School H R D C Shimla at their work place.
- To find out the causes of stress among the participants at their work place.

Assumption

- The participants of Special Summer School HRDC Shimla having the stress at their work place .
- This stress can be overcome.

Method: The method of research is determined by the nature of the problem .the present study is a survey research which is one of the types of descriptive research.

Tool Used: A self-made questionnaire is constructed by the researcher for this purpose having twelve variables related to stress at work place.

Sample : The all thirty participants of special summer school course of HRDC Shimla (Batch 2016) were taken as sample. These participants are from thirteen different States of India. So purposive sampling technique is used in the present study.

Analysis and Interpretation of Data: In this study a self made tool "The Confidential Stress Questionnaire" is applied for primary data collection. In this questionnaire 12 variable related to physical as well as mental health are included. Every question has three options – Never, Sometimes and Often. The candidate has to tick on one of them. All the questions are formed to measure the level of stress of the participants at their work place. The researcher calculated percentage to explain the findings of the study. Simple percentage technique (%) is used to explain the result of the study.

The first item of the questionnaire is related to noise pollution. 13 % participants agree that they never face any type of noise pollution at their working place, while 27 % face this situation often and 60 % of the candidates agree that sometimes they face this noisy situation.

Sample : The all thirty participants of special summer school course of HRDC Shimla (Batch 2016) were taken as sample. These participants are from thirteen different States of India. So purposive sampling technique is used in the present study.

Analysis and Interpretation of Data: In this study a self made tool "The Confidential Stress Questionnaire" is applied for primary data collection. In this questionnaire 12 variable related to physical as well as mental health are included. Every question has three options – Never, Sometimes and Often. The candidate has to tick on one of them. All the questions are formed to measure the level of stress of the participants at their work place. The researcher calculated percentage to explain the findings of the study. Simple percentage technique (%) is used to explain the result of the study.

The first item of the questionnaire is related to noise pollution. 13 % participants agree that they never face any type of noise pollution at their working place, while 27 % face this situation often and 60 % of the candidates agree that sometimes they face this noisy situation.

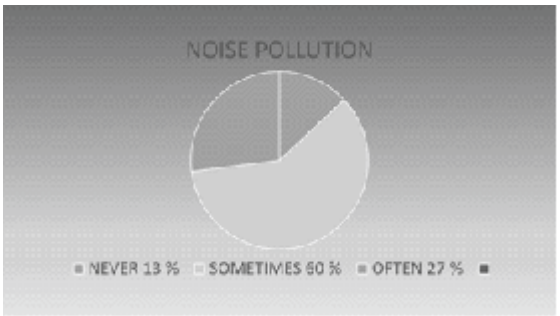

Poor lighting is the 2nd variable of the questionnaire. In this item 47 % candidates tick over sometimes and 20 % often face this poor lighting often, while 33 % candidates never face this problem.

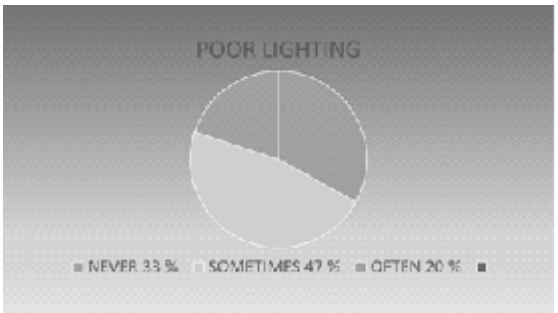

Excessive heat / cold is the 3rd variable related to the stress questionnaire. In this, 17 % participants never face this problem, 33 % think that they often face this situation while 43 % believe that sometimes they go through this situation.

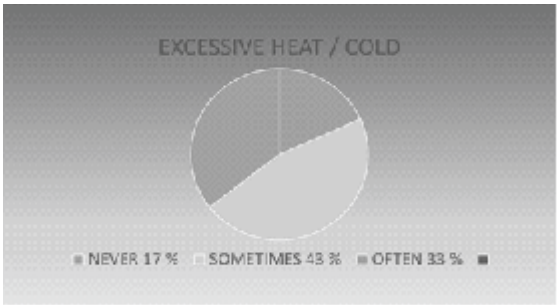

Poor ventilation is another variable to be measured in the questionnaire. In this 53 % agreed that sometimes they faced problem of poor ventilation at their work place while 33 % accepted that they never faced it and remaining 4 % agreed that often they face this trouble.

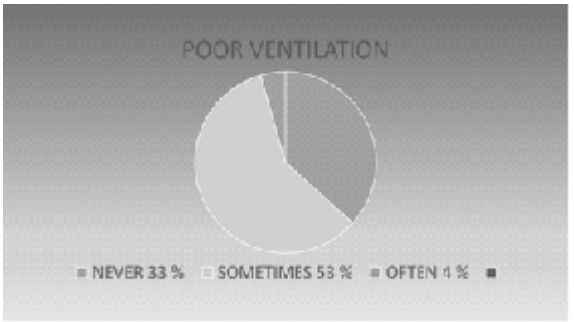

The next variable of this stress questionnaire is dust /fume problem at working place. In this result 43 % participants faced this problem sometimes and 27 % said that often they suffer from it. Remaining 30 % never faced this trouble while working.

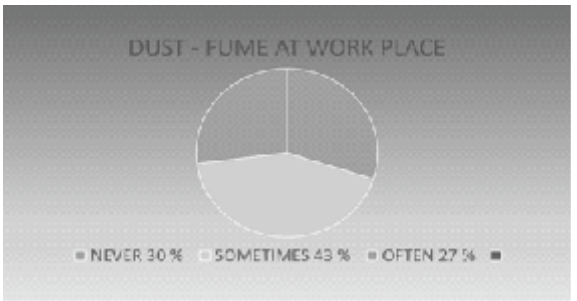

The next variable is related to physical health. In this result 37 % never suffer from headache in their working hours. 56 % result indicates sometimes while remaining 7 % accepted that they often suffer from headache in their working hours.

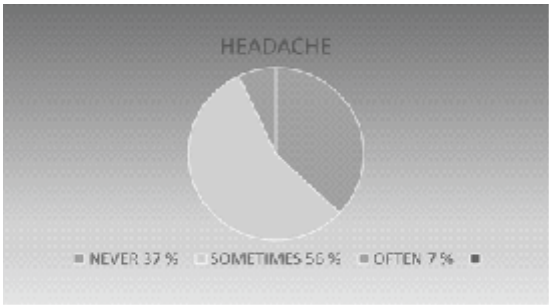

Another variable that is related to mental health is anxiety. In this survey 53 % participants have accepted that they suffer from anxiety due to stress. 13 % said that they often faced this problem while 33 % went for the option of 'never'.

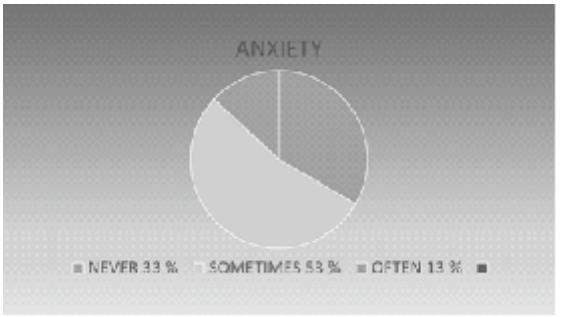

Another variable that is included in this stress questionnaire is Indigestion. While findings say that 10 % participants often face this problem while working. 37 % accepted that sometimes they suffer from indigestion in working hour and 53 % agree that they never face it at work place.

Irritability is one of the most dominant factor of stress for an individual in working hours. Only 30 % accepted that they never suffer from this. 10 % say that often they face irritability while 60 % face this sometimes.

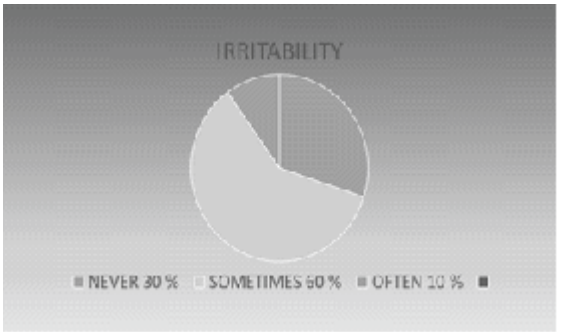

Another item of the questionnaire is related to the problem of backache. 20 % feels it often while 47 % suffer from backache and 33 % participants never faced it while working at their place.

Chest pain is the second last variable to be measured in the questionnaire. Only 7 % feel it often and 80% participants denied for this. 13 % say that sometime they feel chest pain in their working hours.

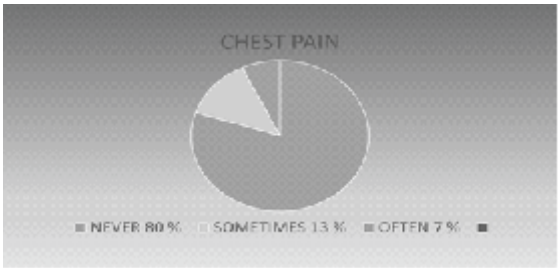

Last but not the least inability to concentrate is the major problem to be measured in the questionnaire. In this survey 10 % participants complained that they often suffer from it, while 43 % never feel this trouble. Rest 47 % put opinion that sometimes they are unable to concentrate in their working hours due to this problem.

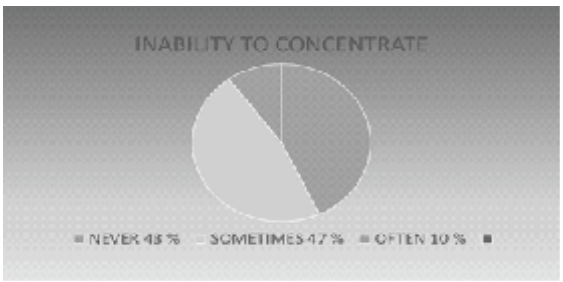

Findings of The Study: So, it is the conclusion of this study that problem of excessive heat / cold is the most dominant troubling factor of stress for the participants at their work place. Often they suffer from this problem. It is found the biggest cause of stress at their work place.While the chest pain is the least cause of stress found in the survey. 80% participants accepted that they never go through this..

Ways To Manage Stress:

- **Optimistic Approach:**one should have optimistic approach in daily lifeto avoid stress.
- **Control the Situation Wisely :**one should not react in a harsh manner with others.
- **Identify what's Causing Stress :** Monitor your state of mind throughout the day, if you feel stressed, write down the causes, your thoughts and your mood. Once you know what is bothering you, develop a plan for addressing it.
- **Build Strong Relationship :** It can be a source of stress. Research has found that negative, hostile reactions with your spouse immediate changes in stress sensitive hormones.
- **Rest Your Mind :** According to APA's 2012 Stress In America survey, stress keeps more than 40% of adults lying awake at night. One should go to the bed at the time each night.
- **Positive Attitude :**Always remember the formula 'be positive' and one can get rid of many problems regarding life.
- **Adjustment with others :**One should have the feeling of respect, regard, affection towards other. This will create a feeling of great adjustment.
- **Forgiveness :**forgiveness is the key to success a person can win the hearts easily.
- **Meditation and Yoga :**It should be the essential part of everyone's life.it is the key to spiritual healing also.
- **Share with Friends :**True friends are like boon so one should always share with friends to find a solution.

- **Smile all the Time :**People like the persons having smile on their faces as it creates positive energy.
- **Have Patience:** one should have patience in every tough and complex situation because in the absence of patience problem looks like giant.
- **Pray Daily :**One should thanks to God to give such a beautiful life on this earth.
- **Be Rationale :**One should be rationale at the every moment of the life. It will create self satisfaction.
- **Give some time To Hobby :** Like listening music, singing, painting, seeing movies, games, reading etc .are the different means to recharge a person suffering from stress.
- **Guidance and Counselling** :Guidance and Counselling is the best way to burst out stress and it can give a healthy direction to the person.

So these are some tips and technique through which stress can be managed and it can help the person to lead life happily and positively, if the problem is serious regarding any type of stress one should consult a psychiatric or a doctor for a medical support.

References

1. *www.apa.org http://e-mymind.org*
2. *(September 30, 2016)*
3. *http://en.oxforddictionaries.com*
4. *http://www.helpguide.org*
5. *Best J.W.(2002) Research in Education-7TH edition ,New Delhi , Prentice Hall of India .*
6. *John J.W., Moragan and Gilliland A.R., (2007), An introduction to psychology, Vishwabharti Publication, New Delhi.*
7. *Singh A.K., (2009) Modern Abnormal Psychology, 5TH edition, Motilal Banarsidas, Delhi*

A Study on Issues Related to Agricultural in Madhya Pradesh

Karulal Sharma
Research Scholar, M.L.S.U., Udaipur

shodhshree@gmail.com

Abstract

This study is carried to highlight the problems of marginal and small famers in Madhya Pradesh. The investigation has been made to anlayse the impact of increase d productivity on the welfare of these farmers . The study also revealed that there is connection between Indian agriculture and W T O agreements. In this paper the role of private trader and the mismatch between the cost of input and output is analyzed, and also critically analyzed the role of government in reforming agriculture in India. In the end suggestions are given to resolve the various issues which are found in present Indian farming.

Keyword: *Marginal and Small farmers, Productivity, Farmer's welfare, W T O.*

Agriculture is the backbone of the Indian economy because majority of Indian population are depend on agriculture Out of 1.2 billion people living in India, 90 million families — or 54.6 percent of the population — is engaged in agriculture. Even after getting bumper harvest, six farmers died in police firing in Madhya Pradesh just to attract the attention of government over present agricultural problems.

At present the condition of farmers is more pathetic because they are facing problems from all sides firstly they are not getting fair price for their output. Farmers are performing well , they are contributing in increasing production but at the cost of decreasing their welfare, it can be easily understand by negative slop of food inflation curve which is -1.05 % in May 2017 .

Material & Methods

The study has been carried on secondary data mostly collected from the government published reports related to department of commerce and ministry, journals, RBI reports, WTO reports and websites . The review of literature has been done for the problem and some citation from well known news paper for latest updated news related to the problem.

The research has been carried by tabulation of data and suitable curves for clear interpretation of problem. On the basis of data and curves the interpretation of result is done. In last of research, the conclusion is drawn with some valuable suggestion.

Review of Literature

Gulati Ashok 2017 has made study to identify factor for agricultural growth in Madhya Pradesh are (i) expanded irrigation through tube wells and canals; (ii) increased power supplies to agriculture; (iii) assured and remunerative price for wheat (including bonus over MSP) by strengthening wheat

procurement system; (iv) expansion of all-weather roads and (v) suitable incentives and signals for the private sector for increasing the level of investments

Nagaraj, K. (2008) : carried study on Farmers' Suicides In India: "From the mid-'90s onwards," points out Professor Nagaraj, "prices and farm incomes crashed. As costs rose — even as bank credit dried up — so did indebtednesps. Even as subsidies for corporate farmers in the West rose, we cut our few, very minimal life supports and subsidies to our own farmers. The collapse of investment in agriculture also meant it was and is most difficult to get out of this trap."

The Main Crops in Madhya Pradesh Are

S.No.	Crop Group	Crops
1	Cereals	Wheat, Rice, Jowar, Bajra , Maize
2	Pulses	Gram , Tur , Urad , Moong , Masur
3	Oilseed	Soyabean ,Niger , Mustard , Groundnut , Sesamum
4	Other	Vegetables , Fruits ,Spices ,Flower
Table 1Source : Departmet of Farmers Welfareand Agriculture Development, GoMP		

Proportion Area 2014-15

Cereal	41%
Pulses	21%
Oilseed	29%
Other	9%

Table 2, Source :Madhya Pradesh Agriculture Economic Survey 2016

(A) Agricultural Growth Rate and Food Deflation

Before 2005-06 the agricultural growth rate was negligible i.e. 3.5%, and in the year 2014-15 it is on 18.83%.

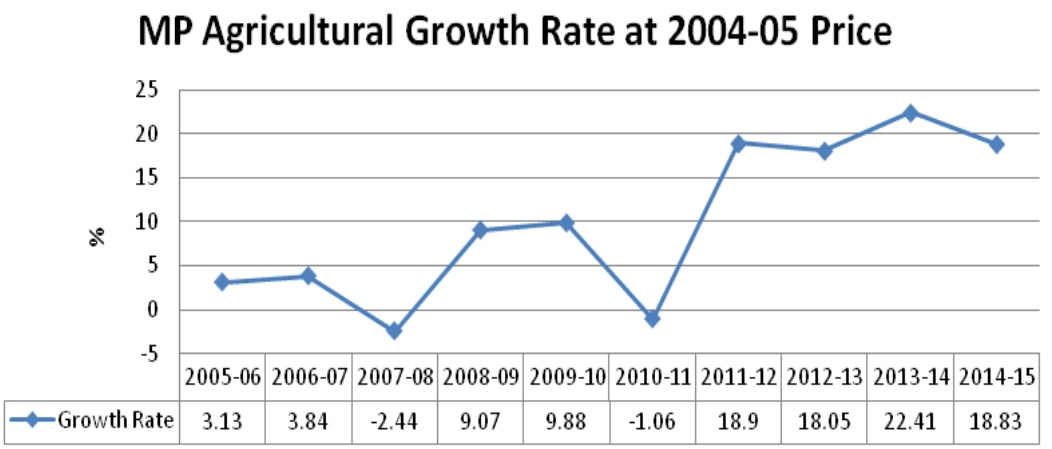

Chart 1 , Source : Madhya Pradesh Agriculture Economic Survey 2016

Total Food Productivity in Madhya Pradesh [KG / Ha]										
Year	All Food	Growth	Wheat	Growth	Rice	Growth	Pulse	Growth	Coarse Cereals	Growth
10-11	1162	-	1757	-	1106	-	656	-	1233	-
15-16	2183	88%	3115	77%	2682	142%	980	49%	2471	100%

Table 3 Source Department of Farmer Welfare and Agriculture Development

Total Food Production In Madhya Pradesh [Qty in Lakh Tonnes]										
Year	All Food	Growth	Wheat	Growth	Rice	Growth	Pulse	Growth	Coarse Cereals	Growth
10-11	149.52	-	76.27	-	17.72	-	33.86	-	21.67	-
15-16	339.51	127%	184.1	141%	53.2	200%	56.24	66%	45.67	111%

Table 4 Source : Department of Farmer Welfare and Agriculture Development

Increased In Food Production Causes Food Deflation: from the above table3 and table 4 it is clearly shown that agricultural productivity and production has been doubled in last 5 years. It tend to increase in supply of food into the market and result in decreasing the price of farm output that can understand by downward sloping of food inflation which is presently negative means start deflating -1.05% in May 2017.

The farmers are getting lower prppice for increased output in comparison to previous year, with increased cost of production. Which cause decrease in welfare of farmers.

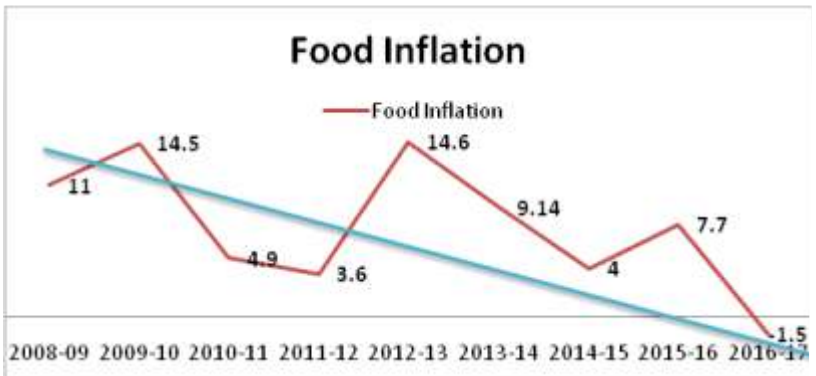

Chart 2, Source: Office of the Economic Adviser, Ministry of Commerce & Industry.

(A) Mismatch Between Input and Put Cost

As we know that the *Agri* is culture in India from the ancient times. Every input which was needed can be arranged by them without any much problem. But in present time a farmer has to purchase all agricultural inputs from markets at higher rates. As a result, poor peasants have to buy new seeds for every planting season and what was traditionally a free resource, available by putting aside a small portion of the crop, becomes a commodity. This new expense increases poverty and leads to ineptness.

According to Times of India June 10, 2017

Key reason for farmers' discontent is mismatch between input and output costs – For cultivating wheat in MP, Rs 1,241.34 were spent on fertilizers per hectare in 2004-05 which has more than doubled to Rs 2,695.27 per hectare in 2014-15. Similarly, cost of seeds used in one hectare increased from Rs 998 in 2004-05 to Rs 2,653 in 2014-15. Even cost of irrigation has jumped from Rs 1,961.50 to Rs 2,599.55 in this period.

This dire situation is also causing mounting indebtedness of farmers with over half of agricultural households in debt as per an NSSO survey for 2012-13. MP was reported to have 46% debt ridden farmers and The survey says the average farm household makes less than Rs. 6,500 a month from all sources of income.

On the other side the subsidy given by government for agriculture purpose is shrinking day by day because of the recommendation of WTO policy free trade , according to that government involvement in agriculture matter is restricted to safeguard the interest of farmers . According to agreement developed Countries have the right to provide unlimited amounts of certain types of support to their farmers, while developing countries have to stay within a de minimize cap.

(C)The Private Traders are at better off then farmers

Actually the marginal and small farmer is trapped in vicious circle of debt; he has to repay the debt on certain time. He has no option to retain the crop for right price. The farmer household consumes about 50% of their total output and major portion of remaining output is sold to private traders. Among those who sell to the procurement agency, they got only Minimum Support Price which is insufficient to cover the cost of production.

Generally the Private trader get the advantage of the work done by these famers by the farm output in warehouse for right price. Due to this practice of private trader, the farmer feel palm off .

Composition of Land Holding in Different Size Group,2010-11	
Marginal(<1 Ha)	44%
Small (1 - 2 Ha)	27%
Semi Medium(2-4 Ha)	19%
Medium(4-10 Ha)	9%
Large(> 10 Ha)	1%

Table 5 ,Source : Department of Planning, Economics and Statistics , Gov. Of MP

It may be inferred that small and marginal farmers dominate agriculture in Madhya Pradesh . They cultivate small operational holding and don't have the necessary wherewithal to invest in their land and are involved in subsistence farming.

Conclusion

From the above study the problems in Indian agriculture can be easily understood, in Madhya Pradesh about 91% of the land occupied for cereal, Pulses and oilseed and no doubt the farmers are performing extra ordinary. The maximum composition of farmer is marginal and small out of which many 100% depend on agriculture. But these farmers are at risk because of food deflation, increase cost of production and loan liability. In last the agriculture is not a profit generating business for them.

Suggestions

- The government also must not delay investing in much-needed farm infrastructure that would enable farmers to move up the value chain. We cannot continue to have farmers dumping their onions, potatoes, tomatoes and milk on the road. Farmers should not go to the market with raw produce; it should be processed. We do not have upgraded processing facilities in most parts of the country.
- Government should promote and motivate food processing industries, by which more and farm output will consume in our country and the farmers will be better off by getting employment at their and getting good market

price.

- Government should check on trader malpractices of making artificially low market price of goods just to cheat farmers.
- Government should help marginal and small farmer to keep their farm output in storage house.
- Government should make special arrangements for marginal and small farmer to give reasonable price.
- The government should check on unnecessary import of pulses and food grains, it should motivate the farmers to produced in our country.
- Special training program should be launched to train farmers, how they can control cost, how they can get maximum out of minimum, which crop is suitable in which environment if less water is there, then pulses and millets are better than rice/wheat.
- Not to waiver off loan but to investigate on root cause of problem, because loan waiving ultimately increases the inflation.

References

1. *www.tradingeconomics.com*
2. *Gulati, A., Rajkhowa, P., & Sharma, P. (2017). Making Rapid Strides-Agriculture in Madhya Pradesh: Sources, Drivers, and Policy Lessons.*
3. *Nagaraj, K. (2008). Farmers' Suicides In India: Magnitudes, Trends And Spatial Patterns. Bharathi Puthakalayam.*
4. *Madhya Pradesh Economic Survey 2016*
5. *Report On On The Path Of Agrarian Prosperity,Performance And Strategic Interventions,*
6. *Department Of Farmer Welfare And Agriculture Development, Madhya Pradesh 14/3/2017*
7. *Office Of The Economic Adviser, Ministry Of Commerce & Industry, Goi*
8. *Report on "Houshold Indebtedness in India" By N S S O 70th Round Jan-Dec 2013 Commerce.nic.in/trade/Background_note_WTO_Negotiations_12-Aug_2014, File No. 14/4/2014-TPD (Agri) Department of Commerce TPD (Agri)*

Seals and Sealings As a Source of History (with special reference to Haryana)

Dr. Yashvir Singh
Asso. Prof. and Head, JVMGRR College, Charkhi Dadri (Haryana)

shodhshree@gmail.com

Abstract

Seals and Sealings are very important source of among other sources which helps us to reconstruct the history of the past. A seal is an engraved stamp bearing, singly or collectively, a device, mark of letters pertainingthe owner, in negative and the sealing is an impression of sealon such material as paper, cloth, clay and wax. Seals and sealings constitute an important primary source of history and culture of a country or a region. Besides furnishing historical information they throw interesting light on art, iconography and religious beliefs of past, on ancient trade and commerce, on systems of education ,educational institutions and on the chronology of the kings and general administration. So far as the history of Haryana is concerned, the seal and sealings are one of few primary sources, A good member of collection of seals and sealing's in GurukulMuseum, Jhajjar furnishes valuable information regarding the political, socio-economic and religious life of the people of ancient Haryana particularly of the early centuries of before and after the beginning of the Christian era. The seal bearing legend Yaudheyanam points towards the republication form of government while legend maharaja, mahasenapati, mahakshatrap pointing towards the monarchial form of government. The depication of various symbols such as swastika, snake, nandipada, trident, fire alter, crescent etc. furnishes information regarding religious beliefs of the people.The depiction of humped bull and legends rapaiti or bahudhanayayake, throw light on economic aspects of early Haryana. The sigillographic material also points towardsthe social life of the people of Haryana. Hence seals and sealing's acts as valuable source of ancient history of Haryana.

Keyword : *Seal, Sealing, Polity, Administration, Society, Economy.*

Seals and sealings are very important source of among sources which help us to reconstruct the history of the past. A seal is an engraved stamp bearing, singly or collectively, a device, mark or letters pertaining the owner, in negative and the sealing is an impression of seal on such material as paper, cloth, clay and wax.[1] Seals and sealings constitute an important primary source of history and culture of a country or a region. Besides furnishing historical information's they throw interesting light on art, iconography and religious beliefs of the past, on ancient trade and commerce, on systems of education and educational institutions, on the chronology of the kings and general administration.[2] For obvious reason seals are scare and sealings abundant. They are generally found at important centers of administration, religion, trade and commerce. Generally, seals would be found where the seal owner lived and the sealings where the letter or parcel was dispatched, which may be within the locality or

outside it.[3] Seals found in stratified excavations have grater value in establishing chronology then those found on surface. So far as the history of Haryana is concerned, the seal and sealings are one of the few primary sources which helps is reconstructing the history of the region. In the present paper an humble attempt has been made to throw light on the importance of seals and sealings as a source of early history of Haryana.

Seals and sealings from Haryana furnishes following information's regarding political, socio-economic and religious aspects of the people of ancient Haryana particularly during the early centuries before and after the beginning of Christen era.

Political life and Administration

Some seals from Haryana provides us information about the political life and administrative system of ancient Haryana. They reveals that Yaudheyas the famous tribe of the region had republication form of government which was slowly turning towards monarchy. The seals bearing the legends Yaudheyanam and Rapati Yaudheyajanapada found from Naugrangabad Bamla and a seal from Agroha having legend Yaudheyaganaparakritasya point towards the federal from of government. The federation and the gana were termed synonyms of each other by Ashtadhayayi of Panini,[4] Mahabharata[5] and other contemporary literature. In this regard Swami Omanand refers that Yaudheyas had all the three forms janapda, gana and sangha (federation) form of the government.[6] So, it can be said that various ganas and janapadas of the region began to join the confederation under Yaudheyas in early Haryana. On the other side the occurrence of the legends Maharaja, Mahasenapati and Mahakshtarapak on the seals suggests that states of ancient Haryana were shifting towards monarchial form of government. From the legend jaimantradharnam scholars opines that mantradhar was the council of ministers which was the policy making body for progressive administration. Further, the legends such as Mahasenapati, Mahakshatrapa suggest that head of civil and military administrator used tiles also. Furthermore, the legends like mahasenapativiradvare and Mahasenaptisayapaschimdvare refers that senapati or Mahasenapati were also the head of city administration.

The seals from Naurangabad Bamla having legend parakritanakanagra and legend on a seal from Achej having legend Karvireshvarsaya gives us idea regarding the city and village administration of ancient Haryana. Further, the seals bearing legends bhutinikaya and nagarbhuti from Naurangabad throw light towards the occurrence of religious, corporate or political organization in early Haryana. Some seals bearing legend or inscriptions like Srirudravarmasya, Srishivdaraj, Sriharivarsa and, Srisadhvardisya reflects that these were some people of repute who has their own seals having respectable place in the society must have played important role in the polity and administration of ancient Haryana. Hence the seals and sealings prove to be important sources of political history of ancient Haryana.

Socio-Economic Life

The seals and sealings also acts as a good source for socio-economic history of ancient Haryana. The various legends or inscription on seals such as rajyamitragrhitasya, dharamamitravasuvarmanas, Sriyakasaya, Srishivdraj, Jivekunas bhardwaj, baliyas with Swastika symbol, Sriharivaras with conch symbol, bhadarsaya, kanse etc. recovered from Agroha, Naurangabad, Sugh, Khokharakot etc. reflects that a social stratification was prevent in ancient society of Haryana. Further, the legends like rakka, juju, heletegeya on seals from Naurangabad, Sunet, suggests that some non-Indians may be Indo-Greeks, Sakas or Kushanas were assimilated by the society. Furthermore, the occurrence of only one or two female names on seals and sealings also suggest that male domination was prevailing in the society.

The legends like pashchimdware and virdware reflects that the settlements were protected by safety walls and gates, thus reflecting on the planning or the settlement pattern. Further, the occurrence of word rapati reveals that people were enjoying happy and prosperous life. They lived with love and affection, concord and co-operation. This view is also supported by Yashtilakchampu.[7] The seal and sealings also throw light on the linguistic of the region. In a number of legends or inscriptions on seals,

visargas have been omitted and in a number of cases sandhi is also omitted, some legends shows the influence of prakrit, we also found use of gutturalnasal for anusvara and hence throwing light on the linguistics of the region. The depiction of humped bull trotting to right or left, elephant trampling upon a lion, flowerpot, lotus, swastika, nandipada, temples etc. gives us valuable importation regarding the art and artistic zeal of the people.

The seals and sealings also reveals information's regarding the economy of the state. The legend rapati discussed earlier refers the wealth of the area. The depiction of bull on a number of seals reflects that agriculture was the main occupation of the people. The depiction of other animals on seals such as horse from Agroha, cow face from Karnal, tortoise from Sugh, elephant and lion from Naurangabad Bamla reveals that people were expert cattle breeders. Yashtilakchampu may be cited in this regard which shows that cows, buffalos, horses, elephant, goats, sheeps etc. were the pet animals of the people residing in bahudhanyak paradesh.[8] Because, agriculture was largely depended upon bull and plough. So, it can be fairly said that cattle-breading was associated with agriculture.

The legends such as Srimahijan on a seal from Khokharakot, dasakumbhakrsaya on a seal from Naurangabad, floral designs on a seal from Agroha, depiction of arms on other seals suggests that trade and business weaving and spinning, dyeing, pottery making, metal works, hunting etc. were other occupations in which number of people were involved. Recovery of a large number of antiquities related with occupation of dyeing, weaving, pottery making from Naurangabad Bambla, Agroha and other sites supports the above statement.[9] The seals bearing legends mahijana, mulavapanam[10], dasakumbhakarsya, bhutinikaya etc. reflects light on the corporate life of people of ancient Haryana. Hence, it can be concluded that seals and sealings proves an important source of the socio-economic history of ancient Haryana also.

Religious life

Seals and sealings also provide valuable information's regarding religious life of ancient Haryana. The sigllographic material reveals that the people were the followers of saivism, vaisnavism and shaktism along with Buddhism and Jainism. The discovery of a cock symbol from a seal confirms the worship of Karttikeya. The incarnation of Lord Brahma and lotus on seals suggest that the trinity-Brahma, Vishnu and Shiva were popular deities in ancient Haryana. The depictions of various symbols related with various sects such as swastika, nandipada, crescent, trident, five alter side by side on seals reflects the prevalence of religious harmony which is the salient feature even today of Haryana. The seals found from Agroha,[11] Thehpolar[12] and Sugh furnishes information regarding the Buddhism and Jainism in the region.

Lastly, it can be concluded that seals and sealings recovered from various parts of Haryana (a good collection at Gurukul Museum Jhajjar) throw light on the various aspects of social, economic, political, religious and artistic life of people of Haryana during early centuries before and after the beginning of the Christian era and hence works as an important source of history. The critical and close examination of the legends and inscriptions occurring on these seals can throw new light on the history of Haryana. The interpretations of these legends along with contemporary other archaeological material and literary sources certainly can change the perceptions derived by the scholars and hence are useful sources for rewriting the ancient history of Haryana.

References

1. *Thapalyal, K.K., Studies in Ancient Indian Seals, p.1*
2. *Ibid; pp. 1-2*
3. *Thapalyal, K.K., Gleanings in History and Culture From Ancient Indian Seals, Presidential Address, JNSI, Vol. LXX part I & II, 2008. p.1*
4. *Ashtadhayayi of Panini, 3.3.68*
5. *Mahabharata, Santi Parva, 108/30*
6. *Swami Omanand Saraswati; Haryana Ke Prachin Mudrank, p.55*
7. *Cited from Yoganand Shastri, Prachin Bharat Mein Yaudheya Ganarajya, p.120*
8. *Yashtilakchampu, I/13-14*
9. *Handa, Devender, Some More Sealing from Agroha, PURB, p.113*
10. *Cf. Manmohan Kumar (Ed.), Numismatics Studies, Vol 8, p.47*
11. *Information from Sh. Virjanand Devkarni, Director of Gurukul Museum Jhajjar*
12. *Cf. Manmohan Kumar, op.cit, p.30*

Where We are in The Era of Modernization, An Analysis of Gadiya- Lohar Nomadic Tribes in Rajasthan

Geeta Shahu
Research Scholar, Central University of Rajasthan,Ajmer

shodhshree@gmail.com

Abstract

This paper describe the socio-cultural status of Gadiya Lohar nomadic tribes that seeks their status in the era of modernization, who are still living in the remote and rural areas of Rajasthan. The Gadiya Lohar families are following their tradition of moving one place to another or the wondering life. They want to change their livelihood pattern but somehow they have the barrier of their strong belief of superstition. This research paper try to understand their traditional way of life and their present way of living and cover the major areas as their social, cultural, economic, education status, as well as the role of media and technology in their day to day life and the changes that comes because of the modernization in selected GadiyaLohar families of Dhankoli village of Nagaur district of Rajasthan.

Keywords*: Modernization, Nomadic, Tribes, Gadiya Lohar.*

India has been recognized dozen of nomadic, denotified and semi-nomadic tribal communities. The term nomads is derived from the Greek Term 'Nemo' meaning to pasture, this is applied to grass landers and herdsman tending flocks of sheep and goats and by Europeans they called gypsies, in India, they are the people who travels with their families in search of livelihood (NCDNT, 2008,V2).

The GadiyaLohar consider nomadic tribes in Rajasthan. They are found in different state of India and known by different names like GaddiLohar in Maharastra, Bhuvariya in Uttar Pradesh, BhubaliaLohar in Haryana, and GaduliaLohar in Rajasthan, Delhi, MadyaPradsh. Their name are the synonyms of bullock-Cart. The GadiyaLohar basically considered as Iron Smith. That's why they called as Lohar. They do not stay long time at a place. They move on bullock cards in Hindi it's called *gadi*, hence the name GadiaLohar. They also consider as wondering black smith in Rajasthan.

The present status of GadiyaLohar community according to census is that they come under different categories in government reservation policy. The Rajasthan Government provided 5 percent reservation in government jobs to them. Under the special backward category but before that they came in OBC only. The level of education in Gadiya Lohar community is very low. Although, each five kilometres the government opened the schools but the main reason behind lack education is the problem of permanent settlement.

This research study focuses on the traditional problems as well as their problems occurring by modernization in GadiyaLohar community. Where many families are involved in their traditional way of occupation but somehow they are changing their way of living for survival and hope for batter livelihood.

The Rajasthan Government tried to settle them at a place but they have the fear of *Maa Kali* because they feel if we break the traditions than they will destroyed by Kali. This nomadic tribes have a big problem as consuming alcohol, which cause many health issues in their family.

Issues of Research Study

1 Social Status 2 Education Status

3 Role of Media 4 Economic Struggle

Objectives of The Study

- To examine present education status among Gadiya Lohar families.
- To analysis social status of GadiyaLohar community members.
- To identify the role of media in representation of Gadiya Lohar community in Rajasthan.
- To elaborate the economic struggle among GadiyaLohar families.

Methodology

20 families belonging to GadiyaLohar community were interviewed and observed in Dhankoli Village. All the interviewed families consist relatives and kinships members. Originally they belong to Chittorgarh district of Rajasthan. They move from there to Sudrasan and from there they came to Dhankoli village for working at construction sites and their traditional occupation. The research study included participant observation, surveys and interviews tools for primary data collection.

Interviews were included of family head involving male and female. Sampling done through simple random sampling method. 60 members were selected from 20 families residing in Dhankoli village. In depth interviews were conducted during field work. Basically dealing with female respondent, which make a confidential and secure conversation between them and researcher. To fulfil primary objective of the study in depth interviews method helped a lot during research because the entire respondent were working at construction sites and their traditional work.

All interviews and surveys took at the place where they were living temporary nearby construction site. Open ended questions and semi structured questions were asked to understand the mentality of Gadiya Lohar community members. However, conversations of respondent were recorded on video camera and digital audio recorder for data analysis and future examination.

Discussion

The research study were conducted in Dhankoli village in Nagaur district in Rajasthan state. Where the Gadiya Lohar working their education status among Gadiya Lohar is not much batter only boys are going to school for primary education. But studied families are mostly illiterate.

Even though sometime they send their children to school but due to wandering nature is always considered the main barrier for regular education. Their children can write in Hindi and perform simple mathematic calculation like addition, multiplication, and subtraction etc. when they were asked to read newspaper, they tried to read it in broken words. Family head hardly forcing their child for education because they believe in earning for survival not education. A female respondent told during interview that they prefer to boys to send schools. And because of that women education is totally neglected in these families. Research could not find a single girl child or a women candidate who were send to school. They are not in favour to sending girls in school. They should take active part in house work and construction works only.

The school dropout rate is very high among there interviewed families. Only primary level education is the last step of education. However, some families, those are not involved in construction works, are getting good education in the comparison to them even it is too hard to make understand to construction worker families about the role of education in their life. The Gadiya Lohar community traditional occupation is destroying by new technology and beg industries that's why the many families become economically week.

The majority of Gadiya Lohar tribes in Rajasthan are totally backward. The major difficulties and problems faced by them are extremely poverty,

deprivation in society, child marriage, migration, illiteracy, superstitions, joblessness, lack of political development, unsettlement way of life, alcoholism, suppression by upper castes people, lack of traditional occupations, robbery, identity and categorization issue.

Unfortunately, they are still wandering from one place to another place but not for their traditional occupation, they are wandering due to lack of awareness or myth or superstitions. Their problems never highlighted in media because in this present era the media is controlled by mainstream society. As said by an old member of family during interview. But if media show their problems and issues to mainstream society. Surely they will benefited and the problems will decrease and their traditional values can be preserved well before destroy.

The representation of Gadiya Lohar tribes in mainstream media including newspapers, television, cinema and social media, are needed to be analysed. The acculturation, modernization and globalization is a threat to the value system of Gadiya Lohar community. They have to be preserved through making them aware and media representation. Government, media and mainstream society can help to these nomadic people to empower them so they can be not feel as excluded by the other people and got the equal status in the society. Their present or young generation are now ready to accept the popular culture and much familiar with new technology they don't want to fully follow their tradition because that is not enough for their survival.

Major Findings of Research

- Very few Gadiya Lohar children go school in Rajasthan state where there is government school at every five kilometres distance.
- There are so many new industries opened in Rajasthan to make the iron tools and because of that they are losing their traditional way of livelihood or their traditional occupation.
- The present economic status of Gadiya Lohar community are depends on construction work and other field work. Most of the family members including male and female work as construction labourer in metro cities.
- They are provided permanent settlement but because of their historical superstition they do not want to live at a place for long time.
- The early child marriages also prevail among Gadiya Lohar community. Alcohol, different types of Gutka and health problem has been notified major problems among them, they are very much addicted by these habits.
- In present time they are still wandering but not for their traditional occupations, they are wandering in search of jobs and because of the fear of Kali. They stay at a place for a certain period often finishing the construction work they move another place.
- In Rajasthan they have been categorized in Special Backword Class.
- The government provided them the land for home and money for build the home but they don't want to make a RCC or Pack house. They prefer to live in temporary house.
- They send school only their boys to get education. But their girls need to work at home as well as in construction sites.
- They are always neglected by media limelight, unfortunately their movements never been highlighted in main stream media in both print and electronic. The role of media to make them aware about their right and rule always questionable.
- Sometime the NGOs are continuously working towards their betterment but is it the role of NGOs hundred percent right, sometimes NGOs also make show off and in reality on ground level their work is questionable.
- Media can play major role to bring them in to mainstream society, where they can contribute their share in nation building and can live their life without uncertainties in future. Government also should help to bring positive changes in this community.

- Political parties should not use them as a vote bank in election, they should also fulfil their promises made before election.

Conclusion

The problem of Gadiya Lohar community families lies in the lacks of awareness and political support among them. Being a nomad this community still seeks modern life style. The present era is the era of globalization, where world is taking about equity, freedom of speech, employability and constitutional rights for nomadic societies. This community needs permanent settlement at their home and regular education to their children. Government should make policies, which can help them to engage in agriculture sector also, but there is no proper water, electricity and agriculture training for them to cultivation of crops. NGOs and government organization should positively involve to uplift them.

First they should be free from the fear of small numbers, should treat like other societies and main stream media must highlights their issues in front of modern people. The darkness prevails on Gadiya Lohar community can only dissolve when they are educated and given better employability with equity among other societies.

References

1. *Davindera. (1997). Socialization and Education of Nomad Children in Delhi State. Daya Books.*
2. *Sharma, A. N., Yadav, A., & Jain, A. (2002). The Sedentrize Lohar Gadiyas of Malthon: A Socio-demographic and Health Practices Profile. Northern Book Centre.*
3. *Sharma, M. E. G. H. E. N. D. R. A., & Kumar, A. S. H. W. A. N. I. (2013). Ethno botanical uses of medicinal plants: a review. Life, 50, 52.*
4. *Chaudhuri, P. A Cursory look into the Terracotta objects in Molela–a Rajasthan village. Editor: Prof KK Misra Managing Editor: Dr Amitabha Sarkar, 321.*
5. *Pant, M. (2004). Nomads: The Marginalised Citizens: A Participatory Research on Meanings and Expressions of Rights and Citizenship Amongst Nomadic Communities in Rajasthan. PRIA Study Report, No. 1, March, 04.*
6. *Tehrani, N. (2015). The Ethnographic Narration of Gadulia Lohar Tribe of Udaipur, Rajasthan: With the Special Reference to the Ethno archaeological Perspective and Traditional Iron Tool Technology. Ancient Asia, 6.*
7. *Yadav, À., Sharma, A. N., & Jain, A. (2001). Soda-demographic Characteristics of Semi-nomadic Lohar-Gadiyas of Malthon Town of Sagar District, Madhya Pradesh.*
8. *Yadav, A., & Sharma, A. N. (2002). Health Culture and Health Seeking BehaviourAmong The Semi-nomadic Lohar-Gadiyas of Malthon Town of Sagar District, Madhya Pradesh. J. Hum. Ecol, 13(6), 431-435.*
9. *Meena, M. C., Meena, R. K., &Patni, V. (2014). Ethnobotanical studies of Citrulluscolocynthis (Linn.) Schrad.–An important threatened medicinal herb. Journal of Medicinal Plants, 2(2), 15-22.*
10. *Anderson, C. (2000). Godna: Inscribing Indian convicts in the nineteenth century.*
11. *Pant, M. (2005). The quest for inclusion: Nomadic communities and citizenship questions in Rajasthan. In In N Kabeer (ed.) Inclusive Citizenship: Meanings and Expressions. London: Zed, 05..*
12. *Rosenhauer, R. (2013). Ayatana: A Resting Place.*
13. *Government of India. Ministry of Social Justice and Empowerment. (2008). National Commission for Denotified, Nomadic and Semi-Nomadic Tribes. Report, Vol. 1-2, (June 30, 2008) Retrieved from U R L : http://socialjustice.nic.in/pdf/NCDNT2008-v1.pdf*
14. *Natural Resources Group at the International Institute for Environmand Development (IIED). (2013). Media perceptions and portrayals of pastoralists in Kenya, India and China. Gatekeeper. Report, (April 2013). Retrieved from URL:*

    http://pubs.iied.org/14623IIED.html?k=Mike%20Shanahan +p

The Attitude of Students Towards Activities Conducted Under Continuous and Comprehensive Evaluation in the Context of Different Schools

Ashok Kumar Bairwa
Research Scholar, University of Rajasthan, Jaipur

shodhshree@gmail.com

Abstract

The education is unique medium that's construct knowledge based, skilled, intellectual and democratic society & nation. It is in the classroom that learners can analyse and evaluate their experiences, learn to doubt, to question, to investigate and to think independently. Such reforms conducting examinations in education system works like a regularity mechanism in improving quality in education. Constant review of curriculum and evaluation an essential exercise. The quality of education is directly linked with the quality of evaluation. So as an important issue in education, evaluation process many time discussed by educational committees, commissions, policymakers, administrators and many leading educational institutes of India. The new examination system have been executed CBSC in schools in academic session 2011-12. In fact continuous and comprehensive evaluation covers the whole range of student's experiences in the context of total school activities.

Keywords*: Continuous and comprehensive evaluation (CCE), Examination, Learning experiences, Evaluation.*

The aim of education simultaneously reflects the current needs and aspirations of a society, its lasting values and the immediate concern of a community as well as the broad human ideals. In the context of India, Education has been playing a pivotal role in meeting the ever changing demands of society from gurukuls to the today's high-tech schools, educational objectives has been changing to suit the learners and fulfil the aims of society and nation, from teacher-centred system to a student-centred system, these demands change the instructional process and approach to make the progress of education more effective. As child development is a continuous process, evaluation should be continuous. The main purpose of evaluation system in education is that how much knowledge, skills and attitudes gain learners through learning experiences and provided circumstances by schools. In other words, evaluation provides a whole profile picture of a learners learning experiences, skills, attitudes or perception level, concepts and interactions with realistic social environment. The purpose of assessment and evaluation is necessarily to improve the teaching learning process (TLP), effective delivery of content and concept, use of variety tools in TLP and a diagnosis of feedback in context of educational objectives. The assessment of learners learning provides objective evidences to educationists, administrators and policymakers. Teaching and evaluation are interdependent as such one cannot think of one without the other. Both teaching and evaluation are based on the instructional objectives which gives direction to teachers. The three components of teaching, learning and evaluation constitute an integrated network. Through evaluation the teacher not only assesses as to how far the

students have achieved the objectives, but also examines the effectiveness of the teaching strategy, teaching material as well as teaching methodology. A unique evaluation must be requires for assessing all round development of child including scholastic and co scholastic domains. In keeping with above reforms in the examinations system are often recommended by various committees and commissions, more time discussed by policymakers, administrators and educationists and rarely implemented by governments. The CCE is a welcome step in the examination system, which was executed by CBSC in schools academic session 2011-12, is one of the important features of the RTE Act. 2009 also.

Objectives The study was conducted with the following objectives in mind-

- the direction and intensity of attitude of students towards activities conducted under CCE.
- To study the difference, if any, in attitude of students towards activities conducted under CCE in context of teaching learning process/TLP and classroom environment.
- the differences, if any, in attitude towards activities conducted under CCE, among students studying in different types of schools.

Hypothesis Following conceptual and null hypotheses were formulated and tested-

- possessing positive attitude towards activities conducted under CCE.
- Students possessing positive attitude towards activities conducted under CCE in context of teaching learning process/TLP and classroom environment.
- studying in different types of schools do not differ significantly in attitude towards activities conducted under CCE.

Methodology:

Research method: Considering the nature of the investigation, descriptive survey research method was followed in conducting the study.

Population and Sample:CBSE affiliated schools and Rajasthan Govt. schools (CCE is executing there also) running in Jaipur district is identified as population of study. 30 Schools were selected from the population. The attitude scale was administered over the students of these schools, who studying in these secondary schools. The data producing sample of students consisted of 800 students from four type of school. The sample consisted of 200 students from each type of schools like as KVs, private, Government and missionary schools.

Data Collection Tool: Data for the present study were collected by administering the following data collection tool on the students of the selected schools. The details about the data collection tool developed by the investigator and used in the present study are described below:

(1)A Scale on Attitude Towards Activities Conducted Under Continuous and Comprehensive Evaluation: The investigator developed a likert type attitude scale to measure the attitude of students towards activities conducted under continuous and comprehensive evaluation. There were 30 items statements/items in the expert's opinion and review, - items were retained for try out. Equal member of positive statements/ items were included. Each item was followed by five responses, viz. completely agree (CA), Agree (A) Undeceive (UD). Disagree (DA) and completely disagree (CD). A respondent was required to select any one of the responses by encircling the same. For scoring purpose, each response was allotted a pre- determined score as follows

	CA	A	UD	DA	CD
Positive	5	4	3	2	1
Negative	1	2	3	4	5

The scale was administered on a sample of 800 students and scoring was done following the procedures explained above.

Data Analysis Methods/ Techniques: Data were analyzed using different statistical techniques such as t- test, ANOVAs and also frequency and parentage analysis was carried out as per requirement.

Result and Discussion:

(A)Attitude of students towards activities conducted under CCE.

Table-1

Complete Agree	Agree	Undecided	Disagree	Complete Disagree
42.37	37.00	9.84	6.73	4.04

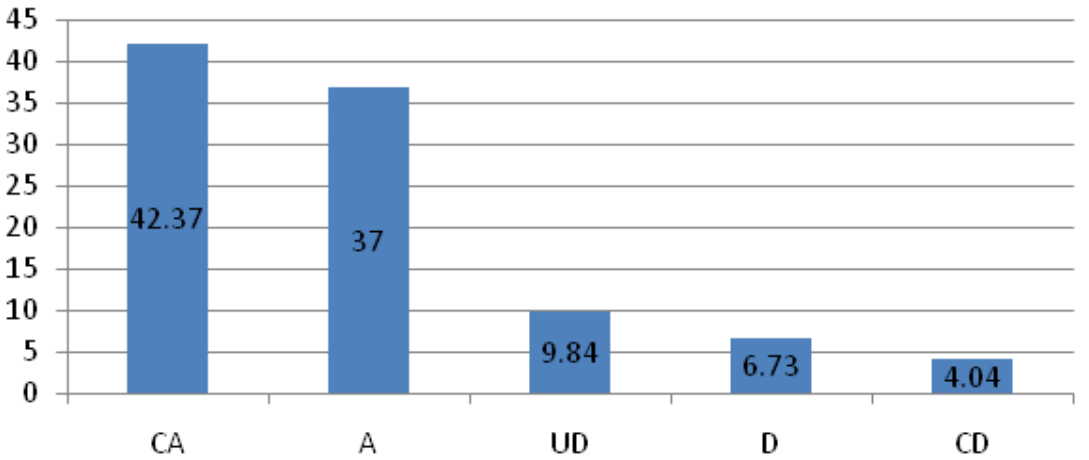

Figure-1 Attitude of students towards activities conducted under CCE
CA=Complete agree, A=Agree, UD=Undecided, D=Disagree, CD=Complete disagree.

It was found (Table & Figure-1) that 42.37 percent of students exhibited complete agree or have strongly positive attitude towards activities conducted under CCE. Above one-third of students had positive attitude towards activities conducted under CCE. Exactly one-tan of students exhibited neutral attitude towards activities conducted under CCE .The remaining 10.83 (4.06 complete disagree &6.73 disagree) percent displayed negative attitude towards activities conducted under CCE .The findings thus showed that 79.39 percent (37.00 agree & 42.37 complete agree) of students had positive and little more than 10 percent above had negative attitude towards activities conducted under CCE .The data are graphically represented in figure-1.

(B) Attitude of Students Towards Activities Conducted Under CCE in Context of Teaching Learning Process/TLP and Classroom Environmentpp

Table-2

Complete Agree	Agree	Undecided	Disagree	Complete Disagree
39.82	39.92	8.75	7.12	4.37

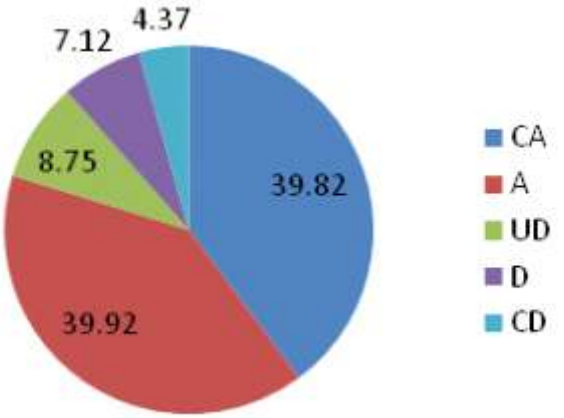

Figure-2 Attitude of Students Towards Activities Conducted Under CCE in Context of Teaching Learning Process/TLP and Classroom Environment.

CA = Complete agree, A = Agree, UD=Undecided, D=Disagree, CD=Complete disagree

It was found (Table-2) that 39.82 percent of students exhibited complete agree or have strongly positive attitude towards activities conducted under CCE. Above one-third (39.92%) of students had positive attitude towards activities conducted under CCE. Exactly one-twelve (8.75) of students exhibited neutral attitude towards activities conducted under CCE .The remaining11 .49(4.37complete disagree &7.12 disagree) percent displayed negative attitude towards activities conducted under CCE .The findings thus showed that 79.74 percent (39.92 agree & 39.82 complete agree) of students had positive and little more than 8.7 percent had negative attitude towards activities conducted under CCE .The data are graphically represented in figure-2.

© Attitude Towards Activities Conducted Under CCE in Relation to Different Types o f Schools.

Source of Variation	Sum of Squares	df	Mean Squares	F-ratio
Between Groups	73190.594	3	24396.865	70.363**
within groups	275994.605	796	346.727	
Total	349185.199	796		

**Significant at 0.05 level of significance, if F>3.80

Table-3 shows that the observed F-ratio was significant at 0.05 level and hence the null hypothesis of no significant difference in attitude towards activities conducted under CCE among students with studying in different types of schools, was rejected. It indicated that the students studying in different types of schools differ in their attitude towards activities conducted under CCE.

Conclusions From the findings present above, the following conclusions are drown-

- Strongly more than 3/4 of students possess positive attitude towards activities conducted under CCE. One-ten of students have neutral and one - ten of students have negative attitude towards activities conducted under the scheme of CCE.
- There is significant difference in attitude of students towards activities conducted under CCE with associated factor of their types of schools.
- Students studying in different types of schools like as kvs, private, Govt. & missionary schools, possess higher attitude towards activities conducted under CCE.

Educational Implications :

- Since attitude of students towards CCE is positively related to interest, involvement & management of activities conduced under CCE, steps have to be taken to enhance Knowledge, practice and experience of teacher in CCE so that their perfection and practise will improve CCE on ground realities.
- Today/ Present time there is need to take appropriate steps by authorities' for practice trainings for Govt. schools teacher so that they will better understand CCE and implement it in behavioural teaching practices
- CCE is a unique evaluation system in education but there is a need to regulate teachers by credit based accountability system and performance improvement of students with quality education for effective in implementation of CCE.

References

1. *Aggarwal, J.C. (2005): Essentials of examination system. New Delhi, India:Vikash Publishing House Pvt.*
2. *.Aggarwal, M. & Prakash, V. (2004): Continuous and comprehensive evaluation.Encyclopaedia of Indian education. vol. 1, PP. 365, New Delhi, India: NCERT*
3. *Government of India's NPE (1986): National Policy on Education, 1986. New Delhi,India: Department*
4. *Garret, H. E. (1981): Statistics in psychology and education. Bombay, India: Vakils feffer and Simons ltd.*
5. *Kaul, L. (2006): Hand book on continuous and comprehensive evaluation. New Delhi, India: IGNOU*
6. *NCERT (2008): Executive Summary of National Focus Groups Position Papers, NCF2005. New Delhi, India: NCERT*
7. *NCERT (2001): Grading in Schools. New Delhi, India: NCERT*
8. *NCERT (2005): National Curriculum Framework – 2005. New Delhi, India: Publication Department,*
9. *NCERT (2000): National Curriculum Framework for School Education. New Delhi, India: Publication Division, NCERT*
10. *NCERT (2006): Position Paper on Examination Reforms, National Curriculum Framework 2005. New Delhi, India: NCERT*
11. *Patel, R. N. (1978): Educational Evaluation – Theory and Practice. New Delhi, India: Himalaya Publishing House*
12. *Rao. P. Manjula (2006): Impact of training in continuous and comprehensive evaluation on the evaluation practices of teachers of primary schools in Tamilnadu. Indian Educational Review, Vol. 42.No.1. January 2006.*
13. *ao, P.Manjula and Rao T. Purushotama (2012): Effectiveness of Continuous and Comprehensive Evaluation over the Evaluation practices of teachers. Mysore, India*
14. *.Rajput, Sarla (2002): Handbook on Paper setting National Council of Educational Research and Training. New Delhi, India: NCERT*
15. *Sansanwal, D. N. (2009): Use of ICT in teaching-learning and evaluation. Lecture Series on educational technology held at Central Institute of Educational Technology. 16-23 Dec., New Delhi, India: CIET*
16. *Singhal, P. (2012): Continuous and Comprehensive Evaluation – A Study of Teachers Percepton.Delhi Business Review, Vol. 13, No. 1 (Jan. – June).*

Comparative Study of Educational Problems Between Government And Private Higher Secondary School Students

Dr Uma Shankar
Assistant professor, Babe Ke College of Education,Mudki (Punjab)

shodhshree@gmail.com

Abstract

The purpose of the study is to understand and compare the educational problems between government and private higher secondary school students. The sample comprised of 200 higher secondary students, out of them 100 students(50 male and 50 female) were from government schools and 100 students (50 male and 50 female) were from private schools selected randomly from ten schools (five govt. and five private higher secondary schools) of district Sri Mukatsar Sahib, Punjab. Educational Problems Questionnaire by Beena shah and S.K. Lakhera were used to compare educational problems. The data so collected was analyzed statistically by employing mean, S.D and t-test. The results revealed that govt. and private higher secondary school students significantly differ with regard to their educational problems. Higher Secondary School students frequently have more complex problems today than the past. The common stressors among school students include greater academic demands, changes in family relation, and changes in social life exposure to new people, ideas and temptations. Students all over the world face number of problem in higher secondary schools. This is very much true in the case of India also students community is affected by lots of problems, lack of quality education, threat of unemployment, absence of adequate opportunities, the politicization and criminalization of academic life, corruption and nepotism and a host of such factors dishearten the students and sometimes lead law and order problems, as students are the future citizen of the world every country should shoulder the responsibility of providing an immaculate environment of the students. Education gives a new defined life to human beings. It develops the thinking and reasoning power. Our education produces good and responsible citizen who contribute to the growth of the country. In all the stages of education right from nursery to higher secondary stage of education is most important stage because it is that stage which provides the sound foundation for future.

Keywords : *Educational Problems, Govt. & Private, Higher Secondary School Students.*

Include storytelling, discussion, teaching, training, and directed research. Education frequently takes place under the guidance of educators, but learners may also educate. Education can take place in formal or informal settings and any experience that has a formative effect on the way one thinks, feels, or acts may be considered educational. Education is commonly divided formally into such stages as preschool or kindergarten, primary school, secondary school and then college, university, or apprenticeship.

Educational Problems: Problem related with education field are called educational problems. In India, the pressure of educational system has taken its toll on the children. Children are barely out of their infancy are made of identity various objects and display courtesy for admission to kindergarten. Their admission is secured after the school authorities are convinced of the financial security of the parents. The educational system in India judge the child and bases of their performance in the annual examination held at the end of every session. Good marks are awarded to those children who are able to reproduce their answer verbatim on the answer sheets. The students, therefore, learn their lessons by heart and don't make any effort to understand them.

Being theoretical education has made the children mechanical as they don't attempt the practical application of the knowledge less bright students find it impossible to complete in the present system and drop out of the schools. Some students find it difficult to cope with the pressure and take refuge in drugs, alcohol, cigarettes and so on. Such habits are usually initiated at the behest of their friends. Parental and Peer pressure to secure good marks hampers the proper development of the child, study difficulties, examination anxieties, difficulty in concentration, difficulty in remembering, unable to study properly, easily distractible, unable to understand the language, difficulty or affinity towards a particular subject, no interest in studies ineffective study methods, despite investing a information to sick, despite feeling well prepared, the questions on the actual examination are completely different from what is expected. So students are totally confused problems in trying to divide ones time between studying and other activities. Examination nerves and other type of fear of failure can seriously students progress. There are many problems that do not fall in the ambit of purely academic problem of students are given as:

Moser and Moser (1963) believe general problems of personal nature as found in the school besides the academic achievement problem are lack of social aptitudes, romantic involvements, problems of finance. Akhdar (2009) during the second half of the twentieth century, urban students became a projective word for the problems caused by the large numbers of violence occurs among higher secondary school students.

Review of Literature : Sheikh, R.A. (1983) in his study of life style of slum dwellers and its relation with education reveals that though many of slum family heads could not have education for themselves they had a positive attitude towards education. Some of the parents engage their children in the family crafts and did not see any purpose in education the children who get education show a positive attitude towards education. The life style of the slum dwellers were so worse-gambling, drinking, prostitution, juvenile delinquency were widespread among the slum dwellers.

Significance of Study: Education is important for everyone to lead successful life, especially for students in higher secondary school level as their progress in educational marks the criteria for choosing their future studies. Hence the higher secondary school level is the most crucial stage in the academic life of a student. It is said to be a foundation stage for college and further leering and to establish successful carrier. Every student should be enlightened with right way to attain an interest in the field of education. Higher Secondary students are mostly adolescent. Adolescence stage is a highly critical period in the life of all students to choose their own interest in the field of education. The impact of personal problems that will be helpful to know the level of the problem. The study will go a long way be help the authorities to organize guidance & counseling program in which higher secondary students discuss the problem & minimize the mental tension. The study will give beneficial, suggestions about educational problems.

Objectives of Study

- To compare educational problems between govt. male and female higher secondary school students.
- To compare educational problems between private male and female higher secondary school students.
- To compare educational problems between govt. and private higher secondary school students.

Hypotheses

- There is no significant difference of educational problems between govt. male and female higher secondary school students.
- There is no significant difference of educational problems between private male and female higher secondary school students.
- There is no significant difference of educational problems between govt. and private higher secondary school students.

Sample: The sample was taken 200 students from Sri Muktsar Sahib District.In this sample 100 students (50male and 50female) from Govt. & 100 students(50male and 50female) from private higher secondary schools.

Methodology: The investigator used the descriptive survey method in order to know the difference of educational problems among government and private higher secondary school students.

Tool Used: Beena shah and S.K. Lakhera's Educational Problems Questionnaire.

Statistical Techniques

The entire data of the study was statistically analyzed strictly in accordance with the requirements of the objectives and hypotheses of the study. For this purpose following statistical techniques were used:-

1 Mean

2 Standard deviation

3 t-ratio

Delimitations of Study

1. Study was confined to 200 higher secondary school students of Shri. Muktsar Sahib District.
2. Study was confined to 100 Govt. and 100 private Higher Secondary Schools.
3. Study delimited to 50 male and 50 female students of Govt. and 50 male and 50 female students of private higher secondary schools.

Data Analysis

Hypothesis 1 There is no significant difference of educational problems between govt. male and female higher secondary school students.

By interpretation of data researcher found that the t-value of educational problems between male and female govt. higher sec. school students is 0.3618 and df is 96 which is not significant at level of 0.01 and 0.05. Therefore the hypothesis "there is no significant difference of educational problems between govt. male and female higher secondary school students." is accepted.

Hypothesis 2: There is no significant difference of educational problems between private male and female higher secondary school students.

Table-1
Difference of Educational Problems between Govt. Male and Female Higher Secondary School Students

Variable	Male			Female			t-value	df	Level of Significant at 0.01,0.05
Educational Problems	N	Mean	S.D	N	Mean	S.D	0.3618	96	**Not Significant**
	50	48.82	4.109	50	48.5	7.112			

Table-2
Difference of Educational Problems between Private Male and Female Higher Secondary School Students

Variable	Male			Female			t-Value	df	Level of Significant at 0.01,0.05
Educational Problems	N	Mean	S.D	N	Mean	S.D	0.05038	97	**Not Significant**
	50	58.06	7.285	50	58.02	8.660			

+By interpretation of data researcher found that the t-value of educational problems between male and female private higher sec. school students is 0.05038 and df is 97 which is not significant at level of 0.01 and 0.05. Therefore the hypothesis "there is no significant difference of educational problems between private male and female higher secondary school students." is accepted.

Hypothesis 3: There is no significant difference of educational problems between govt. and private higher secondary school students.

Table-3
Difference of Educational Problems between Govt. and Private Higher Secondary School Students

Variable	Govt. Students			Private students			t-Value	df	Level of Significant at 0.01,0.05
Educational Problems	N	Mean	S.D	N	Mean	S.D	9.7296	196	**Significant**
	100	48.66	5.780	100	58.04	7.9619			

By interpretation of data researcher found that the t-value of educational problems between govt. and private higher sec. school students is 9.7296 and df is 196 which is significant at level of 0.01 and 0.05. Therefore the hypothesis "there is no significant difference of educational problems between govt. and private higher secondary school students." is rejected.

Result Discussion

- The researcher found about educational problems of govt. male and female higher secondary school students. Govt. male and female higher secondary school students do not differ in case of educational problems therefore there is no significant difference of educational problems between govt. male and female higher secondary school students.
- The researcher found about educational problems of private male and female higher secondary school students. Private male and female higher secondary school students do not differ in case of educational problems therefore there is no significant difference of educational problems between private male and female higher secondary school students.
- The researcher found about educational problems of govt. and private higher secondary school students. Govt. and private higher secondary school students have differed in case of educational problems therefore there is significant difference of educational problems between govt. and private higher secondary school students.

Educational Implications

1. The present study investigator found that the difference of educational problems between govt. male and female higher secondary school students.
2. The present study investigator found that the difference of educational problems between private male and female higher secondary school students.

3. In the present study investigator found that the difference of educational problems between govt. and private higher secondary school students.

Suggestions for Further Research

1. The present study can be repeated by taking large sample of students to get more reliable and valid results.
2. It is suggested that researcher can research on the different areas of the educational problems.
3. The present study was conducted only on higher secondary school students. It can be conduct on other children.
4. A study of same nature can be conducted for other districts.

References

1. *Dewey, John (1944) [1916]. Democracy and Education. The Free Press. pp. 1–4.ISBN 0-684-83631-9.*
2. *Anju, (2000). A Comparative study of Educational problems in relation to intelligence and Sex. M.Ed. Dissertation, Punjab University, Chandigarh.*
3. *Gakhar, S.C. (2003). A study of Educational Problems of students at secondary stage, self-concept and academic achievement. Paper published in Journal of Indian Education. Vol.XXIX, No.3, New Delhi: N C E R T, pp100-106.*
4. *Garret, Henry E(2004). Statistics in Psychology and education, Paragon International publishers.*
5. *Geeta S. Vijaylaxmi A. (2006) impact of educational stress and self-confidence of adolescents, Journal of Indian academy of Applied Psychology, 2006, Vol.32, No.1, 66-70.*
6. *Geeta, S. Pastey and Vijaylaxmi A.Aminbhavi (2006). Impact of emotional maturity on stress and self-confidence of adolescents, journal of the Indian academy of applied psychology. 32, 11, 66-70.*
7. *Joshi. D.P. (2001). Depression and conduct problems in school children (ERIC documents)*
8. *Kaur, S. (2000). A study of emotional and educational problems relation to Environment factors. Unpublished Dissertation, Deptt. of Education, Punjab University Chd.*
9. *Kumar, L.A. (2004). Study habits of Secondary school students, Institute of Advanced Studies in Education Discovery publishing House.*
10. *Lakshmi S. and Krishnamurthy, S (2011), "A Study on the Emotional adjustment of Higher Secondary School Students". International Journal of Current research, Vol.33, issue 4, I S S N: 0975-833X, pp.183-185.*
11. *Mooiji J and Narayan, K. (2010), solutions to educational conflicts of students in rural government schools in India, The open education journal.*
12. *Moser and Moser (2014). International journal of science and research 3.*
13. *Yadav. R.S (1985) the stability of educational problems levels practical Assessment research and education 7 (20), 38-50-50. The problem of educational adjustment translated by Henry Bunker New York.*
14. *Fifth survey of Research in education ed. (2000) New Delhi NCERT.*
15. *G.C. Rosenuald (2001) General Anxiety and Academic Indicators as predictors of test anxiety in adolescents Dissertation abstracts.*
16. *Handler, G, & Sarason, S. (1952) A study of anxiety and learning journal for research for mathematic education psychology 4(1) 79-83.*
17. *I.G. Sarson (Ed) test anxiety theory research and application, Hill scale N. J. Erlbaum (349-385).*
18. *Lettri (1996) A study of relationship among efficiency with Anxiety and family Relationship of high school teachers.*
19. *Singh, R.P. (1993), "Educational problems of Male and Female students of Upper and Lower Socio-Economic Status". Indian Educational Abstracts Issue 2 Jan. 1997, NCERT, p.8.*
20. *Singh, Rashee (2012), "A Comparative study of Rural and Urban Senior Secondary School Students in Relation to educational problems". International Indexed & Referred Research Journal, ISSN 0975-3485, RNI-RAJBIL.*

India - Sri Lanka Relation With Special Reference to Tamil Rehabilitation and Peace - Building Process

Dr. Mehara Ram
Research Fellow, University of Rajasthan, Jaipur.

shodhshree@gmail.com

Abstract

The relationship between India and Sri Lanka is more than 25,000 years old. Both countries have a legacy of intellectual, Cultural, religious and linguistic interaction. In recent years, the relationship has been marked by close contacts at all levels. Trade and investments have grown and there is cooperation in the fields of development, education, peace building, reconstruction, culture and defence. In recent years significant progress in implementation of developmental assistance projects for internally displaced persons (IDPs) and disadvantaged section of the population has helped further cement the bonds of friendship between the two countries.

Keywords: *Trade and investment, Peace Building, IDPs, International interest, reconstruction.*

India's policy towards Sri Lanka shifted from active engagement (1983-1990) to a near hands-off policy in the aftermath of the assassination of the former Prime Minister of India, Rajiv Gandhi by the LTTE. The end of the war against the Tamil militants in Sri Lanka opened up a few possibilities for India to take the bilateral relations ahead. However, with the incumbent government led by Maithripala Sirisena assuming power, a series of sincere and genuine attempts at reconciliation and peace building is being made in Sri Lanka opening up opportunities for India to engage Sri Lanka at all levels- diplomatic, political and economic to facilitate the process. One of the major concerns for India's peace and security in its neighborhood stem from the ethnic imbroglio between the majority Sinhalese and minority Tamils in Sri Lanka which has, over the years, adversely impacted India's relationship with Sri Lanka. Ethnic linkages between the Sri Lankan Tamil population and the people of Tamil Nadu of India have been a source of worry for both countries rather than a binding factor primarily due to the protracted ethnic conflict and unsettled issue of accommodating political demands of Tamil population in Sri Lanka. Any further prolongation of the conflict or discontentment would create space for extra regional powers' intervention and would be a source of security concerns given Sri Lanka's geostrategic importance for and geographical proximity with India. Therefore, India must aim at durable peace in Sri Lanka in its own security interest.

Enhanced Chinese Footprints in Sri Lanka

India's disengagement from the Sri Lankan government during the war against Tamil militants created opportunity for China to enter the arena. The support and assistance extended by China to the Sri Lankan government during the war ensured that the former acquired a lot of strategic space and credibility in

the latter. As China's large chunk of trade passes through the sea-lanes in the Indian Ocean, Sri Lanka also used it to its advantage. It had procured sophisticated arms and ammunitions as well as diplomatic support in exchange of strategic concessions.

Sri Lanka is seen as an "important hub on the Maritime Silk Road" by China. The Chinese involvement in Sri Lanka ranges from infrastructure development, economic aid, oil exploration, investments, trade, and a strong diplomatic support to the island state at the time of its need, especially in the context of human rights-accountability issue that emerged after the end of 'Elam War'.

Chinese investment in infrastructure development in Sri Lanka has expanded rapidly, including the strategically situated commercial deep-sea port in Hambantota which was former President Rajapakse's home constituency and the two-phase coal power plant in Norochcholai. Infrastructural development bearing deep strategic implications is the main Chinese footprint in Sri Lanka that has roused considerable attention in India. The most talked about project is Hambantota port. Colombo attempts to project that "the Chinese interest in the Hambantota port is purely commercial". However, the harbor is strategically located not only for the Chinese merchant vessels and cargo carriers sailing to and from Africa and the Middle East to make a stopover, but can also be used by any military fleet. A strong foothold for the Chinese in Hambantota would allow them to have dominance over a vast area of the Indian Ocean extending from Australia in the east, Africa in the west and up to Antarctica in the south. It may not be difficult for China to closely monitor all ships.

India and the Post Conflict Scenario in Sri Lanka

The end of the ethnic conflict in Sri Lanka created the hope for India to contain growing Chinese influence and enhance its own by playing a pivotal role in securing sustainable peace by looking for addressing the root causes of the conflict. The termination of the armed ethnic conflict witnessed the emergence of a major humanitarian challenge, with nearly 3,00,000 Tamil civilians housed in camps for Internally Displaced Persons (IDPs). Under these circumstances, the Indian government undertook a robust programme of assistance to assist IDPs resume their normal lives as quickly as possible. In June 2009, the former Indian Prime Minister Manrnohan Singh had announced a grant of INR 5 billion (SLR 12 billion) for relief and rehabilitation in Sri Lanka.

India also consistently advocated the need for IDPs to be resettled to their original habitations as early as possible. Taking a major step in this direction, India provided shelter assistance for constructing temporary housing for IDPs. In addition to this, agricultural implements were supplied to assist resettled families commence their livelihood generating activities. As the need of de-mining was a major stumbling-block on the pace of resettlement. The Indian government totally financed seven Indian de-mining teams, which took up the task in various sectors in northern Sri Lanka to accelerate resettlement. With the shift away from relief and rehabilitation to reconstruction and development, the Govt. of India laid stress upon the housing requirements of the IDPs.

India was the largest source of foreign direct investment for Sri Lanka in 2010 (US $110 million). Sri Lanka has long been a priority destination for direct investment from India. India is among the four largest overall investors in Sri Lanka with cumulative investments over US$600 million and the last few years has also witnessed an increasing trend of Sri Lankan investments into India.

However, India's relations with Sri Lanka took a downturn from March 2012 when not satisfied with Colombo's sincerity in carrying forward assurances on reconciliation and in finding long-term political settlement, India voted in favour of the US-sponsored resolution. On the contrary, China used the opportunity in its favour by supporting Sri Lanka in voting against the resolution. India voted against Sri Lanka further in the UN Human Rights Council in March 2013 in an attempt to step up pressure on Sri Lanka to address the legitimate concerns of its Tamil minorities.

Recent Reconcillation process in Srilanka : Challenges and Opportunities before India

Ever since the incumbent Sri Lankan President Maithripala Sirisena came to power, he set the right tone for the seventh anniversary of the end of the Civil War (May 2016) in the island nation and said that the truth of what happened in the conflict needed to be established and justice delivered.

It is noteworthy that the Sri Lankan government under Sirisena's leadership has taken a series of steps to win the confidence of the Tamils. For instance; many political prisoners were released, large tracts of military-controlled land were returned to their original Tamil owners, and investigations into civilian deaths were begun.

The Sri Lankan government has promised a Truth Commission, a judicial Commission with a Special Prosecutor, an Office for Reparations and another for Tracing Missing Persons, substitution of the Prevention of Terrorism Act by one based on international norms and a new constitution to address the Tamils' grievances. For the first time, Colombo has wholeheartedly accepted international assistance to run domestic mechanisms. It has agreed to the US proposal to present to the Council a binding "collaborative resolution". At first glance, Sri Lanka seems to be heading for peace and harmony, but in reality, the road ahead is tough.

However, the Tamils too are not sanguine about the peace prospects. Even the moderate Tamil National Alliance has reservations regarding the Sri Lankan government's intentions. Tamils wonder if the armed forces, seen by the Sinhalese as war heroes, will be hauled up for war crimes. They see little likelihood of the government enacting war crimes laws with retrospective effect, or even putting in place an effective witness protective regime.

Prime Minister of Sri Lanka Ranil Wickremesinghe in September 2015 co-sponsored with the United States and an overwhelming majority of the UN Human Rights Council (UNHRC), a resolution which ties Sri Lanka to far-reaching institutional reforms for bringing about reconciliation and accountability.

This reconciliation process needs to be accelerated and India must engage the Sri Lankan government diplomatically, politically and economically. India must convince different sections in Sri Lanka of the crucial need for reconciliation, fundamentally in its own interest. For this, India has to reach out to the opposition, the monks and the Muslim community. India has to work hard to win over the trust of the Tamil leadership in Sri Lanka. The Tamil population of Sri Lanka should be reassured of India's commitment towards the realisation of its legitimate aspirations within a united framework of the Sri Lankan state. The Tamil leadership in Sri Lanka should be persuaded by the -Indian government to accept the peace overtures if and when extended by the Sri Lankan Government and stay away from adopting extremist tactics.

The peace initiatives undertaken by the present government of Sri Lanka have opened up possibilities for India to engage Sri Lanka in the economic sector more than ever before. Both the countries are engaged in deliberations to ink Comprehensive Economic Partnership Agreement (CEPA) to elevate their bilateral FTA to the next higher level. This would chiefly include the service sector. The key sectors that would reap benefits from CEPA are tourism, computer software, advertising, financial and non-financial services, health, retail services and tourism.

In the last few years, India has committed over $1,100 million in economic assistance programmes for Sri Lanka. Needless to say that the success of these programmes would depend on the extent to which this assistance is used by the Sri Lankan authorities in moving forward in the direction of reconciliation. Based on this, India should frame an extensive programme of co-operation with Sri Lanka with a view to radically transforming its economy.

Though there is a growing feeling among certain sections in India that New Delhi lacks necessary leverage over Colombo, the TNA and many 'moderate' civil society activists in Sri Lanka maintain that India can considerably influence the Sri Lankan government as it has a credible international voice and an increasing global role. They hold the view that dialogue with the Tamil leaders is important and the cumulative grievances of the Tamils have to be addressed for securing durable peace and stability in Sri Lanka. It is believed that India can play the role of the

facilitator for arriving at a political solution between the government of Sri Lanka and the Tamil community.

Nevertheless, Indian diplomacy faces the challenge of enabling a meaningful process of reconciliation. It is argued that India can use its leverage with the political groups in Sri Lanka provided there is right political will in this direction. It is hoped that the perceptible change in the electoral dynamics of India after Bharatiya Jantata Party (BJP) came to power emerging as the single largest party in the lower house of the parliament under the leadership of MODI's would allow India more independence to deal with the Sri Lankan issue by rising above the regional politics.

References

1. *Beliuna, Ashok K.(2011), Rajapaksa's Sri Lanka Tirne to Move Bevond Complacency, Strategic Analysis, Vol. 35, No. 5, September 2011, (Page 739-744).*
2. *Devotta Neil, 'When Individual States, and Systems Collide', in Sumit Ganguly (ed.) (2010), India's Foreign Policy: Retrospect and Prospect, New Delhi: Oxford University Press, (Page 32)*
3. *Galtung, Johan (1996), Peace by Peaceful Means, London: Sage publication.*
4. *Ghosh, Partha S.(2003), Ethnicity versus Nationalism: The Devolution Discourse in Sri Lanka, New Delhi: Sage publication.*
5. *Jain, B.M..(2011),India in the new South Asia, Strategic, Military.ind Economic Concerns in the Age of Nuclear Diplomacy, New Delhi, Viva Books*
6. *Malone David M.(2011), Does the Elephant Dance? Contemporary Indian Foreign Policy, New Delhi, Oxford University Press.*
7. *Sikri, Rajiv (2009), Challenge and Strategy: Rethinking India's Foreign Policy, New Delhi, Sage publication.*
8. *Sridharan, E.(ed.), (2011), International Relations Theory and South Asia, New Delhi, Oxford University Press.*
9. *(5 March, 2015) Hopes and Fears in Sri Lanka, The New Indian Express.*
10. *The Hindu News paper, 23 April 2016.*
11. *Hussain Akmal and Dubey Muchkund (editon), Democracy, sustainable development and peace; New perspectives on South Asia, New Delhi; Oxford University press, PP - 420-423.*

Shodh Shree

(International Referred Journal of Multidisciplinary Research)

ISSN 2277-5587 RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018
Shodhshree@gmail.com

Individual Subscription Form

Name .....

Designation .....

Name of Organization .....

.....

Address .....

.....

District .....

State

.....

Pin .....

Tel. No. (R) .....

Mobile .....

e-mail .....

Date (Signature)

Frequency	:	Shodh Shree is Published four time in a year (Quarterly) i.e. January, April , July & October.
Mode of Payment	:	Subscription fee can be deposit through online Banking.
Bank Details	:	Virendra Sharma, OBC Bank, Adarsh Nagar, jaipur SB A/C No. 06722151002965, IFSC Code ORBC 0100672, MICR Code 302022005 Subscription Fees - 1500 Rs.

Membership No. ..... Date .....

(For Office Use only)

DECLARATION FORM FOR CONTRIBUTORS

I.....

hereby declared that the paper entitled'.....

.....'is unpublished original paper which is not sent any where for publication.

This paper is prepared by me/jointly with.....

.....which is exclusively for your journal entitle 'Shodh Shree'.

I/We will not demand any honorarium for the same expect one copy of the Journal in which this paper will appear. Please send copy of the Journal at the address of author whose name is appeared at first,

Copy right of matter is with Shodh Shree. I/We will not reproduce it in any other journal of book except prior permission of the Chief Editor.

Signature .....

Name .....

Designation .....

Official Address .....

.....

Residential Address .....

.....

.....

Phone No. ..... Pin No. .....

e-mail Address .....

Shodh Shree

(International Referred Journal of Multidisciplinary Research)

ISSN 2277-5587 RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018
Shodhshree@gmail.com

Institutional Membership Form

The Editor
Shodhshree
Jaipur

Dear Sir
I want to become a member of this Journal for -

☐ 1 year	☐ 2 years	☐ 3 years
(Rs. 1000/-)	(Rs. 1800/-)	(Rs. 2500 /-)

I am sending here with Rs..... through online banking/cash for membership of your Journal.

Name of Institution .....

.....

Address.....

..... Pin Code.....

Phone/Mobile No. .....

E-mail ID .....

Date: Signature

For Office Use Only

Membership No. _____ Date _____

Frequency : Shodhshree is Published four time in a year(Quarterly) i.e. January, April, July, October.

Mode of Payment : Subscription fees can be deposit through online Banking.

Bank Details : Cheque /DD must be in Favor of Virendra Sharma ,OBC Bank, Adarsh Nagar, Jaipur

SB A/C NO.06722151002965

IFSC Code ORBC0100672, MICR Code 302022005

Guidelines for the Contributors

1. All research paper must be typed in Microsoft Word and use KRUTI DEV 010 font for Hindi or Times New Roman Font for English can submit by C.D. or through e-mail.

2 All manuscripts must be accompanied by the brief abstract, Abstract including Keywords must not exceed more then 150 words.

3. A separate list of references should be given at the end of the paper and not at each page. Footnotes may be given on the same page if any technical term needs some explanation.

4. Table, Model, Graph or Chart should be on separate pages and numbered serially with appropriate heading.

5. Maximum word limit of research paper up to 2500 words.

6. Special care must be taken to avoid spelling errors and grammatical mistakes in the paper, otherwise it will not be accepted for publication.

7. The author(s) should certify on a separate page that the manuscript is original and it is not copyrighted.

8. The copyright is Reserved for 'Shodhshree' for All Research papers and Book Reviews, published in this journal.

9. Publication of research paper would be decided by our editorial board or subject specialist.

Book Review : For Book Review to be included in this journal only reference books and research publications are considered. One copy of each such publication must be submitted to the Editor.

Note : Shodh Shree have copyright on papers published in the journal therefore, prior permission is necessary for reproduction of paper, anywhere by author or other person. However, papers published in the journal may be freely quoted in further study. All disputes are subject to jaipur jurisdiction.

Research Paper may be sent to our e-mail: shodhshree@gmail.com
For any assistance, Please Contact Dr. Ravindra Tailor - 09413224134

To,

प्रिन्टेड मैटर
If undelivered please return to :

शोध श्री (त्रैमासिक)
54-ए, जवाहर नगर कॉलोनी
टोंक रोड, जयपुर-302018

स्वात्त्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक, प्रधान सम्पादक – वीरेन्द्र शर्मा के लिए मुद्रित व 54–ए,
जवाहर नगर कॉलोनी, टोंक रोड, जयपुर–302018 मो. 9460124401 से प्रकाशित।
मुद्रण स्थल आकृति एड्वरटाईजर्स, जयपुर